नमस्कार महामंत्र-
एक अनुशीलन

भाग - 2

साध्वी पुण्ययशा

नमस्कार महामंत्र — एक अनुशीलन

भाग-2

साध्वी पुण्ययशा

प्रकाशक : **जैन विश्वभारती**
लाडनूं-341306 (राजस्थान)

© जैन विश्वभारती, लाडनूं

आर्थिक सौजन्य : पुज्य स्व. बक्शीरामजी, भैरूंदानजी व
श्रीमती सुगनीदेवी बैद की पुण्य स्मृति में
महावीर, सिन्दुर एवं नवरतन बैद,
बीदासर/कोलकाता

प्रथम संस्करण : 2009

मूल्य : 80/-

लेजर टाइप सेटिंग : मोहन कम्प्यूटर्स, लाडनूं, 9887111345

मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस, दिल्ली

आशीर्वचन

'नमस्कार महामंत्र' जैन धर्म का प्राण तत्त्व है। इसकी अलौकिकता, विलक्षणता और वैज्ञानिकता अचिन्त्य है, अकल्प्य है। इसका विविध कोणों से विश्लेषण किया जाए तो इसकी व्यापकता आसमान से विशाल प्रतीत होती है। महामंत्र की वैज्ञानिकता, उसकी शब्द संरचना में छिपी प्रभावशीलता, उसके जप से स्वस्थ होने वाली शारीरिक, मानसिक बीमारियाँ और ज्योतिषीय दृष्टिकोण आदि विषयों का लेखिका ने प्रस्तुत पुस्तक में सांगोपांग वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

वर्तमान युग में तटबंध तोड़ते पदार्थों का प्रवाह मानव को मस्तिष्कीय विकृति का उपहार दे रहा है। फिर तनाव और अवसाद के साथ अनेकानेक शारीरिक, मानसिक व्याधियां इस कदर बढ़ रही हैं कि सुख-शांति और अमन-चैन पाना बहुत कम लोगों को नसीब हो रहा है।

ऐसी स्थिति में "नमस्कार महामंत्र—एक अनुशीलन (भाग-2)" पुस्तक पाठकों को नई दृष्टि दे सकी और नई राह दिखा सकी तो इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। साध्वी पुण्ययशाजी के श्रम की सार्थकता इसी में है कि उनके मन में पुरुषार्थ की लौ जलती रहे।

सुजानगढ़, **महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा**

25 दिसम्बर, 2008

स्वकथ्य

नवोन्मेषीय प्रतिभा के धनी विवेकानन्द जब साधना करने के उद्देश्य से रामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे, तब रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द की मनःस्थिति का परीक्षण करते हुए कहा–"मेरे पास अष्ट सिद्धियां हैं, वे तुम्हें देना चाहता हूँ।" आत्मजिज्ञासु, मुमुक्षु विवेकानन्द जिज्ञासा के स्वर में बोले–गुरुदेव! क्या सिद्धियों से ईश्वर की प्राप्ति हो सकेगी? रामकृष्ण परमहंस ने कहा–नहीं। तब विवेकानन्द बोले–मुझे तो पहले ईश्वर के दर्शन करने हैं।

भगवान् बुद्ध से शिष्य ने पूछा–भंते! पानी पर चलने की क्षमता वाली विलक्षण विद्या का क्या मूल्य है? भगवान् बुद्ध ने कहा–"सिर्फ दो कोड़ी, क्योंकि केवल पानी पर चलने के लिए इतनी साधना करनी व्यर्थ ही तो है। नदी तो दो कोड़ी देकर नाव से भी पार की जा सकती है।

उपरोक्त दोनों घटनाओं के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सच्चे साधक का साध्य सिद्धियां और सुख-सुविधाएं नहीं हो सकती, उसका साध्य है–आत्मदर्शन। आत्मा और परमात्मा के अन्तर को यदि एक ही शब्द में बताया जाये तो वह है–विषमता। जब इस स्वरूप की विषमता का अन्तर समाप्त हो जाता है तब स्वरूप की समता प्रकट होती है। स्वरूप की समता प्रकट होते ही सम्पूर्ण निर्मलता की आभा प्रस्फुटित हो जाती है। वह आभा ही आत्मा की परम स्थिति है और उसे आत्मा से परमात्मा बनाती है। एक शेर में कहा गया है–

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे बोल तेरी रजा क्या है?

भगवान् महावीर ने कहा–"अप्पा सो परमप्पा" अर्थात् खुद से खुदा बनता है। जो आत्मा है, वही परमात्मा बनता है। नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा यही प्रकृति का प्राकृतिक विकास क्रम है। नर से जुदा नारायण नहीं होता और आत्मा से अलग परमात्मा नहीं होता है।

अप्पा सो परमप्पा का सिद्धान्त प्रत्येक ऊँच-नीच आत्मा में सम्यक् आस्था स्थापित करता हुआ उनमें उच्चतम विकास कर लेने की अटूट प्रेरणा भरता है। केवल इस हद तक खुद को बुलन्द बनाने की अपेक्षा है। इस बुलन्दी या आत्मदर्शन की भूमिका में नमस्कार महामंत्र नींव के समान है। यह परम आध्यात्मिक मंत्र है। मंत्राधिराज महामंत्र अचिन्त्य चिंतामणि, अलौकिक पारसमणि और अद्वितीय हीरकणी है। यह अनन्त-अनन्त शक्तियों का भंडार

तथा अपाय-निरोध का राजमार्ग है। यह अनुपम, अनुत्तर, अपराजित असाम्प्रदायिक और अनादि मंत्र है। इसके जप से हिंसक मनोवृत्तियां क्षीण होती हैं। फलत: अहिंसा के प्रति आन्तरिक अनुराग जागृत होता है। इस अपेक्षा से प्राचीन आचार्यों ने इसे अहिंसक मंत्र भी कहा है। अहिंसक मंत्र होने के कारण इसकी साधना सुखकर, शांतिप्रद और अभयकारक है। इस प्रकार इसे समता, शांति, समृद्धि और श्रेष्ठता का प्रतीक मंत्र कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक हमेशा जिज्ञासु, विनम्र, धैर्यशील और अन्वेषण में संलग्न रहता है उसी प्रकार साधना के क्षेत्र में भी एकाग्रता, अविचल संकल्प, धैर्य, लगन, नि:संशय और सतत साधना साधक की सफलता के सशक्त सोपान हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में राधावेध को साधना, पर्वत को मूल से उखाड़ना तथा गगन में गमन करना दुर्लभ नहीं रहा है परन्तु अलौकिक महिमा से अभिमंडित इस परमेष्ठी-मंत्र की प्राप्ति दुर्लभ ही नहीं, अत्यन्त दुर्लभ है। इस शक्तिशाली और सिद्ध मंत्र में हमारे जीवन के सारे उद्देश्य निहित हैं। जगत् में कोई ऐसा मंत्र नहीं होगा, जिसमें जीवन के उद्देश्य लिखे गये हों। व्यक्ति-सापेक्ष न होकर गुण-सापेक्ष होना ही इस महामंत्र की विरल विशेषता है। मंत्र स्थित अर्हत् आत्मा का स्वरूप है, सिद्ध आत्मा का पूर्ण शुद्ध स्वरूप है, आचार्य चारित्रिक निर्मलता के प्रेरक हैं, उपाध्याय ज्ञान के देवता और मुनि निष्काम सेवा के संवाहक हैं। सचमुच नमस्कार महामंत्र एक मात्र आध्यात्मिक उन्नयन का महान सेतु है।

इसकी रचना, शक्तिशाली वर्णों की संयोजना, ध्वनि प्रकंपन और शब्द विज्ञान अपने आप में अनूठा और अद्वितीय है। कुछ समय पूर्व तक सूक्ष्म ध्वनि तरंगों का कर्त्तृत्व धार्मिक जगत् तक ही सीमित था, किन्तु वर्तमान युग में सूक्ष्म ध्वनि वैज्ञानिक तत्त्व बन गई है। सम्पूर्ण विश्व की घटनाओं को एक टेबल पर लाना अब इन्टरनेट के द्वारा आसान हो चुका है। कम्प्युटर के द्वारा चेट (विचार-विमर्श) के प्रयोग की तुलना जैन आगमों में प्राप्त आहारक लब्धि से की जा सकती है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करने के लिए अपने शरीर से एक पुतला निकालते थे, जिसे आहारक शरीर कहा जाता था। जिसके माध्यम से वे विशिष्ट ज्ञानी (केवल ज्ञानी) व्यक्ति से जिज्ञासा का बिना विलंब समाधान पा लेते थे। वर्तमान में चेट के द्वारा विशेष व्यक्तियों से अपनी जिज्ञासा का समाधान शीघ्र पाया जा सकता है।

सुना है एक बार सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकारनाथ लाहौर के प्राणीगृह को देखने गये। पंडितजी को देखते ही एक बाघ गर्जना करने लगा। तुरंत ही पंडितजी ने एक राग छेड़ी।............राग का श्रवण करते ही वह बाघ पालतू कुत्ते की भाँति एकदम शांत होकर पंडितजी को देखने लगा।

रूसी वैज्ञानिक एस.बी. कोदाफे ने एक संगीत ध्वनि के द्वारा आँखों की बीमारी दूर करने के सफल प्रयोग किये हैं।

जापान में स्वप्न रिकॉर्ड करने के लिए एक मशीन का निर्माण किया गया है जो मनुष्य की आँखों और जंबड़ों पर फीट की जाती है। क्योंकि स्वप्न देखते समय मनुष्य की आँखों की पुतलियां बहुत तेजी से काम करती हैं। इस मशीन का उपयोग अपराध भावना की जानकारी करने हेतु विशेष रूप से किया जाता है।

अर्हत् भगवान मालकोश राग में देशना (प्रवचन) देते थे जिसे सुनते ही प्राणियों के रौद्र परिणाम तुरन्त नष्ट हो जाते थे और वे अत्यन्त शांत व गंभीर बन जाया करते थे।

वैज्ञानिक प्रयोगों ने भी यह सिद्ध किया है कि यदि विशेष प्रकार का मधुर संगीत बजाया जाये तो वृक्ष अधिक फल देने लगते हैं, गायें अधिक दूध देती हैं। थोड़े आगे के प्रयोगों ने यह प्रमाणित किया है कि यदि लगातार प्रिय संगीत बजाया जाये, मंत्रों का प्रयोग किया जाये तो वृक्ष मौसम से पहले ही फल देने लगते हैं। शब्द की प्रभावशाली शक्ति को कौन इन्कार कर सकता है ? ध्वनि तरंगों की शक्ति शारीरिक शक्तियों से अपेक्षाकृत सूक्ष्म है। आधुनिक संचार-विज्ञान के अनुसार ध्वनि-तरंगें अधिक दूरी की यात्रा नहीं कर सकती। इसलिए ध्वनि तरंगों को विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में बदलकर प्रेषित किया जाता है। इस प्रक्रिया का नाम 'मोड्युलेशन' है। मंत्रविद्या में भी ध्वनि तरंगों को विधुत् प्रकंपनों में बदला जाता है। इन विद्युत् तरंगों को मंत्र-शास्त्र में अग्नि-बीज कहा जाता है। ये अग्नि-बीज मस्तिष्क की उच्च ट्रांसमिशन क्षमता से सुदूर अदृश्य लोक में प्रतिष्ठित देवता तक मंत्र, आदेश वैसे ही पहुँचा देते हैं जैसे आज उपग्रह के जरिये मैनफ्रेम (मुख्य कम्प्युटर) तक संदेशों का ट्रांसमिशन किया जाता है।

प्राचीन समय में भी टेलीपेथी प्रक्रिया के द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान ऋषि-मुनि करते थे। लगभग साठ वर्ष पूर्व की एक घटना है। एक वैज्ञानिक उत्तरी-ध्रुव की खोज में निकला था। उसके साथ एक शक्तिशाली वायरलेस सेट

था। इस यंत्र से वह अपने केन्द्र को समाचार भेजता था। एक व्यवस्था साथ में और भी की गई थी। एक अतीन्द्रिय चेतना सम्पन्न व्यक्ति से भी संदेशों का आदान-प्रदान होता था। वैज्ञानिकों को उस समय बहुत आश्चर्य हुआ जब मौसम की खराबी के कारण वायरलेस मैसेज (रेडियो-संदेश) न भेजे जा सके। जो भेजे गये, वे भी बाद में मिलाने पर 72 प्रतिशत से ज्यादा सही न निकले। जबकि उस अतीन्द्रिय दृष्टि प्राप्त व्यक्ति के माध्यम से भेजे और प्राप्त किये जाने वाले संदेश 80 प्रतिशत से 92 प्रतिशत तक सही और स्पष्ट सिद्ध हुए।

आजकल रूस और अमेरिका जैसे संपन्न तथा उन्नत देशों के वैज्ञानिक यह जानने के लिए बहुत समुत्सुक हैं कि जब आधुनिकतम यंत्र भी इतना अच्छा कार्य नहीं करते तब कैसे मनुष्य का साइकिक पावर सफल हो जाता है?

इन तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि साइंस की शक्ति की अपेक्षा योग शक्ति के चमत्कार अधिक शक्तिशाली हैं। भौतिक जगत् में भाप की शक्ति, इलेक्ट्रोनिक शक्ति, विद्युत् शक्ति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति—ये शक्तियां बड़ी मानी जाती हैं पर आत्मविश्वास उन सबका संचालक होने से उसकी शक्ति सबसे अधिक है। आत्मशक्ति व संकल्प-शक्ति का विकास ही शिव-संकल्प, भीष्म-प्रतिज्ञा अथवा भगीरथ प्रयत्न का पर्यायवाची बन सकता है जो नियति तथा प्राकृतिक शक्तियों को बदलने की क्षमता रखता है।

इतिहास यह भी बताता है कि आयुधशाला से युद्ध मैदानों तक अस्त्र-शस्त्र भी मंत्रों द्वारा भेजे जाते थे। ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि कई नाभिकीय प्रक्षेपास्त्रों को ढोने और दागने के लिए मंत्र-विद्या का प्रयोग किया जाता था। परामनोविज्ञान की भाषा में इसे दूर चालन कहते हैं। रणभेरी बजाने के पीछे भी यही उद्देश्य है कि सैनिक इतने जोश में आ जाये कि मरने का डर भूल जाये। इस जोश में ऐसे लड़े की शत्रुओं को परास्त कर दे। यह भी अनुभव किया जाता है कि पुंगी बजाने से सर्प आता है हारमोनियम, सितार, सारंगी आदि बजाने से नहीं। यह सारा शब्द ध्वनियों का ही चमत्कार है। ध्वनि तरंगों का विज्ञान, मंत्र-विज्ञान अति प्राचीन है। मंत्र-शक्ति से आत्मा की सुप्त चेतना का जागरण तथा अधोगामी चेतना का उर्ध्वीकरण किया जाता है।

यद्यपि चुम्बक चेतनाहीन होता है फिर भी इसके दोनों छोर किसी दूसरे चुम्बक के छोरों की मैत्री या घृणा को पहचान सकते हैं, या एक दूसरे को दूर फेंक सकते हैं। ऐसा क्यों होता है? कुछ नहीं कहा जा सकता, पर होता है। ठीक इसी

प्रकार मंत्र शरीर और मन के विकारों को दूर फेंकता है। शरीर की प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव डालता है। रक्त और स्नायुओं के माध्यम से रक्त संचार के विकार दूर करता है। इससे स्नायुओं को बल मिलता है। बुद्धिजीवी लोग जैसे न्यायाधीश, वकील, अध्यापक आदि नियमित रूप से नमस्कार महामंत्र का जप करें अथवा ध्यान करें तो वे अपने कार्यक्षेत्र में भी बहुत सफल और लाभान्वित हो सकते हैं।

मंत्रों के रचयिता महापुरुष बहुत सामर्थ्यवान होते हैं। उनकी रचनाओं में विशिष्ट प्रकार की सिद्धियां सन्निहित होती हैं। नमस्कार महामंत्र तो अर्हत् वाणी है। इसमें अष्ट कर्म क्षय का पूर्ण सामर्थ्य है। अत: इसके आराधक मोक्ष मंजिल को तो पाते ही हैं, पर साथ-साथ जिनकी वाणी और हृदय में यह महामंत्र रम जाता है उनके व्याधि, जल, अग्नि, चोर, सिंह, हाथी, संग्राम, तथा सर्प आदि के भय भी स्वत: नष्ट हो जाते हैं। इस महामंत्र के प्रभाव से शत्रु मित्र-रूप, विष अमृत-रूप, विपत्ति सम्पत्ति-रूप और दु:ख सुख-रूप में बदल जाते हैं। यह महाप्रभावी, विघ्न-विनाशक और मंगलकारी मंत्र है।

आत्म विकास के अभ्युदय में निमित्तों की सहभागिता भी अपना विशेष मूल्य रखती है। न जाने जिंदगी में कब, कौन किसका प्रेरक बन जाये? वि.सं. 2061, माघ शुक्ला त्रयोदशी (ई. सन् 22 फरवरी, 2005) मेरा संयम पर्याय के बाईसवें बसंत में प्रवेश। लाडनूं विश्वभारती का पावन प्रांगण। प्रमुदित मन। शुभ संकल्पों से अनुप्राणित प्राण चेतना। महाप्राण आचार्य श्री महाप्रज्ञजी का पावन ऊर्जावलय। मैं श्रीचरणों में सविनय पंचाग प्रणति वंदन कर रही थी। साध्वी श्री सरोजकुमारी जी ने कहा—गुरुदेव! आज पुण्ययशाजी का दीक्षा दिवस है। परमाराध्य आचार्य प्रवर ने अमीय दृष्टि का वर्षण करते हुए मुझसे पूछा—"संयम पर्याय के कितने वर्ष हो गये।" मैंने कहा—गुरुदेव! इक्कीस वर्ष पूरे हो गये आज बाईसवें वर्ष में प्रवेश हो रहा है।" आचार्य प्रवर ने स्मित वंदन आशीर्वाद की मुद्रा में फरमाया—"तुमने बहुत अच्छा विकास किया है, इस वर्ष और अधिक विकास करो।" नि:संदेह गुरु शिष्यों के आत्म विधुत् प्रवाह को एक मार्ग देते हैं। गुरु के मुख रूपी मलयाचल से नि:सृत वचन रस चन्दन के स्पर्श सदृश होता है। कवि ने बहुत सुन्दर और यथार्थ कहा है—

टिक जाती जिस शिष्य पर गुरुदृष्टि विशाल।
बस जाती उस रसना में सरस्वती तत्काल।।

आचार्य प्रवर के आशीर्वाद एवं प्रेरणा पाथेय से मेरे मानस में एक रचनात्मक संकल्प जगा।

आचार्य प्रवर का मंगल-पाठ सुन 1 मार्च, 2005 को हमने लाडनूं से भीलवाड़ा चातुर्मास हेतु विहार किया। मैंने कुछ लेख लिखे जो प्रेक्षाध्यान पत्रिका में प्रकाशित होते रहे। भीलवाड़ा चातुर्मास के लगभग डेढ़ माह पश्चात् एक दिन कुछ लेख प्रोफेसर डी.सी. जैन (धर्मचन्दजी जैन) को संशोधन की दृष्टि से दिखाए। जिसमें एक लेख का शीर्षक था—"अध्यात्म-विज्ञान, मनोविज्ञान में नमस्कार महामंत्र।" प्रो. जैन ने सुझाव की भाषा में कहा—साध्वीश्री जी आप अपनी चेतना को विभिन्न दिशाओं में न लगाकर एक नमस्कार महामंत्र पर ही केन्द्रित करें। इस एक विषय पर लिखें और आज से ही लिखना आरम्भ कर दें।

साध्वी श्री सरोजकुमारी के प्रोत्साहन और प्रो. डी.सी. जैन की प्रेरणा से मैंने उसी दिन से नमस्कार महामंत्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया। लगभग 50 पृष्ठ लिखकर मैंने जैन साहब को पढ़ाये। उन्होंने मेरे उत्साह को वृद्धिंगत करते हुए कहा—आप लिखते रहें। समय-समय पर प्रदत्त उनके सुझाव तथा दिशा-निर्देश ने मेरी लेखनी को सुदृढ़ बनाया। जैन भारती के सम्पादक शुभू पटवा ने भी नमस्कार महामंत्र के कुछ लेखों को संशोधित परिमार्जित कर उन्हें न केवल प्रकाशित ही किया अपितु दर्शन कर मुझे उत्साहित भी किया। संकल्प प्राणवान बनता गया तथा टॉर्च के फोक्सड् प्रकाशवत् मैंने अपनी चेतना को नमस्कार महामंत्र के अध्ययन, मनन एवं प्रयोगों में केन्द्रित करने का प्रयास किया। दृष्टि की अन्वेषणशीलता में कदम-कदम चलते-चलते मंत्रद्रष्टा जयाचार्य और नमस्कार महामंत्र-इस विषय पर लिखने के बाद स्वयं मुझे भी आश्चर्य होता है कि लेखनी में तीव्रता कैसे आई? इसे मैं महामंत्र की अचिन्त्य महिमा, गुरु का अनुग्रह या शक्तिपात ही मानती हूँ। परमपूज्य आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की सृजनधर्मी प्रेरणा एवं असीम शक्ति संप्रेषण दोनों का योग मुझे मिला है। इस योग ने ही कुछ कर गुजरने की आकांक्षा पैदा की है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरा लघु और प्रारम्भिक प्रयास जब गुरुबल और पुरुषार्थ के साथ चला तो सफल परिणाम तक पहुँच गया।

पक्षी अपने पंखों के बल से अनन्त आकाश का पार नहीं पा सकता फिर भी उड़ना नहीं छोड़ता। वह अपनी शक्ति भर अनन्त आकाश में भ्रमण करता ही है तथा इस विचार से वह प्रसन्न भी होता है कि जिसमें मैं परिभ्रमण कर रहा हूँ वह आकाश अनन्त है। मंत्र के रहस्यों का उद्घाटन एक मंत्रविद् आचार्य या

प्रत्यक्षदर्शी ऋषि ही कर सकते हैं। तत्त्वद्रष्टा प्रज्ञापुरुषों ने नमस्कार महामंत्र पर बहुत कुछ लिखा है, कहा है, किन्तु फिर भी वह आलोक्य और अकथ्य ही रहा है। एक अल्पजीवी व्यक्ति के द्वारा इसके अनन्त रहस्यों का द्वार कभी नहीं खुल सकता। इस महामंत्र का एक-एक अक्षर अपने आप में महान रहस्यों को समेटे हुए है। कहां, कैसे और किस प्रकार उनको प्रयुक्त कर चेतना के प्रसुप्त तारों को झंकृत किया जा सकें, यह गुरुजनों की कृपा बिना संभव नहीं है। नमस्कार महामंत्र का अर्थ पूरा न जान सकने पर भी इस पवित्र, शक्तिशाली एवं तेजस्वी महामंत्र के अवगाहन में मुझे अहर्निश जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह अनिर्वचनीय है। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि मैंने जिस महामंगल रूप महामंत्र में अवगाहन करने का प्रयास किया है, वह अनन्त है।

सिद्धान्त-दर्शन, जीवन-दर्शन, आत्म-दर्शन और परमात्मा-दर्शन के चार दार्शनिक खंभों पर महामंत्र का आध्यात्मिक, व्यावहारिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत करने का मैंने विनम्र प्रयास किया है अत: इस कृति का नाम–''नमस्कार महामंत्र-एक अनुशीलन (भाग-2)'' रखा गया है। इस कृति को मैंने दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग में महामंत्र के दार्शनिक और वैज्ञानिक पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया है तथा द्वितीय भाग में महामंत्र के आध्यात्मिक और व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने का प्रयत्न रहा है। जो लेख इस पुस्तक के निर्माण में प्रेरक और नींव तुल्य बना उस लेख की सामग्री पुस्तक के अलग-अलग लेखों में पुनरावर्तित होने पर भी उसको मैंने यथावत् ही रखा है, जो द्वितीय भाग के प्रारम्भ में लिखा गया है। इस पुस्तिका में महामंत्र के जिन प्रयोगों को दर्शाया गया है, वे काफी प्रभावी पाये गये हैं। नि:संदेह नमस्कार महामंत्र व्यक्ति से लेकर समष्टि तक सत् परिवर्तन की क्रांतिकारी क्षमता रखता है। सचमुच यह महामंत्र महाशक्ति है, महाऊर्जा है, महाप्राण है, महानिधि है, महामंगल है और महाश्रुत रूप है।

गण या गणि के अनन्त उपकारों से उपकृत, आचार-निष्ठ, संघ व संघपति के प्रति समर्पित, तत्त्वज्ञान व संस्कार प्रदात्री स्वर्गीया साध्वी श्री सुखदेवां जी एवं स्वर्गीया तपस्विनी साध्वी श्री भत्तूजी के जीवन से मुझे जो मिला उसे कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। मुझे सहज ही गौरव की अनुभूति होती है कि गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने जीवन निर्माण के उन अपूर्व क्षणों में मुझे उन कलात्मक हाथों में सौंपा जिससे यह लघुकृति निर्मित हो पाई।

मैं श्रद्धानत हूँ गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के प्रति जिन्होंने इस वीणा में किया वीणा का सरगम ललाम। अर्थात् अमूल्य संयम रत्न प्रदान कर मेरे जीवन की दिशा को बदला।

श्रद्धासिक्त प्रणति है आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के पावन पादारविन्दों में जिनकी अतीन्द्रिय चेतना से निःसृत पवित्र रश्मियों के उजास ने मेरे पथ को प्रशस्त किया है।

प्रणत हूँ आचार-निष्ठा और अध्यात्म-निष्ठा के प्रतीक श्रद्धेय युवाचार्य श्री महाश्रमण जी के प्रति जिनकी अबोल प्रेरणा हर पल शक्ति-संप्रेषण और शक्ति-संवर्धन करती रहती है।

नत मस्तक हूँ अहर्निश सारस्वत साधना में संलग्न आदरणीया महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभा जी के प्रति जिनके वात्सल्य नेत्र हमें प्रोत्साहित करते रहते हैं। मैं आभारी हूँ मुख्य नियोजिका जी की जिन्होंने मुझे इस दिशा में उत्साहित किया। बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ अग्रगामी साध्वी श्री सरोज कुमारीजी के प्रति जिनका पूरा-पूरा सहयोग व मार्ग-दर्शन मुझे बराबर मिलता रहा। विशेष आभारी हूँ साध्वी श्री चन्द्रलेखाजी एवं साध्वी श्री सोमप्रभाजी की जिन्होंने समीक्षा के द्वारा मेरी लेखनी को सुदृढ़ बनाया तो प्रमोद भावना के द्वारा मेरे उत्साह को भी बढ़ाया। समणी सुमेधाप्रज्ञाजी ने प्रुफ संशोधन में अपना पूरा समय और श्रम लगाया है। मैं नहीं भूल सकती साध्वी श्री प्रभावना श्री जी एवं साध्वी विनीत यशाजी को भी जिनका व्यक्त अव्यक्त सतत् सहयोग मिलता रहा। कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ साध्वीश्री विमल प्रज्ञाजी, साध्वीश्री श्रुतयशाजी, साध्वीश्री शुभ्रयशाजी एवं समणी मल्लिप्रज्ञाजी, समणी प्रतिभाप्रज्ञाजी के प्रति जिन्होंने इस कृति को सजाने, संवारने एवं समृद्ध बनाने में अपने श्रम, समय और शक्ति का नियोजन किया है। मैं भाव-विभोर हूँ प्रोफेसर डी.सी. जैन के प्रति जिन्होंने मुझे अपने जीवन के विराट लक्ष्य नमस्कार महामंत्र में अभिस्नात करने के लिए प्रेरित किया। अन्त में मैं उन सब विद्वद् रचनाकारों की हृदय से आभारी हूँ जिनकी साहित्य-स्रोतस्विनी में अवगाहन कर मुझे यत् किञ्चित् महामंत्र को समझने की दिव्य दृष्टि मिली। जो पढ़ा, समझा वही संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेस संबंधी दायित्व के निर्वहन में बहिन कमला कठोतिया ने जो श्रम और सहयोग किया है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। मोहन ने इस पुस्तक के टंकण कार्य को शीघ्रातिशीघ्र टंकित करके मेरे कार्य में सहयोग दिया है। यह कृति पाठक

के हृदयाम्बुधि में आनन्द की उर्मियों का सृजन करेगा, इसी भावना के साथ नमस्कार महामंत्र जो अनन्त-अनन्त आस्थाओं का केन्द्र है, इस महामंत्र के विषय में मेरा स्वकथ्य क्या हो सकता है, केवल नमन-नमन अन्तहीन नमन.......।

"कोई भीगता बाहर से कोई भीगता भीतर से।
पर वह भीगना भीगना है जो आर-पार भीगे॥
मैं इस महामंत्र रूपी गंगोत्री में आर-पार भीग जाऊँ।
परमेष्ठी नमन से अपने शुद्ध स्वरूप को शीघ्र पाऊँ॥"

इन्हीं मंगल भावों के साथ हृदय सम्राट आचार्यश्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियों से यह स्वकथ्य स्वतथ्य बने, दीक्षा पर्याय के पचीसवें वर्ष प्रवेश पर गुरुदेव के इसी आशीर्वाद के साथ-

"नमन हमारा अरहंतों को, सिद्धों को आचार्यों को है।
आगम पुरुष उपाध्यायों को, और लोक के सब सन्तों को॥
नमस्कार पंचक यह पावन, करता सब पापों का नाश।
सभी मंगलों में प्रधान है, प्रकटे भीतर दिव्य प्रकाश॥"

"ॐ अर्हम्"

-साध्वी पुण्ययशा

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
1. अध्यात्म विज्ञान-मनोविज्ञान में नमस्कार महामंत्र	2-8
2. णमो अरहंताणं	9-18
3. णमो सिद्धाणं	19-31
4. णमो आयरियाणं	32-43
5. णमो उवज्झायाणं	44-51
6. णमो लोए सव्व साहूणं	52-62
7. णमो लोए सव्व साहूणं : आराधना विधि	63-67
8. एसो पंचणमुक्कारो	68-76

9. लोकोत्तर मंगल 77-86
10. वंदन पाठ की वैज्ञानिकता 87-96
11. पंच-परमेष्ठी का प्रतीक मंत्र : ॐ 97-105
12. अर्हत् का बीजमंत्र—अर्हं 106-115
13. ह्रीं का रहस्य 116-125
14. कर्म क्षय की अपूर्व शक्ति : महामंत्र 126-136
15. नैतिक संस्कारों की प्रारंभिक शिक्षा : मंत्र-दीक्षा 137-142
16. ग्रह शांति और नमस्कार महामंत्र जप 143-152
17. राशि और महामंत्र जप 153-157
18. नमस्कार महामंत्र और सामुदायिक चेतना 158-165
19. सामाजिक अभ्युदय का मंत्र 166-170
20. नमस्कार महामंत्र और अध्यात्म चेतना 171-178
21. नमस्कार महामंत्र और संगीत 179-189
22. नमस्कार महामंत्र के आलोक में जाति स्मृति 190-198
23. नमस्कार महामंत्र और आरोग्य 199-208
24. नमस्कार महामंत्र : उभरती प्रवृत्तियां एवं निष्पत्तियां 209-220

परिशिष्ट–1 223-235

1. स्वर अक्षरों की अद्‌भुत शक्ति 223-228

2. आत्म रक्षा कवच 229-235

परिशिष्ट–2 236-244

उद्धृत गीत

परिशिष्ट–3 245-249

उद्धृत, उल्लिखित, अवलोकित ग्रंथों की तालिका

णमो अरहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंचणमुक्कारो, सव्व पावपणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

1. अध्यात्म विज्ञान मनोविज्ञान में नमस्कार महामंत्र

- ✻ चैतन्य जागृति का सशक्त आधार है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ जैनों का सार्वभौम मांगलिक मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ सम्प्रदायवाद की सभी कट्टरताओं से दूर जैन एकता का प्रभावशाली मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ कल्पवृक्ष चिंतामणि और कामधेनू के समान अभिष्ट फल देने वाला मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ अलौकिकता की ओर ले जाने वाला मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ श्री, ह्री, धी, धृति आदि मंगल-भावनाओं से चित्त को भावित रखने वाला मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ अध्यात्म विकास का मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।
- ✻ चैतन्य जागरण और चित्त की निर्मलता को विकसित करने वाला मंत्र है—नमस्कार महामंत्र।

महामंत्र का वैशिष्ट्य

1. जिन मंत्राक्षरों से विभिन्न मंत्रों को जन्म दिया जाता है, वे मंत्र महामंत्र की योग्यता धारण करते हैं। नमस्कार महामंत्र में से कुछ विशिष्ट बीजाक्षरों का योग बना है, जिससे अन्य मंत्र बनाये जा सकते हैं—अ, म, र, ह, स, द आदि। महामंत्र जिन्हें अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए किसी बीजमंत्र के योग की अपेक्षा नहीं होती। यद्यपि कुछ जैनाचार्यों ने महामंत्र के साथ भी बीजमंत्रों को जोड़ा है। उनका विकास किया है। पर नमस्कार महामंत्र तो सिद्ध मंत्र है, इसे बीजमंत्र की क्या अपेक्षा ?

2. महामंत्र जिसका कोई व्यक्ति विशेष अधिष्ठाता नहीं होता। अन्य मंत्र सकाम भाव से जहां सिद्ध होते हैं, वहां नमस्कार महामंत्र केवल निष्काम उपासक की ही कामनाएं सफल करता है।

3. महामंत्र, जिससे प्राप्त होती है, विराट शक्तियां, संकट निवारण, लक्ष्मी आह्वान, देवाकर्षण तथा कर्म निर्जरा।

हिन्दू धर्म में गायत्री-मंत्र, बौद्ध धर्म में त्रिशरण-मंत्र व जैन धर्म में नमस्कार महामंत्र विश्रुत है। चौदह पूर्वों के साररूप इस मंत्र को जैन धर्म में महामंत्र माना

गया है। महानिशीथ में इसे महाश्रुत स्कन्ध कहा है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने इस महामंत्र को सर्वश्रुतान्तर्गत बतलाया है। यह महामंत्र दिगम्बर श्वेताम्बर सभी परम्पराओं में समान रूप से मान्य है।

णमोक्कार की अनादिता

एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार एसो अणाई कालो अणाई जीवो, अणाई जिण धम्मो। तइया वि ते पढंता एयं चियं जिणनमुक्कारं॥ [1] अर्थात् काल अनादि है, जीव अनादि है, जिन धर्म अनादि है तभी से वे सब इस णमोक्कार को पढ़ते आ रहे हैं, अत: णमोक्कार भी अनादि है। खारवेल के शिलालेख में ब्राह्मी लिपि (ई. सन् 152 वर्ष पूर्व) में केवल दो पद अंकित हैं–णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं। नंदी सूत्र में महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा द्वादशांग को अनादि अनंत बताया है। इससे णमोक्कार भी अनादि अनंत है। संक्षेप में कहा जा सकता है, अनंत चौबीसी में अन्तर आया, आयेगा पर णमोक्कार में नहीं। प्रत्येक चौबीसी ने इसका स्मरण किया है। यह शाश्वत है। इससे णमोक्कार महामंत्र की अनादिता, श्रेष्ठता, उत्कृष्टता का महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

सव्व पावपणासणो

णमो अरहंताणं में हम वीतरागता को वंदन करते हैं, फिर क्रमश: अनंतता, समाधि सम्पन्नता, ज्ञान सम्पन्नता तथा साधुता की वंदना करते हैं। जैनदर्शन व्यक्ति-पूजा का नहीं बल्कि गुण-पूजा का दर्शन है। इस महामंत्र के पांचों ही साधक अहिंसा सत्य के महान् आराधक हैं। अत: इसके जप से मनोवृत्तियां क्षीण होती हैं। फलत: अहिंसा के प्रति आन्तरिक अनुराग जागृत होता है। वंदना करते समय हमारा ध्यान किसी मूर्ति, अरिहंत देह तथा अरिहंत पद पर नहीं होकर अरिहंतत्व पर होना चाहिए। जैन दर्शन के अनुसार विधिवत् किया गया कोई भी अनुष्ठान या वंदन सात-आठ कर्मों को शिथिल करता है। अनुष्ठान में पूर्ण तल्लीनता की स्थिति में सब कर्मों का विनाश संभव है। भारतीय दर्शनों में सबसे बड़ा पाप माना गया है–अज्ञान। आध्यात्मिक मंत्र, शब्द की शक्ति, भावों की तल्लीनता एवं पंच परमेष्ठी के गुणों व आदर्शों की अनुप्रेक्षा साधक को अज्ञान व पाप से निश्चित ही मुक्ति दिला सकती है। अत: नमस्कार महामंत्र सब पापों का नाश करने वाला है। अगर कोई इस महामंत्र से पुत्र मांगता है, सम्पत्ति मांगता है तो वह महान् भूल करता है। महामंत्र की आशातना करता है। महामंत्र से करनी चाहिए केवल आत्मोन्नयन की मांग क्योंकि मंत्र जाप की प्रथम उपलब्धि है–

आत्मशक्ति का संचय, जिससे प्राप्त होता है–मनोबल, विवेक तथा व्यवहार का कौशल। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लिखा है–चारित्र गुणों की कमी को दूर करने के लिए और चारित्रिक गुणों की पुष्टि के लिए निम्नोक्त विधि से नमस्कार महामंत्र का जप करके पाप कर्मों की निर्जरा की जा सकती है–

णमो अरहंताणं–तैजस केन्द्र पर–क्रोध क्षय।
णमो अरहंताणं–आनन्द केन्द्र पर–मान क्षय
णमो अरहंताणं–विशुद्धि केन्द्र पर–माया क्षय
णमो अरहंताणं–शक्ति केन्द्र पर–लोभ क्षय।

* मैत्री भावना को पुष्ट करने के लिए णमो लोए सव्व साहूणं की विशेष आराधना।
* प्रमोद भावना को पुष्ट करने के लिए णमो उवज्झायाणं की विशेष आराधना।
* कारुण्य भावना को पुष्ट बनाने के लिए णमो अरहंताणं की विशिष्ट आराधना।

आराधना।

* मध्यस्थ भावना को पुष्ट बनाने के लिए णमो सिद्धाणं की विशेष आराधना।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं

इस सन्दर्भ में हम मंगल-अमंगल को समझें। दसवैकालिक सूत्र में कहा गया है–"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं" अर्थात् धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है। आत्मा में रहना धर्म है और आत्मा से बाहर जाना अधर्म है, अमंगल है। परमेष्ठी मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष की वंदना नहीं, भौतिक अभिसिद्धि की कामना नहीं, यह तो आत्मा के निकट जाने का मंत्र है। इसके स्मरण से साधक को मांगलिक जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। उच्चारण से प्राणों का उर्ध्वीकरण होता है। ज्ञानियों के प्रति नम्रता होने से ज्ञान का विकास होता है। अहिंसा, संयम और तप की क्षमता का विकास होता है। यह मंगल भावनाओं से भरा मंत्र जगत् में मांगल्य की वृद्धि करता है। मांगल्य की भावनाओं को बढ़ाता है। अतः महामंत्र को सब मंगलों में प्रधान मंगल कहा गया है।

पाठान्तर विमर्श

नमस्कार महामंत्र में पाठान्तर भेद है। इस महामंत्र का बहुत प्रचलित पाठ

जो प्रारंभ में दिया गया है, वह मिलता है, पर प्राचीन ग्रंथों में इसके अनेक पदों, वाक्यों में पाठान्तर मिलते हैं। णमो, नमो। अरहंताणं, अरिहंताणं, अरूहंताणं। आयरियाणं, आइरियाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो सव्व साहूणं। णमो, नमो प्राकृत भाषा में आदि में नकार विकल्प से होता है, इसलिए णमो, नमो–दो रूप मिलते हैं।

अरहंताणं, अरिहंताणं–प्राकृत भाषा में 'अर्ह' धातु के दोनों रूप बनते हैं–अरहइ, अरिहइ। आवश्यक सूत्र में अरहंत, अरिहंत के तीन अर्थ किये हैं–

1. पूजा की अर्हता होने के कारण अरहंत।[2]
2. अरि का हनन करने के कारण अरिहंत।
3. रज कार्य का हनन करने के कारण अरिहंत।[3]

वीरसेनाचार्य ने अरिहंताणं पद के चार अर्थ किये हैं–

1. अरि का हनन करने के कारण अरिहंत।
2. रज का हनन करने के कारण अरिहंत।
3. रहस्य के अभाव से अरिहंत।
4. अतिशय पूजा की अर्हता होने के कारण अरहंत।[4]

ण का विशिष्ट महत्त्व

भाषा की दृष्टि से नमो और णमो–इन दोनों में मात्र रूप भेद है किन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों से 'ण' का अधिक शक्ति-सम्पन्न होना सिद्ध होता है।

मंत्र शास्त्रीय दृष्टि से णमो शोधन बीज है। यह शुद्धि करता है। आत्मा में इतना बल संचित करता है फिर आवेग और कषाय, आत्मा की परिधि में जाने का साहस भी नहीं करते। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं–णमो शब्द का उच्चारण करते हैं तब क्रोध कैसे टिकेगा?

योग शास्त्रानुसार शरीर का कोई अंग ऋण विद्युत् की प्रधानता लिये हुए और कोई अंग धन विद्युत् की प्रधानता लिये हुए है। हमारे शरीर में जीभ ऋण और मस्तिष्क धन विद्युत् की प्रधानता का केन्द्र है। ण के उच्चारण से आंशिक खेचरी मुद्रा लगती है। जीभ द्वारा तालु का घर्षण होता है। तालु मस्तिष्क की निचली परत है, वहां पर जीभ द्वारा घर्षण होने से दोनों तरंगों का मिलन होता है जो आज्ञाचक्र को प्रभावित, जागृत करती है। यह चन्द्रमा का स्थान भी है। कहते हैं जब चक्र का मुख नीचे की ओर रहता है, तब वह अमृत वर्षा किया करता है। जब आज्ञा-चक्र जागृत होता है, तब इसकी वर्षा से देह की नाड़ियां भर जाती

हैं और प्रभावशाली आभामण्डल का निर्माण होता है। आज्ञाचक्र जागने से व्यक्ति दृढ़ संकल्पी, इन्द्रियों पर नियंत्रण करने वाला, दूसरों पर नेतृत्व करने वाला बनता है। जब आज्ञाचक्र शक्तिशाली बन जाता है, तब अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान की भूमिका बनती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार ण का प्रयोग अल्फा तरंगों के निर्माण में सहायक होता है। ण के उच्चारण से गले में खिंचाव, जीभ द्वारा, जिससे थाइराइड और पेराथाइराइड ग्रंथियां संतुलित व शक्तिशाली बनती हैं। हकलाना, गूंगापन, हिचकी चलना–ये थाइराइड के असंतुलित होने से होते हैं। जीभ के खिंचाव से थाइमस का स्राव संतुलित होता है। हमारे शरीर में वात रोग, जोड़ों के रोग और वायु प्रकोप का संबंध थाइमस ग्रंथि से है। एक बार नमस्कार महामंत्र के उच्चारण में चौदह बार ण का उच्चारण होता है। इस प्रकार जीभ का तालु से लयबद्ध घर्षण होने से मस्तिष्क की पीनियल, पिच्युटरी, हाइपोथेलेमस प्रभावित होकर संतुलित हो जाती है तथा हार्मोन्स का स्राव करने लग जाती है, साथ ही मस्तिष्क का रेटीकूलर फारमेशन (तंत्रिका का जाल) प्रभावित होता है। रेटीकूलर फारमेशन उन न्यूरोन्स का बना है, जहां भय, क्रोध, लालसा आदि भाव उत्पन्न होते हैं और रेटीकूलर फारमेशन उनका नियंत्रण भी करता है। दोनों कार्य साथ-साथ चलते हैं। हाइपोथेलेमस का नियंत्रण मनुष्यों के आवेगों पर होता है, उससे पीनियल, पिच्युटरी प्रभावित होती है, इनका स्राव एड्रीनल को प्रभावित करता है। परिणामत: हिंसात्मक उत्तेजनाएं कम होती हैं क्योंकि जैसा भाव वैसा स्राव, जैसा स्राव वैसा व्यवहार, जैसा व्यवहार वैसा आचरण होता है।

* ण शांति सूचक होने से समत्व भाव देने वाला है।

* ण पृथ्वी तत्त्व संज्ञक होने से स्थिरता, अडौलता, गाम्भीर्य, सहनशीलता आदि का परिचायक है।

* शास्त्रों में ण शब्द का स्वरूप व्योम बताया है। व्योम–आकाश। आकाश में व्यापकता, विशालता, अवगाहना देने की क्षमता व शब्दों की तरंगों को प्रवाहित होने देने की योग्यता है। व्योम हमें ऊपर की ओर ले जाता है, उर्ध्वरेत्ता बनाता है।

एक माला में 1512 बार 'ण' का उच्चारण होता है। यही उच्चारण लयबद्ध श्वास के साथ एकाग्रता से किया जाता है तो उपरोक्त लाभ तो होते हैं। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ बीमारियों को रोकने की अवरोधक शक्ति बढ़ती है, बीमारियां दूर होती हैं तथा अतीन्द्रिय चेतना को सक्रिय बनाया जा सकता है।

मनोविज्ञान व नमस्कार महामंत्र

मनोविज्ञान मानता है कि मनुष्यों में भोजन ढूंढना, भागना, लड़ना, उत्सुकता, रचना, संग्रह, विकर्षण, शरणागत होना, काम प्रवृत्ति, शिशु रक्षा, दूसरों की चाह, आत्म-प्रकाशन, विनीतता और हंसना–ये चौदह मूल प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। ये मूल प्रवृत्तियां समस्त प्राणियों में पाई जाती हैं पर मनुष्य इन मूल वृत्तियों में परिवर्तन कर सकता है। केवल मूल प्रवृत्तियों द्वारा संचालित जीवन असभ्य और पाशविक कहलाता है। अत: मूल प्रवृत्तियों में दमन, विलयन, मार्गान्तरीकरण, शोधन–ये चार परिवर्तन होते रहते हैं।

1. दमन–प्रत्येक मूल प्रवृत्ति का बल उसके बराबर प्रकाशित होने से बढ़ता है। यदि किसी मूल प्रवृत्ति के प्रकाशन पर कोई नियंत्रण नहीं रखा जाता है तो वह मनुष्य के लिए लाभकारी न होकर हानिकारक हो जाती है। अत: दमन की क्रिया होनी चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जा सकता है–संग्रह की प्रवृत्ति यदि संयमित रूप से रहे तो उससे मनुष्य जीवन की रक्षा होती है किन्तु जब वह अधिक बढ़ जाती है तो कृपणता और चोरी का रूप धारण कर लेती है। अत: जीवन को उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य समय-समय पर अपनी वृत्तियों का दमन करे, उन्हें अपने नियंत्रण में रखे। ब्राह्मणों में जनेऊ संस्कार की तरह जैन धर्म में बच्चों को मंत्र-दीक्षा दी जाती है। बचपन में णमोक्कार मंत्र के आदर्श के द्वारा मानव की मूल प्रवृत्ति का दमन सरल और स्वाभाविक है। इस मंत्र का आदर्श श्रद्धा और दृढ़ विश्वास को उत्पन्न करता है, जिससे मूल प्रवृत्तियों का दमन करने में बड़ी सहायता मिलती है।

ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र ने बतलाया है कि महामंगल वाक्यों की विद्युत् शक्ति आत्मा में इस प्रकार का झटका देती है, जिससे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह जन्य संज्ञाएं सहज ही परिष्कृत हो जाती हैं।

2. विलयन–यह दो प्रकार से हो सकता है–

1. निरोध द्वारा,

2. विरोध द्वारा।

निरोध का अर्थ है–प्रवृत्तियों को उत्तेजित होने का अवसर ही नहीं देना। इससे मूल प्रवृत्तियां कुछ समय बाद अपने आप ही नष्ट हो जाती हैं। विरोध का अर्थ है–जिस समय एक प्रवृत्ति कार्य कर रही है, उसी समय उसके विपरीत दूसरी प्रवृत्ति को उत्तेजित होने देना। जैसे द्वन्द्व प्रवृत्ति के उमड़ने पर सहानुभूति की प्रवृत्ति को उभार दी जाए तो उस प्रवृत्ति का विलयन सरलता से हो जाता है। णमोक्कार महामंत्र इसमें सहायक सिद्ध होता है।

3. मार्गान्तरीकरण—यह उपाय उपरोक्त दो नियमों से श्रेष्ठ है। महामंत्र के द्वारा बचपन से ही मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तरीकरण किया जा सकता है।

4. शोधन—मूल प्रवृत्तियों का शोधन उसका एक प्रकार से मार्गान्तरीकरण ही है। आर्त्त, रौद्र ध्यान से मन को हटाकर णमोक्कार मंत्र द्वारा धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में लगाना शोधन है।

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने श्रावक संबोध में लिखा है—'जप णमोक्कार का प्रतिदिन प्राणायामी' नमस्कार महामंत्र का जप प्राणायाम के साथ प्रतिदिन हो तो और अधिक उपयोगी बन जाता है। मन की शक्ति प्रचण्ड है, वह एकाग्र होने पर ही जीवन्त, जागृत रहती है। बिखराव व चंचलता में वह नष्ट होती रहती है। यदि जप और ध्यान द्वारा उसको एक केन्द्र पर इकट्ठा कर लिया जाता है तो उसका प्रभाव-परिणाम चामत्कारिक होता है। सूर्य की किरणों को यदि आतिशी शीशे के माध्यम से इकट्ठा कर लिया जाये तो आग जलने लगेगी। बिखरी बारूद को जला देने से थोड़ी-सी चमक भर उत्पन्न होती है पर यदि उसी बारूद को बंदूक की नली में भरकर एक ही दिशा में नियोजित किया जाये तो वह निशाना बेधती हुई पार निकल जाती है। भाप ऐसे ही उड़ती रहती है, किन्तु उसकी थोड़ी मात्रा भी एक केन्द्र पर लगा दी जाये तो उससे रेलगाड़ी के ईंजन हजारों टन माल लेकर द्रुत गति से दौड़ने लगते हैं। मन की शक्ति बारूद, भाप, धूप आदि सबसे प्रचण्ड है। इसे महामंत्र द्वारा एकाग्र करके अध्यात्म के रहस्यों का साक्षात्कार किया जा सकता है। प्रज्ञापुरुष जयाचार्य के शब्दों में[5]—

समकित चरण सहित नवकार धरै,
तिको भवदधि गोपद जेम तरै।
वारू शिव सुख नै ए सचकारं,
इम जाण जपो श्री नवकारं॥

सन्दर्भ—

1. नमस्कार फल पंचविंशति, गाथा-16
2. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 921-922, भगवती भाष्य से उद्धृत
3. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा-992, भगवती भाष्य से उद्धृत
4. षट्खंडागम धवला, पु. 1, ख. 1, भाग-1, सूत्र-1, पृ. 42-44, भगवती भाष्य से उद्धृत
5. आराधना

2. णमो अरहंताणं

पंच-परमेष्ठी के प्रथम अधिष्ठाता, नमस्कार महामंत्र के प्रथम पद णमो अरहंताणं के वाच्याधिकारी, तीर्थंकर भगवान का च्यवन हमारे अध्यात्म जीवन की प्रतीक्षा है, जन्म हमारे अध्यात्म जीवन की अपेक्षा है, दीक्षा हमारे अध्यात्म जीवन की सुरक्षा है, केवल-ज्ञान हमारे अध्यातम जीवन की सुशिक्षा है और निर्वाण हमारे अध्यात्म जीवन की समीक्षा है। राग-द्वेष विजेता होने के कारण वे अध्यात्म क्षेत्र के सर्वोच्च प्रमाण और हमारे आदर्श हैं। मैं कौन हूँ, मैं कहां हूँ, इसका बोध भी अर्हत् की शरण स्वीकार करने से ही होता है। अत: णमो अरहंताणं पद की आराधना की निष्पत्ति को तीन रूपों में पहचाना जा सकता है–

1. अर्हत् की दिशा में यात्रा का प्रारम्भ,
2. आत्मा से परमात्मा की दिशा में प्रस्थान,
3. आर्हन्त्य की अभिव्यक्ति, अनुभूति और उपलब्धि।

उपरोक्त तीनों बिन्दुओं के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है–जो सर्व में विद्यमान है, उस आर्हन्त्य अर्हता को जो प्रकट कर सकते हैं वे अरिहंत हैं। आर्हन्त्य अगम्य है परन्तु अरिहंत से अवश्य ही जाना जाता है। आर्हन्त्य अनिर्वचनीय है परन्तु परावाणी के स्रोत में प्रकट होता है। आर्हन्त्य अव्यक्त है परन्तु अनुभूति में व्यक्त अवश्य होता है। आर्हन्त्य अर्हता है, योग्यता है, क्षमा है और समर्थता है, जिसको 'णमो अरहंताणं' पद की सम्यक् आराधना से प्रकट किया जा सकता है।

अर्हत् का स्वरूप

मैं कौन हूँ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए अर्हत् के स्वरूप को समझना आवश्यक है। अर्हत् का स्वरूप है–अनंत-ज्ञान, अनंत-दर्शन, अनंत-शक्ति और अनंत आनन्द अर्थात् जिसका ज्ञान, दर्शन, शक्ति और आनन्द अव्याहत है, असीम है, वह अर्हत् है। अर्हत् के स्वरूप की सम्यक् जानकारी अर्हत् के गुणों के प्रति अनुराग जगाती है। अनुराग जगाने से उनके प्रति बहुमान, भक्ति व श्रद्धा का भाव पुष्ट बनता है। तीर्थंकर भगवान के गुणों की अनुमोदना नमस्कार के उद्‌भव का कारण बनती है। नमस्कार से विनम्रता का विकास होता है। वे तीर्थंकर भगवान–अर्हन्, अर्हत्, परमात्मा, जिन, तीर्थंकर, देवाधिदेव, पुरुषोत्तम, वीतराग

आदि नामों से पहचाने जाते हैं। वे च्यवन व जन्म कल्याणक में अवधि ज्ञानी जिन, दीक्षा कल्याणक में मन:पर्यवज्ञानी जिन, साधना के पश्चात् चार घनघाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करके साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ (तीर्थ) की स्थापना कर केवल-ज्ञानी जिन (भाव-जिन) कहलाते हैं। अर्थात् 'णमो अरहंताणं' पद पर प्रतिष्ठित होते हैं। तत्पश्चात् तिन्नाणं तारयाणं यानि धर्मोपदेश से भवी जनों का संसार से उद्धार करते हुए शेष भवोपग्राही कर्मों को क्षय कर निर्वाण कल्याणक अर्थात् सिद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाते हैं और पंच-परमेष्ठी के दूसरे पद 'णमो सिद्धाणं' पद पर अवस्थित हो जाते हैं।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकर की इन पांच घटनाओं को प्रधान घटनाएं माना गया है। ये कल्याणक के नाम से विश्रुत हैं। सर्वकल्याणक अवसर पर सम्पूर्ण लोक में प्रकाश और आनन्द की लहर फैलती है। नारक भूमि में रहने वाले नैरयिक जीवों को भी आनन्द की अनुभूति होती है। सब दिशाएं झंझावात, रजकण आदि से रहित होकर निर्मल हो जाती हैं। तीर्थंकर का जिस नक्षत्र में च्यवन होता है, उसी नक्षत्र में जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक होते हैं।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकर से ऊँचा कोई स्थान नहीं है। नमस्कार महामंत्र में सिद्धों से पहले जिन्हें नमस्कार किया जाता है, वे तीर्थंकर ही हैं। निर्मल प्रज्ञा के धनि आचार्यश्री तुलसी द्वारा रचित परमेष्ठी वंदना में अर्हत् स्वरूप का वर्णन निम्न प्रकार से उपलब्ध है—

सहज निज आलोक से भाषित स्वयं संबुद्ध है,
धर्म तीर्थंकर शुभंकर वीतराग विशुद्ध है।
गति प्रतिष्ठा त्राणदाता आवरण से मुक्त है,
देव अर्हन् दिव्य योगज अतिशयों से युक्त है॥

जिस प्रकार शिव के नाम पर शैव धर्म, विष्णु के नाम पर वैष्णव धर्म, बुद्ध के नाम पर बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ, वैसे ही जिन के नाम पर जैन धर्म प्रचलित हुआ। प्रारम्भ में यह श्रमण धर्म तत्पश्चात् आर्हत् धर्म, निर्ग्रन्थ धर्म और जैन धर्म के नाम से विख्यात हुआ।

शिव, विष्णु व बुद्ध के विपरीत 'जिन' शब्द किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। यह उस आध्यात्मिक शक्ति का संबोधक शब्द है, जिसमें व्यक्ति ने राग-द्वेष या प्रियता-अप्रियता की स्थिति से अपने-आपको उपरत कर लिया है। जैन धर्म के प्रमुख मंत्र नमस्कार महामंत्र में भी आत्म-संपदा से सम्पन्न उन्हीं विभूतियों को नमस्कार किया गया है, जो वर्ण, लिंग, जाति की सीमा से उपरत हैं। जैन

धर्म की यह सुस्पष्ट अवधारणा है कि कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मा के उत्कर्ष से महापुरुष बन सकता है, अर्हत्, तीर्थंकर या परमात्मा बन सकता है।

अर्हत् पद की महत्ता

अर्हत् का पर्यायवाची तथा बहुत प्रचलित शब्द है–तीर्थंकर। तीर्थंकर शब्द जैन साहित्य का पारिभाषिक शब्द है। तीर्थंकर का मूल तीर्थ है। तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ हैं। उसका एक अर्थ है–प्रवचन। इस अर्थ में तीर्थंकर प्रवचनकार होते हैं। तीर्थ शब्द का दूसरा अर्थ है–साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्मसंघ। तीर्थंकर पहली बार प्रवचन करते हैं, तब इस चतुर्विध रूप धर्मसंघ की नींव लगती है। इस सन्दर्भ में तीर्थंकर का अर्थ है–धर्म तीर्थ के संस्थापक।

जैन परम्परानुसार तीर्थंकर कोई अवतार नहीं है। वे एक साधारण मनुष्य की तरह जन्म लेते हैं, साधारण मनुष्य की तरह जीते हैं। कुछ तीर्थंकर गृहस्थ जीवन में रहते हुए विवाह करते हैं और कुछ राज्य व्यवस्था का संचालन भी करते हैं। तीर्थंकर साधारण मनुष्य होकर भी कुछ बातों में असाधारण होते हैं। वे जब गर्भ में आते हैं तो तीन ज्ञान–मति, श्रुत एवं अवधि (अतीन्द्रिय ज्ञान) से सम्पन्न होते हैं। उनकी माता गर्भधारण के समय विशिष्ट चौदह स्वप्न देखती है। उनकी कुछ विशेषताएं जन्म के साथ ही प्रकट हो जाती हैं, जैसे–

- उनके लोकोत्तर अद्‌भुत रूपवान शरीर में मैल व पसीने का नहीं आना।
- उनके रक्त और मांस का रंग दूध जैसा श्वेत होना।
- उनका श्वासोच्छ्‌वास सुगंधमय होना।
- मस्तक दाढ़ी के केश, रोम व नखों की मर्यादित अवस्थिति।

असाधारण उत्कृष्ट विशेषताओं के कारण उनका जीवन व्यवहार परिवार के अन्य बालकों से विलक्षण होता है। उनमें सत्संग या उपदेश के बिना ही वैराग्य भावना जागती है। तीर्थंकरों की परम्परा अनादि-कालीन है। सभी तीर्थंर संबुद्ध होते हैं। वे किसी के मार्ग का अनुसरण नहीं करते। विशिष्ट साधना के द्वारा आत्मज्ञान के आलोक में उन्हें जो सत्य उपलब्ध होता है, उसे वे जन-जन तक पहुँचाते हैं। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे भक्तजनों का उद्धार करते हैं।

तीर्थंकर चौतीस अतिशय[1] एवं पैंतीस वचनातिशय[2] से अभिमंडित होते हैं। अतिशय का तात्पर्य–सामान्यतया मनुष्य में होने वाली असाधारण विशेषताओं में भी अत्यधिक विशिष्टता का होना है। इन चौतीस अतिशयों में से उपरोक्त चार

अतिशय जन्मकाल से होते हैं और शेष अतिशयों में से पन्द्रह अतिशय देवकृत तथा पन्द्रह अतिशय केवल-ज्ञान की प्राप्ति के साथ प्राप्त होते हैं। उनमें से एक अतिशय है–भगवान् की अर्द्धमागधी भाषा में देशना (उपदेश) और उस देशना की मनुष्य, तिर्यञ्च तथा देवों की अपनी-अपनी भाषा में परिणति।

यह देशना अर्द्धमागधी भाषा में होने पर भी अठारह लौकिक भाषा तथा सात सौ लघु भाषाओं में आसानी से संयोजित हो जाती है। पहले व्यक्ति इस तथ्य में आशंकित था परन्तु आज U.N.O. की पद्धति ने इस शंका का निराकरण कर दिया है। आज भी वहां कोई भाषण होता है तो वह अपने-आप पांच भाषाओं में अनुवादित हो जाता है–रशियन, अंग्रेजी, जर्मन, चाइनिश, फ्रेंच। अर्हत् भगवान की देशना की सर्वोपरि विशेषता यही है कि यह सदा समस्त तत्त्वों और तत्त्वों के अर्थों से गर्भित रहती है।

तीर्थंकर भगवान का एक अतिशय है–मस्तक के पृष्ठभाग में दृश्यमान, शरद ऋतु के जाज्वल्यमान सूर्य से भी बारह-गुने अधिक तेजवाला, अंधकार का नाशक भामंडल। ग्रंथों में लिखा है कि भामंडल के प्रभाव से तीर्थंकर भगवान के चारों दिशाओं में चार मुख दिखाई देते हैं। इस कारण उपदेश सुनने वालों को ऐसा मालूम होता है कि भगवान का मुख हमारी ओर ही है। भामंडल (ऊर्जा तरंगों) का प्रभाव अध्यात्म और विज्ञान के सन्दर्भ में–

व्यक्ति में दो प्रकार की ऊर्जाएं होती हैं–

1.पदार्थ ऊर्जा, 2. प्राण ऊर्जा।

पदार्थ ऊर्जा की चर्चा की यहां आवश्यक्ता नहीं है परन्तु प्राण ऊर्जा का संचालन साधना द्वारा परिवर्तन का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक तीनों ही क्षेत्र प्राण-ऊर्जा के द्वारा अपने-अपने सिद्धान्तों को प्रायोगिक सफलता प्रदान करते हैं। इसे समझने के लिए प्रथम विज्ञान और मनोविज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों का स्पर्श करते हुए अरिहंतों द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक प्रक्रिया को समझना उचित होगा–

1. इलेक्ट्रोन–जिन कणों पर ऋणात्मक आवेश होता है।
2. प्रोटोन–जिन कणों पर धनात्मक आवेश होता है।
3. न्यूट्रोन–जो कण आवेश रहित होते हैं।

हमारा तैजस शरीर बिजली का पावर हाउस है। इसमें बिजली का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होकर अभिव्यक्त होता रहता है। सृष्टि में दो ध्रुव माने जाते हैं–

1. उत्तरी ध्रुव, 2. दक्षिणी ध्रुव। इन दोनों ध्रुवों में विद्युत् का अटूट भण्डार है। वहां जाने पर ऐसा लगता है, मानो सैकड़ों सूर्य उदित हो चुके हों। मानो अंधकार जैसी कोई चीज ही नहीं है। उत्तरी ध्रुव में धन विद्युत् और दक्षिणी ध्रुव में ऋण विद्युत् है। ये दोनों विद्युत् जब आमने-सामने हों तो एक-दूसरे में मिल जाती हैं। परन्तु दो ऋणात्मक विद्युत् आपस में मिलें तो प्रतिरोध होता है, टक्कर होती है। यदि दो धनात्मक विद्युत् आपस में मिले तो यही स्थिति होती है। परम्परागत हम यह सुनते आ रहे हैं कि दक्षिण की तरफ पैर करके नहीं सोना चाहिए। कुछ लोग इसे अंधविश्वास मानते थे परन्तु धीरे-धीरे लोगों का अनुभव बढ़ा और विज्ञान ने भी अनुसंधान कर यह सिद्ध कर दिया है कि दक्षिण में पैर कर सोने से व्यक्ति को हृदय और मस्तिष्क की बीमारियां होती हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार सौर जगत् ध्रुव के आकर्षण पर अवलम्बित है। ध्रुव उत्तर दिशा में स्थित है। यदि कोई व्यक्ति दक्षिण में पैर और उत्तर में सिर करता है तो ध्रुवाकर्षण के तारतम्य से पेट में पड़ा भोजन पचाने पर जिसका अनुपयोगी अंश मल के रूप में नीचे की ओर जाना आवश्यक है, वह ऊपर की ओर गतिशील हो जायेगा। इससे हृदय और मस्तिष्क पर गलत प्रभाव पड़ेगा। यदि उत्तर दिशा की ओर पैर कर सोए तो चुम्बकीय सिद्धान्तानुसार भोजन का परिपाक ठीक होगा। नींद अच्छी आयेगी तथा निद्रा के बाद शरीर में स्फूर्ति रहेगी क्योंकि ध्रुव आकर्षण सिद्धान्त के अनुसार दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर चल रहा विद्युत् प्रवाह हमारे मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर पांवों के रास्ते से निकलेगा।

यह सिर्फ मान लेने की बात नहीं है–प्रायोगिक सिद्धान्त है। मनुष्य के शरीर में भी दो प्रकार की विद्युत् है– 1. पोजेटिव (धन विद्युत्), 2. नेगेटिव (ऋण विद्युत्)। मनुष्य के शरीर में ऊपर का भाग–आँख, कान, नाक, सिर–इन सबमें धन विद्युत् है। नीचे का भाग–पैर, जंघा आदि–इन सबमें ऋण विद्युत् है। इसमें भी जीभ की विद्युत् ऋणात्मक है और तालु की विद्युत् धनात्मक है। दोनों दांतों को सटाये बिना सिर्फ जीभ को तालु से लगाकर ध्यान अथवा मानसिक जप करने से अपूर्व आनंद का अनुभव होता है।

मनुष्य के शरीर के दाहिने हिस्से में ऋण विद्युत् होती है और बायें हिस्से में धन विद्युत् होती है। पुरुष के मस्तिष्क का दाहिना भाग अधिक सक्रिय होता है और स्त्रियों के मस्तिष्क के दोनों भाग बराबर संतुलनमय होते हैं। यही कारण है कि पुरुष किसी भी कार्य को करने के लिए उतावला होता है। बायां भाग कम क्रियाशील होने के कारण ही वह स्त्री को अपने बायें भाग में बैठाता है। ऐसा करने

से स्त्री की ऋण-विद्युत् पुरुष की धन-विद्युत् को बदल देती है। परिणामतः स्त्री के सहारे से पुरुष अपना भावनात्मक विधान प्रस्तुत कर सकता है। स्त्री के मस्तिष्क के दोनों तरफ संतुलन रहता है। इसी कारण वे हिंसात्मक और आक्रामक प्रवृत्तियों के लिए उत्तेजित नहीं होती हैं। पुरुष उत्तेजित अधिक होता है। उसका बायां हिस्सा कम सक्रिय रहने से तनावग्रस्त स्थिति में उसके हृदय की धड़कनें तेज हो जाती हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक मात्रा में हृदय रोग से ग्रसित होते हैं। हृदय बायीं तरफ है। यकृत दायीं ओर है। पुरुष का लीवर फास्ट होता है, अतः वह स्त्री की अपेक्षा अधिक भोजन ले सकता है, पचा सकता है और स्त्री की अपेक्षा उसका शरीरबल अधिक होता है जबकि स्त्री का पुरुष की अपेक्षा से मनोबल अधिक होता है। वह समय पर भावना व सूझबूझ द्वारा संयोजन व संतुलन को प्रस्तुत कर नारीत्व की गरिमा का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

कायोत्सर्ग से किरणोत्सर्ग होता है। ये किरणें शरीर के बाहर फैलकर अपना प्रभाव प्रकट करती है। मेडिकल इन्स्टीट्यूट ऑफ मद्रास ने ऐसे उपकरणों का निर्माण किया है, जिससे मनुष्य के मस्तिष्क में अल्फा तरंगें देखी जा सकती हैं और सम्प्रेषित की जा सकती हैं। आज भी इस दिशा में विज्ञान की खोज जारी है।

व्यक्ति सिंहासन की मुद्रा में बैठता है, जब ठीक पिरामिड का आकार बन जाता है। पिरामिड के आकार में 'कॉस्मिक-रे' को पकड़ने की क्षमता आ जाती है। सिंहासन की मुद्रा में बैठने वाला व्यक्ति विशिष्ट प्रकार की विकिरणों को ग्रहण करता है।[3]

प्रत्येक व्यक्ति के पीछे एक आभामंडल होता है और यह मण्डल वृत्ताकार होता है। आभामण्डल व्यक्ति की भावनाओं का समीकरण है। यह स्वयं प्रभावक भी है, प्रभावित भी है, फिर भी ओकल्ट साइन्स के अनुसार इसके दो प्रकार होते हैं–

1. Halo–भामंडल
2. Aura–आभामंडल

भामंडल महान् व्यक्तियों के पीछे गोलाकार रूप में पीले रंग में चक्राकार रूप में होता है। यह वर्तुलाकार मंडल अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावक होता है। केन्द्र स्थान से यह दक्षिणावर्त्त होता है।

आभामंडल सामान्य व्यक्तियों के पीछे उनकी भावधाराओं का बना हुआ वृत्ताकार मंडल है। यह प्रभावित आभामंडल है। अर्थात् इसमें भावों की प्रतिक्रिया

स्वरूप संक्रमण होता रहता है। व्यक्ति के अपने राग-द्वेष के अनुसार इनमें रहस्यमय परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे–व्यक्ति के काम, क्रोध, अहं आदि का प्रभाव होने पर वे दूसरों पर प्रकट होते हैं और दूसरों के ऐसे दुर्गुणों का प्रभाव उन पर होता है। वह स्वयं भी इसका संयोजक बन जाता है। प्रतिक्रिया के द्वारा परिवर्तन होना आभामंडल का अपना धर्म है। आभामंडल उत्तरावर्त्त वृत्ताकार मंडल है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में वृत्ति के परिवर्तन के लिए वृत्त परिवर्तन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया जाता है। अध्यात्म क्षेत्र की इस महान् खोज के पूरे रहस्य को पाने में वैज्ञानिक अवश्य प्रतिस्पर्धा करते रहे हैं परन्तु अभी तक उनकी खोज जारी है। अध्यात्म ने इस खोज के रहस्य को खोलते हुए यह दर्शाया है कि काम, क्रोध की वृत्ति को वृत्त बदलकर बदला जा सकता है।

व्यक्ति में जब काम, क्रोध अथवा अहं आदि की भावना उत्पन्न या प्रकट होती है तब उस व्यक्ति की भावधारा का आभावलय अधिक से अधिक उत्तरावर्त्त होता जाता है और जिस व्यक्ति के काम, क्रोध आदि का सर्वथा नाश हो जाता है, तब उसकी भावधारा का प्रभावलय दक्षिणावर्त्त हो जाता है, यही कारण है कि तीर्थंकरों की नाभि एवं बाल भी दक्षिणावर्त्त होते हैं।

अध्यात्म मार्ग व्यक्ति के क्रोध आदि कषायों को समाप्त करने के लिए होता है। वंदना, नमस्कार की मुद्रा, हाथों को दक्षिणावर्त्त घुमाकर वंदना करना–इन सभी विधि-विधानों के पीछे भावों की पवित्रता का रहस्य छिपा हुआ है। तीर्थंकर भगवान की भावधारा राग-द्वेष रहित होने के कारण इतनी निर्मल और प्रभावशाली होती है कि उनके पास चूहा और बिल्ली भी एक-दूसरे के पास प्रेम से बैठते हैं। तीर्थंकर जहां पर रहते हैं, वहां चारों दिशाओं में पच्चीस-पच्चीस योजन तक तथा उर्ध्व और अधो दिशा में साढ़े बारह योजन तक इति (धान्य आदि का नाश करने वाले चूहों आदि का उपद्रव), मारी (सामूहिक मरण), अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि नहीं होते हैं। इसी प्रकार अशोक वृक्ष शोक मुक्ति का प्रतीक है। सिंहासन निर्भयता का प्रतीक है अर्थात् चार घाती कर्मों को जीतकर जो सिंह के समान निर्भय है, वे ही स्फटिक सिंहासन के अधिकारी हैं। चौसठ प्रकार के चमर चौसठ कलाओं के प्रतीक तथा तीन छत्र रत्नत्रय के प्रतीक हैं। देव दुंदुभि यदि धर्म की शरण का प्रतीक हैं तो पुष्पवृष्टि बसंत की शोभा और शांति की प्रतीक है। ये पुष्प जिनके पल्लवों के भाग नीचे और डंठल ऊपर है, मानो कह रहे हैं कि भगवान की शरण में आने वाला पतित जन भी उर्ध्वमुखी बनकर मुक्ति मंजिल

की ऊँचाइयों को पा सकता है। भामंडल शुक्ल लेश्या का तथा दिव्य ध्वनि उन वचनों की प्रतीक है, जिससे द्वादशांग वाणी का सृजन हुआ।

अठारह दोषों से रहित, वीतराग ऐसे अरिहंत भगवन्तों का जप, ध्यान, चिंतन, स्तवन आदि करने से उनका पवित्र भामंडल और पवित्र तरंगें हमारी चेतना को प्रभावित करती हैं, निर्मल करती हैं और अपने तुल्य स्वरूप में प्रतिष्ठित करने में परम उपयोगी सिद्ध होती हैं। सन्त कबीर ने कितना यथार्थ कहा है–

घट घट मेरा साइयां, सूनी सेज़ न कोय।
वा घट की बलिहारियां, जा घट परगट होय॥

अर्थात् घट-घट में प्रभु का वास है। हर हृदय में उस प्रभु की सेज बिछी है। कोई हृदय प्रभु के बिना नहीं है, पर उस हृदय की बलिहारी है, जिसमें वह ज्योति प्रकट हो जाती है।

जयाचार्य ने भी जपाभक्ति का महत्त्व अंकित किया है जो निम्न प्रकार है–

जपत जाप खपत पाप, तपत ही मिटायो।[4]

प्रभु का जाप जपने से पाप क्षय हो जाते हैं और संताप मिट जाता है।

प्रभु! लीनपणै तुम ध्यावियां,
पामै इन्द्रादिक नीं ऋद्धि हो।
बलि विविध भोग सुख संपदा,
लहै आमोसही आदि लब्धि हो॥[5]

प्रभु! नरेन्द्र पद पामै सही,
चरण सहित ध्यान तन मन्न हो।
प्रभु अहमिंद्र पद पामै बलि,
कियां निश्चल थारों भजन्न हो॥[6]

प्रभो! तल्लिनता पूर्वक तुम्हारा ध्यान करने से इन्द्र आदि की ऋद्धि प्राप्त होती है, विविध भोग सामग्री तथा आमर्षौषधि आदि लब्धियां प्राप्त होती हैं।

प्रभो! निश्चल मन से तुम्हारा भजन करने वाला नरेन्द्र पद को प्राप्त होता है। चारित्र युक्त तन-मन से ध्यान करने वाला अहमिंद्र पद को प्राप्त होता है।

अहो! वीतराग प्रभु तूं सही,
तुम ध्यान ध्यावै चित्त रोक हो।
प्रभु तुम तुल्य ते हुवै ध्यान सूं,
मन पायां परम संतोष हो॥[7]

प्रभु तुम सही अर्थ में वीतराग हो। जो अपने चित्त को एकाग्र बना तुम्हारा ध्यान करते हैं, वे परम मानसिक तोष को प्राप्त होने पर ध्यान चेतना के द्वारा तुम्हारे समान बन जाते हैं।

आचार्य अमितगिरी ने परमात्म द्वात्रिंशिका में लिखा है– "रागादयो: यस्य न संति दोषा:"।[8] अर्थात् जिसके राग-द्वेष रूप आदि दोष न हो, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो।

कल्याण मन्दिर के रचियता आचार्य सिद्धसेन कहते हैं– "त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि"।[9] प्रभो! अन्य लोगों की दृष्टि में भी केवल आप ही वीतराग हैं।

अनुयोग द्वार सूत्र में अरहंतों को सिद्ध भी कहा गया है। अन्तरात्मा की पवित्रता की दृष्टि से अरिहंत व सिद्ध में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर केवल प्रारब्ध कर्मों के भोग का है। देहधारी होने के कारण अरहंतों को प्रारब्ध कर्म का भोग रहता है, जबकि देह-रहित कर्म मुक्त सिद्धों को प्रारब्ध कर्म नहीं रहते।

जयाचार्य ने चौबीसी में अनेक स्थलों पर अर्हत् भक्ति के महत्त्व को दर्शाया है। यथा–विघ्न मिटै समरण कियां, [10] मिटै कर्म भरम मोह जाल हो, [11] मेटण भव भव खामी हो, [12] तप्त मिटै तुम ध्यान हो, निस्सनेही, [13] तू मेटण जम-त्राण, [14] शिव दायक तू जगनाथ, [15] भाव जप्या शिव होय, [16] समरण करतां आपरो, मन वांछित होय, [17] इस प्रकार तीर्थंकर क्लेश-विदारक, संसार-संतारक, भव-सिंधु-पोत, तृष्णा तारक आदि संबोधनों से संबोधित होते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में बीस विहरमान (अरिहंत) विद्यमान हैं अत: सर्वप्रथम प्रात:काल शयन त्यागते ही ईशान-कोण (पूर्व और उत्तर दिशा के बीच) में मुखाभिमुख होकर श्री सीमंधर आदि भगवन्तों को तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से स्वरूप चिंतन के साथ भाव-वंदना करनी चाहिए। तत्पश्चात् गुरुदेव जिस दिशा में विराज रहे हैं, उस दिशा में तीन बार वंदना करनी चाहिए। यह प्रयोग भावधारा परिवर्तन एवं मंगल विचारों से अपनी आत्मा को भावित करने के लिए वरदान स्वरूप सिद्ध होगा।

नमस्कार महामंत्र में महान शक्ति है। इसके जप से तीर्थंकर पद की प्राप्ति में कुछ भी संशय नहीं है। ज्ञातासूत्र में वर्णन आता है कि "अरहंत तथा सिद्ध आदि की उत्कृष्ट भक्ति से स्तुति करता हुआ साधक तीर्थंकर पद का उपार्जन कर सकता है"। यदि हृदय को उत्कृष्ट भक्ति रस से परिप्लावित करके नमस्कार

महामंत्र का जप किया जाए तो तीर्थंकर पद की प्राप्ति में कुछ भी संशय नहीं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ''णमो अरहंताणं''–इस सप्ताक्षरी-मंत्र के जप से अहंकार तथा ममकार का विलय होता है। अपूर्णता (अज्ञान, मूर्च्छा, विघ्न) समाप्त होती है और अनंत की अनुभूति होती है।

सन्दर्भ–

1. समवायांग–समवाय, 34
2. वही, समवाय, 35
3. एसो पंच णमोक्कारो, पृ. 96
4. चौबीसी, ढाल–19, गाथा–6

5-7. वही, ढाल–8, गाथा–4, 5, 3

8. परमात्म द्वात्रिंशिका, श्लोक–16
9. कल्याण मन्दिर स्तोत्र, श्लोक–18
10. चौबीसी, 6/6
11. वही, 8/1
12. वही, 9/2
13. वही, 10/1
14. वही, 13/5
15. वही, 13/6
16. वही, 13/4
17. वही, 6/4.

3. णमो सिद्धाणं

'णमो सिद्धाणं' यह नमस्कार महामंत्र का दूसरा पद है। इसमें पांच अक्षर हैं। इस पंचाक्षरी मंत्र को सिद्धिदायक मंत्र माना गया है। भगवान महावीर की वाणी ''अप्पा सो परमप्पा'' अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा में परमात्मा बनने की क्षमता है। जैनदर्शन में परमात्मा का नाम सिद्ध है। जैन दर्शन में परमात्मा का स्वरूप अकर्त्ता, अमूर्त्त, चैतन्यमय और समदर्शी है। वे आठ कर्मों को क्षय कर परम सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। कर्मों का क्षय करने से उनमें आठ विशेषताएं प्रकट होती हैं, यथा–

1. **केवलज्ञान**–ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे समग्र लोकालोक का स्वरूप हस्तामलकवत् हो जाता है।

2. **केवलदर्शन**–दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से केवल दर्शन की प्राप्ति होती है, जिसके द्वारा अखिल पदार्थों के सामान्य धर्मों का प्रत्यक्ष बोध होता है।

3. **अव्याबाध सुख**–वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाध-सुख (आत्मिक सुख) होता है। अव्याबाध-सुख का अर्थ है–बाधा पीड़ा रहित सर्वथा एक रस अनिर्वचनीय आनन्द।

4. **क्षायिक सम्यक्त्व**–मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र (वीतराग भाव, आत्म रमण) की प्राप्ति होती है। इनकी प्राप्ति के पश्चात् आत्मा कभी भी मोह दशा को प्राप्त नहीं होती।

5. **अटल अवगाहन**–आयुष्य कर्म के क्षय से अटल अवगाहन अर्थात् अक्षय स्थिति मिलती है। अक्षय स्थिति के बल से आत्मा जन्म-मरण के चक्र से सर्वथा रहित हो जाता है। अत: सिद्धों की स्थिति आदि–अनन्त होती है। आदि है अन्त नहीं।

6. **अरूपी**–नाम कर्म के क्षय से अरूपी गुण की प्राप्ति होती है। नाम कर्म के अस्तित्व में ही शरीर का अस्तित्व है और शरीर के अस्तित्व में ही रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि होते हैं। अस्तु नाम कर्म के अभाव में अरूपित्व स्वयंसिद्ध है।

7. **अगुरुलघुत्व**–गोत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व गुण प्राप्त होता है। अगुरुलघु का अर्थ है–न भारी न हल्का। अत: सिद्ध आत्मा कर्मजन्य ऊँचपन तथा नीचपन दोनों से रहित है।

8. **निरन्तराय** – अन्तराय कर्म के क्षय से अनंत वीर्य (निरन्तराय) की प्राप्ति होती है। अनंतवीर्य आत्मा की वह विशेष शक्ति है, जिसके द्वारा आत्मा अपने पूर्ण स्वरूप में विकसित हो जाती है।

ऋषि व्यक्तित्व के धनी आचार्यश्री तुलसी ने अनुप्रास अलंकार में सिद्धों के इसी स्वरूप को नमस्कार करते हुए उनकी स्तुति में कहा है–

अक्षय अरुज अनंत अचल जो
अटल अरूप स्वरूप अमल जो
अजरामर अद्वैत णमो श्री सिद्धाणं[1]

अलौकिक स्वरूप

आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध, पांचवे अध्याय और छठे उद्देशक में सिद्धों का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है–

सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ।
मई तत्थ न गाहिया, ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने॥[2]

से न दीहे, न हस्से, न तंसे, न चउरसे, न परिमंडले, न आइतंसे, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुक्किले, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे, न तिते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे, न कक्कड़े, न मउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न जिद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रुद्दे, न संगी, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिन्ने, सण्णे, उवमा, न विज्जति, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं णत्थि, से न सद्दे, न रुवे, न रसे, न फासे, इच्चेतावंती, त्ति बेमि।

अर्थात् परमात्मा (शुद्ध आत्मा) का वर्णन करने में कोई शब्द समर्थ नहीं है, कोई भी कल्पना वहां तक पहुँचती नहीं है, मति भी वहां प्रवेश नहीं करती। केवल सम्पूर्ण ज्ञानमय आत्मा ही वहां है।

सिद्ध न दीर्घ है, न ह्रस्व, न वृत्त और न परिमंडल, न त्रिकोण है, न चतुष्क, वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है और न स्पर्श है, मंडलाकार नहीं, लम्ब नहीं, काले नहीं, नीले नहीं, लाल नहीं, पीले नहीं, शुक्ल, सुगंधवान नहीं, दुर्गंधवान नहीं, तिक्त नहीं, कटु नहीं, कसैले नहीं, खट्टे नहीं, मीठे नहीं, कठोर नहीं, कोमल नहीं, गुरु नहीं, लघु नहीं, शीत नहीं, उष्ण नहीं, चिकने नहीं, रूखे नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं, केवल परिज्ञान रूप है, ज्ञानमय है, उनके लिए कोई उपमा नहीं दी जा सकती है। वे अरूपी हैं, उनके लिए किसी पद का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार समस्त पौद्गलिक गुणों और

पर्यायों से अतीत, शब्दों द्वारा अनिर्वचनीय सत् चित् आनंदमय सिद्ध स्वरूप है। आचार्यश्री तुलसी ने इन्हीं भावों को काव्य में गूंथते हुए निम्नोक्त प्रकार से अभिव्यक्ति दी है–

लौट आते हैं सभी स्वर
तर्क का सम्पर्क कैसा
विषय जो मति का नहीं है
ओज़ वह अशरीर जैसा
अगुरुलघु वह अनाकृति है
निरंजन वह निर्विकृति है
गंध स्पर्श रस वर्ण विमुक्ता
उपमातीत अरूपी सत्ता
वह केवल ज्ञाता द्रष्टा है
निज पर्यायों का स्रष्टा है
वह आत्मा है परमात्मा है
सर्वात्मा है सर्वज्ञानी
आयारो की अर्हत् वाणी॥[3]

प्रज्ञापना में सिद्धों के प्रकार

जैन दर्शन सार्वभौम दर्शन है। केवल जैन श्रावक ही सिद्ध (ईश्वर) हो सकता है, यह जैन दर्शन की मान्यता नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार किसी धर्म को मानने वाला व्यक्ति कर्मों से सर्वथा मुक्त हो सकता है। आत्मा की कर्मों से सर्वथा मुक्ति ही मोक्ष है। जैन आगम प्रज्ञापना में सिद्धों के पन्द्रह प्रकार उल्लिखित हैं, जो इस सत्य के पुष्ट प्रमाण हैं। सिद्धान्ततः सब सिद्धों का स्वरूप एक समान है। परन्तु सिद्धों के जो पन्द्रह प्रकार उपलब्ध हैं, वे पूर्व अवस्था के आधार पर किये गये हैं।[4] यथा–

1. तीर्थसिद्ध–तीर्थंकर के द्वारा तीर्थ की स्थापना करने के पश्चात् मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे–अर्जुनमाली आदि।

2. अतीर्थसिद्ध–तीर्थ की स्थापना से पूर्व तथा तीर्थ विच्छेद के बाद मोक्ष जाने वाले जीव।

3. तीर्थंकर सिद्ध–तीर्थंकर बनकर सिद्ध होने वाले जीव। जैसे–चौबीस तीर्थंकर।

4. अतीर्थंकर सिद्ध–तीर्थंकर बने बिना ही मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे– गौतम, गजसुकुमाल, धन्नाजी आदि।

5. स्वलिंग सिद्ध–जैन साधु के वेश में केवली बन मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे–सुधर्मा स्वामी आदि।

6. अन्यलिंग सिद्ध–जैन साधु के अतिरिक्त अन्य वेश में (परिव्राजक, भगवा वस्त्रधारी, वल्कलधारी आदि) मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे–वल्कल चीरी।

7. गृहलिंग सिद्ध–मरुदेवा माता की तरह गृहस्थ के वेश में मोक्ष जाने वाले जीव।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध–स्त्रीलिंग में मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे–चन्दनबाला आदि। स्त्रीलिंग स्त्रीत्व का सूचक है। स्त्रीत्व तीन प्रकार का होता है–वेश, वेद, शरीराकृति। यहां शरीराकृति रूप स्त्रीत्व लिया है। वेद के उदय से कोई मोक्ष नहीं जा सकता और वेश अप्रमाण है अत: शरीराकृति रूप स्त्रीत्व ही संगत है।

9. पुरुषलिंग सिद्ध–पुरुषलिंग में मोक्ष जाने वाले जीव। यथा–गौतम स्वामी, अतिमुक्तक मुनि आदि।

10. नपुंसकलिंग सिद्ध–नपुंसक आकार में मोक्ष जाने वाले जीव। जैसे–गांगेय। यहां नपुंसक का अर्थ जन्मजात नपुंसक से नहीं कृत नपुंसक से है।

11. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध–नमि राजर्षि की तरह एक वस्तु के निमित्त से बोध प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले जीव।

12. स्वयंबुद्ध सिद्ध–तीर्थंकर की तरह स्वयं ही बोधि प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले जीव।

13. बुद्ध बोद्धित सिद्ध–आचार्य आदि के द्वारा बोधि प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले जीव। यथा–जम्बु स्वामी।

14. एक सिद्ध–एक समय में एक ही जीव मोक्ष जाये। जैसे–भगवान महावीर।

15. अनेक सिद्ध–एक समय में एक साथ अनेक जीव मोक्ष जाये। जैसे– भगवान ऋषभ। एक समय में जघन्य अवगाहना वाले एक सौ आठ जीव मोक्ष जा सकते हैं। भगवान ऋषभ के साथ उत्कृष्ट अवगाहना वाले 108 जीव मोक्ष गये। अत: इसे आश्चर्यकारी घटना (अच्छेरे) के अन्तर्गत लिया गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्ध बनने के लिए कोई जाति, कुल, पद आदि बाधक नहीं है। अपनी उत्तम साधना से कोई भी जीव कर्मों का क्षय कर सिद्ध बन सकता है।

जैन दर्शन में ईश्वर संबंधी विचार

संसारी जीवों में सबसे उत्कृष्ट आत्मा को परमात्मा कहते हैं।[5] जो व्यवहार नय से देह रूपी देवालय में बसता है पर निश्चयनय से देह से भिन्न है, आराध्यदेव स्वरूप है, अनादि अनंत है, केवलज्ञान स्वरूप है, निःसंदेह वह अचलित पारिणामिक भाव ही परमात्मा है।[6] कर्म कलंक से रहित आत्मा को परमात्मा कहते हैं।[7] निःसंदेह दोष से जो रहित है और केवलज्ञान परम वैभव से जो युक्त है, वह परमात्मा (ईश्वर) है, इसके विपरीत परमात्मा नहीं है।[8] जिस समय विशुद्ध ध्यान के बल से कर्म रूपी ईंधन को भस्म कर देता है, उस समय यह आत्मा ही साक्षात् परमात्मा हो जाता है, यह निश्चय नय है।[9] ईश्वर को प्रभु, स्वामी भी कहा गया है।[10]

विविध ग्रंथों में उल्लिखित उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन दर्शन में परमात्मा को ही ईश्वर माना गया है और जगत् कर्त्ता, जगत् पालक एवं जगत् संहारक रूप से उसे मुक्त रखा गया है। अत्याधुनिक जैन चिंतक आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के ग्रंथों का अवलोकन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने ईश्वर को स्वीकार किया है किन्तु जैन चिंतन की कसौटी पर ही। उनके ईश्वर संबंधी विचार अन्य भारतीय दर्शनों से अलग है।

उनके अनुसार आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा के अद्वैत रूप को उनकी निम्नोक्त पंक्तियां इस प्रकार उद्‌घाटित करती हैं–

कौन कहता है अरे
ईश्वर मिलेगा साधना से
मैं स्वयं वह, वह स्वयं मैं
भावमय आराधना से
वह नहीं मुझसे विलग है
नहीं मैं भी विलग उससे
एक स्वर है एक लय है
त्वं अहं का भेद किससे?[11]

अर्थात् आत्मा और ईश्वर अलग नहीं है। त्वं अहं में भेद नहीं है। उपनिषद् में भी तत् (ब्रह्म) और त्वम् (आत्मा) को एक मानते हुए 'त्वमसि' कहा

गया है। अयं आत्मा ब्रह्म[12] और अहं ब्रह्मास्मि[13] से भी यही सिद्ध होता है कि आत्मा और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के चिन्तनानुसार– "हमारा आदर्श है अजर और अमर (तत्त्व) न की जरा और मौत। सुख भी ऐसा जिसमें कोई बाधा नहीं हो। वह सुख नहीं है, जिसमें एक क्षण तो सुख होता है और दूसरे क्षण में दुःख होता है। निर्विघ्न सुख अर्थात् जिसमें निरन्तर सुख का प्रवाह चालू रहता है। ज्ञान भी सीमातीत हो, अनंत हो। शक्ति भी असीम हो। इन सबको मिलाने से जिस आदर्श प्रतिमा का निर्माण होता है, वह आदर्श प्रतिमा है–ईश्वर। अर्थात् अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति, अनंत सुख आदि सम्पन्न आत्मा ही ईश्वर है।"[14] इस प्रकार जैन दर्शन में अरिहंत और सिद्ध (आत्मा का स्वरूप) ही ईश्वर माने गये हैं। इस अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ से अविच्छिन्न प्रवाहित जैन परम्परा के अनुसार उनका आदर्श गृहस्थ जीवन न्याय परायण राम राज्य तो प्रेरक है ही उनके अंतिम साधनामय संयमी जीवन वैराग्य रस से सराबोर साधक जीवन, परम पवित्र शुक्ल ध्यान की सतत् साधना से संप्राप्त अरहंत और सिद्ध अवस्था साधकों को सदा प्रेरित करती है। आज राम और हनुमान 'णमो सिद्धाणं' के अन्तर्गत प्रातः स्मरणीय, परम पुरुष बन गये हैं। इसी तथ्य की पुष्टि में भक्त हृदय आचार्यश्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियां–

प्रहसम परम पुरुष नै समरूं।
परम पुरुष नै सुध मन समर्यां आतम निर्मल होय।
निज में निज गुण परगट जोय॥

उपरोक्त सिद्ध स्वरूप के विश्लेषण का निष्कर्ष यही है कि मुक्त आत्माएं मनुष्य लोक से मुक्त होती हैं। कर्म मुक्त होते ही आत्मा एक समय में ही ऊँची लोकान्त तक पहुँच जाती है। सिद्धशिला के एक योजन ऊपर लोकान्त है। इस लोकान्त भाग में मुक्त आत्माएं पैंतालीस लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में अवस्थित रहती हैं। आज तक अनंत आत्माएं सिद्ध हो चुकी हैं पर वे सब आत्मप्रदेशों के अव्याघातत्त्व के कारण प्रदीपप्रभा पटलवत् इसी पैंतालीस लाख योजन विषकम्भ वाले क्षेत्र में समाहित है। अतः स्पष्ट है कि मोक्ष-नरक, देवलोक की तरह कोई स्थान नहीं, आत्मा की विशिष्ट पर्याय है। सर्वथा शुद्ध, बुद्ध और सिद्ध रूप आत्मा की अवस्था मोक्ष कहलाती है। जैसा कि औपपातिक सूत्र में कहा गया है–

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोदिं चइत्ताणं, तत्थ गन्तूण सिज्झइ॥

जिज्ञासा हो सकती है कि सिद्ध भगवन्त लोकान्त में अवस्थित होते हैं, अलोकाकाश में क्यों नहीं? योग शास्त्र में इसका समाधान देते हुए कहा है–

नोर्ध्वमुपग्रह विरहादधोऽपि, वा नैव गौरवाभावात्।
योग-प्रयोग-विगमात, न तिर्यगपि तस्य गतिरस्ति॥

अर्थात् सिद्ध भगवन्त की आत्मा लोक के ऊपर–अलोकाकाश में नहीं जाती क्योंकि वहां गति में सहायक धर्मास्तिकाय नहीं है, सिद्ध भगवन्त की आत्मा नीचे भी नहीं आती क्योंकि उसमें गुरुता (भार) नहीं है। तिरछी भी नहीं जाती क्योंकि उसमें काय आदि योग और प्रयोग अर्थात् परप्रेरणा नहीं है।

उपासना विधि

अर्हत् और सिद्ध दोनों परमात्मा हमारे लिए उपास्य है। इन दोनों में अर्हत् देहधारी होने के कारण उनकी उपासना निर्विवाद समझ में आ जाती है परन्तु सिद्ध भगवन्तों के न शरीर है, न इन्द्रियां हैं, न रूप है और न ही उनको कोई प्रतिक्रिया है, फिर उनकी उपासना कैसे संभव है?

समाधान की भाषा में कहा जा सकता है कि भारतीय साधना पद्धति में उपासना के लिए दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं–सुगुण उपासना और निर्गुण उपासना। जहां मूर्ति आदि का निर्माण होता है, वह सुगुण उपासना और जहां-मूर्ति के निर्माण बिना उपासना की जाती है, वह निर्गुण उपासना कहलाती है। कबीर आदि अनेक संत हुए जिन्होंने निर्गुण की उपासना की। जो सत्व, रजस् और तमस्–इन तीनों गुणों से परे होता है, उनकी उपासना निर्गुण की उपासना है।

जैन परम्परा में निर्गुण उपासना के स्थान पर रूपातीत शब्द का प्रयोग हुआ है। मंत्र का ध्यान करना पदस्थ ध्यान है और निराकार का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। ''णमो सिद्धाणं'' मंत्र बहुत शक्तिशाली मंत्र है। इसकी शक्तिमत्ता का एक रहस्य यह है कि इस मंत्र के साथ एक विराट भावना जुड़ी हुई है, विराट आधार जुड़ा हुआ है। जब प्रबल भावधारा के साथ समग्र कल्पना और अखिल विशेषताओं के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है, 'णमो सिद्धाणं' की उपासना, जप अथवा ध्यान किया जाता है तब यह मंत्र शक्ति और सिद्धि देता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राग-द्वेष रहित परमात्मा प्रसन्न तो होते नहीं किन्तु भक्ति पूर्वक स्तुति द्वारा कर्मों का क्षयोपशम होने से आराधक को आत्मिक प्रसन्नता होती है। अर्हत् व सिद्ध भगवन्तों की आराधना से उपलब्ध अभीष्ट फल प्राप्ति ही उनकी प्रसन्नता

मानी जाती है इसलिए कहा गया है–"चउविसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु", "आरोग्ग बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु", "सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु"। मूलत: आर्हन्त्य, सिद्धत्व आत्मा की मूल स्थिति है, अवस्था है, जो छिपा है उसे प्रकट करना है, जो पर्दे में है उसे पर्दातीत करना है। उसमें मंत्र-जप, भक्ति, ध्यान, स्तवन, स्मरण, कीर्तन कुछ भी निमित्त बन सकता है, अपेक्षा है–तादात्म्य भाव व पूर्ण समर्पण भाव की। सिद्धों के गुणग्राम करने से वे गुण जो हमारे भीतर विद्यमान हैं, वे प्रगट हो जाते हैं और सिद्धत्व साकार हो उठता है।

ध्यान रूप उपासना

जैन साधना पद्धति में ध्यान के दो प्रकार हैं–सालम्बन ध्यान और निरालम्बन ध्यान। जब निरालम्बन या निर्विचार ध्यान की स्थिति बनती है, तब सिद्ध की उपासना शुरू होती है। निर्विचार ध्यान का अर्थ है–जहां विचार, जल्प, कल्पना, शब्द सब छूट जाएं केवल चैतन्य का अनुभव रहे। सालम्बन ध्यान में पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ–इन तीन प्रकार के ध्यानों का समावेश होता है।

❊ मंत्र का ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

❊ शरीर प्रेक्षा करना, आत्मचिंतन करना, शरीर के बारे में चिंतन करना, शरीर पर ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान है।

❊ किसी प्रतिबिम्ब या प्रतीक का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है।

❊ निराकार का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। यह निरालम्ब ध्यान की कोटि में आता है।

1. सालम्ब ध्यान

णमो सिद्धाणं के मंत्र रूप जितने प्रयोग प्रचलित है, वे सब पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत समाहित हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने सिद्धों के पदस्थ और रूपस्थ ध्यान की अनेक विधियों का उल्लेख अपनी अनेक कृतियों में किया है, जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

(1) **सिद्धा**–यह मंत्र अति प्राचीन है। यह महान और शक्तिशाली मंत्र है। दर्शन-केन्द्र पर इस मंत्र का वाचिक लयबद्ध उच्चारण पांच से पन्द्रह मिनट तक किया जा सकता है। यह अन्तर्दृष्टि के जागरण का प्रयोग है। प्रात:काल सूर्योदय के समय 'सिद्धा' जप मंगलकारी माना गया है।

(2) **ॐ णमो सिद्धम्**–यह भी प्राचीन और प्रभावक मंत्र है। इसका प्रयोग भी उपरोक्त विधि से किया जाता है।

(3) **ॐ णमो सिद्धाणं**—दर्शन-केन्द्र पर बाल सूर्य (अरुण रंग) के रंग के साथ इस मंत्र का जप करने से आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है। सूर्य और मंगल ग्रह का प्रतिकूल प्रभाव भी इस जप से अनुकूल और उपयोगी हो जाता है। श्वास के साथ इस मंत्र का जप करने से मन की सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं।

(4) **ॐ णमो सिद्धम्**—प्राचीन काल में पढ़ने वाला शिष्य जब अपना अध्ययन प्रारम्भ करता तो सबसे पहले 'ॐ णमो सिद्धम्' मंत्र लिखता था। केवल जैन ही नहीं, पुराने जितने भी लोग हैं, गुरुजी पढ़ाते समय उन्हें यह मंत्र लिखाते थे। गुजरात, महाराष्ट्र और पूरे दक्षिण में यह मंत्र सर्वत्र व्यापक था।

"ॐ नमः सिद्धम्" मंत्र का विधिवत् शरीरस्थ अंगों पर न्यास करने से शरीर सुरक्षा कवच का निर्माण होता है। इसकी विधि निम्न प्रकार से उपलब्ध है[15]—

1. मंत्र—ॐ नमः सिद्धम्

2. मंत्र संख्या—इस मंत्र का एक बार पाठ करें।

जिस अवयव पर न्यास किया है, उस अवयव पर मंत्र का साक्षात् करें।

3. प्रयोग विधि—पांचों अवयवों पर इस मंत्र का न्यास करें।

ॐ	भ्रू युग्म
न	नासाग्र
मः	ओष्ठ युगल
सि	कर्णपाली
द्धं	ग्रीवा

4. परिणाम—शरीर रक्षा और कवच।

5. चोर भय निवारण मंत्र—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं सिद्धदेवं नमः।

यह मंत्र यात्रा में सात बार बोलकर वस्त्र के गांठ देकर चलें तो चोर भय दूर होता है।

6. सिद्ध के मंत्र की साधना तथा उपासना सिद्धि के लिए की जाती है। सिद्धों का ध्यान भी रूप के साथ किया जा सकता है। रूपस्थ ध्यान का एक सुन्दर सूत्र मिलता है—

चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागर-वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु॥

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी का कहना है कि यह सिद्धि की साधना है, अध्यात्म विकास का मंत्र है। जो व्यक्ति सिद्धि चाहता है, अपने आप में सिद्धि का वरण करना चाहता है, उसके लिए यह उत्कृष्ट सूत्र है।

सिद्ध की उपासना तीन रूपों में की जाती है[16]–

1. श्वेत निर्मल ज्योति के रूप में सिद्ध की उपासना ललाट पर। अर्द्धचन्द्र का श्वेत निर्मल ज्योति के रूप में ध्यान।

2. अरुण रंग में सिद्ध की उपासना दर्शन-केन्द्र पर।

3. नीले रंग में सिद्ध की उपासना विशुद्धि-केन्द्र पर। समुद्र के जल-सा नीला रंग।

उपरोक्त तीनों रूपों में सिद्ध की उपासना की जाती है। प्राचीन मंत्रशास्त्र का अभिमत है जो अरुण, श्वेत और नील रंग–इन तीन रंगों की उपासना करता है, वह बहुत सारी समस्याओं से पार पा जाता है। यह सिद्ध की साकार उपासना है। इस रूप में उपासना करता हुआ साधक निवेदन करता है–चन्द्र के समान निर्मल, सूर्य के समान तेजस्वी और सागर के समान गंभीर–इन तीन रूपों में मुझे सिद्धि दे। यह सिद्धि की सफलता का महत्त्वपूर्ण मंत्र है। सिद्ध की उपासना का यह महान् सूत्र है।

मंत्र रूप में भी इस गाथा के अलग-अलग पद्यों को अपने-अपने केन्द्र पर मानसिक तथा वाचिक रूप में जपा जाता है, यथा–

1. चन्देसु निम्मलयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
2. आइच्चेसु अहियं पयासयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
3. सागर-वर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
4. सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
5. ॐ ह्रीं ऐं ओं जीं जौं चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा, सागर-वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु मन मनोवांछितं पूरय पूरय स्वाहा।

इस पंचम मंत्र को एक हजार बार जपने से कर्म निर्जरा के साथ-साथ मनः शैथिल्य दूर होता है एवं प्रतिष्ठा बढ़ती है।

2. निरालम्ब ध्यान

निरालम्ब ध्यान रूपातीत ध्यान है, जिसका अर्थ है–सिद्ध के स्वरूप का चिंतन। अनंत-ज्ञान, अनंत-दर्शन, अनंत-शक्ति, अनंत-आनन्द, अजर, अमर,

अमूर्त–यह सिद्ध का स्वरूप है। सिद्धों की जितनी सघन विशेषताएं हैं, उन सबकी कल्पना करें। एकाग्रता को सघन बनायें। निर्विकल्पता की स्थिति घटित हो जायेंगी। कल्पना से मुक्त होकर केवल चैतन्य का अनुभव करें। न कोई विचार, न जप, न कल्पना और न शब्द का आलम्बन। सारे आलम्बन छूट जायें। केवल चैतन्य का अनुभव चलता रहे। यह निर्विकल्प ध्यान, सिद्ध की उपासना पद्धति है। जब निर्विकल्प ध्यान की स्थिति बनती है, सिद्ध की उपासना प्रारंभ हो जाती है।

उपरोक्त विधि का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने मन को निर्विकल्प बनाने के कुछ सूत्र प्रस्तुत किये हैं। आलम्बन से निरालम्बन ध्यान तक पहुँचने की प्रयोग पद्धति का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार है[17]–

निर्विचार ध्यान की स्थिति प्राप्त करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं– स्वरयंत्र की सक्रियता एवं जीभ की चंचलता को समाप्त करना। इसको कम किये बिना स्मृति और कल्पना से छुटकारा नहीं मिल सकता। स्वरयंत्र को निष्क्रिय बनाने के प्रयोग–

1. जीभ को उलट कर तालु की ओर ले जाना।
2. जीभ को दांतों की जड़ में टिकाना।
3. जीभ को दांतों के बीच में अधर रखना।

ये सारे जीभ की स्थिरता के प्रयोग हैं। जैसे ही यह स्थिरता सधती है, रूपातीत ध्यान की स्थिति निर्मित्त हो जाती है। इस अवस्था में हम रूपातीत ध्यान कर सकते हैं। प्रारम्भ में आलम्बन भी लेना होता है। वह आलम्बन हो सकता है 'ॐ' या 'अर्हम्' का। जीभ की स्थिरता की मुद्रा में इसका उच्चारण करें तो उच्चारण अधुरा ही रहेगा। 'ओ' भीतर रहेगा, 'म्' का उच्चारण हो पायेगा। 'अर्हं' अव्यक्त रहेगा 'म्' सानुनासिक बन जायेगा। इस अवस्था में पांच-सात मिनट रहें। निर्विकल्प ध्यान में पहुँचने की पृष्ठभूमि तैयार हो जायेगी।

सुरक्षा कवच

बाहरी आघातों, प्रत्याघातों, अनिष्ट विचारों से अपनी सुरक्षा के लिए मंत्र का कवच किया जाता है, वैसे ही प्राण ऊर्जा का कवच बनाया जा सकता है।

विधि–दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करें। "ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं" का जप करें। बाल सूर्य को सामने देखें। उसकी रश्मियां दर्शन-केन्द्र पर आ रही हैं, ऐसा

सोचें। ये रश्मियां शरीर के प्रत्येक अवयव को प्राण ऊर्जा से परिपूर्ण कर रही हैं। मंत्र का जप निरन्तर चलता रहे। शरीर के चारों ओर अभेद्य कवच का निर्माण हो रहा है, ऐसा संकल्प पुष्ट करें। इस प्रकार शरीर के चारों ओर तीन वलयों का निर्माण करें।[18]

निष्कर्ष

जीवन का उद्देश्य सिद्ध स्वरूप में अवस्थित होना है। अत: सिद्ध-स्वरूप एवं सिद्धों का स्मरणं, अथवा जप, ध्यान करने से परम आत्मशांति का अनुभव होता है। सिद्धत्व आत्मोन्नति तथा पवित्रता का सर्वोत्कृष्ट रूप है। 'णमो सिद्धाणं' यह मंत्र अत्यन्त शक्तिशाली एवं पवित्र मंत्र है। दर्शन-केन्द्र इसकी आराधना का केन्द्र है। दर्शन-केन्द्र जागृत होने से एकाग्रता बढ़ती है तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। कार्यक्षमता विकसित होने से कार्य सिद्धि होती है। समस्या का समाधान खोजने की क्षमता का विकास होता है। मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। यह मानसिक प्रसन्नता धीरे-धीरे आनंद का रूप ले लेती है। आनंद का ही दूसरा नाम है–परमात्मा अर्थात् एक दिन आत्मा परमात्मा बन जाती है। अत: प्रबल भावना के साथ निर्विकल्प स्थिति में पहुँचकर इस मंत्र की आराधना करनी चाहिए। यह मंत्र ध्यान, प्रयास और अभ्यास द्वारा परिणमित होकर, प्रसादमय बनकर पूर्णत्व प्रकट करता है। आज्ञा-चक्र (दर्शन-केन्द्र) के अन्दर उतरकर यह मंत्र साधक को पूर्ण प्रेम, आनन्द और प्रसन्नता से भर देगा। अत: सिद्ध भगवन्तों की उपासना से परमानन्द, परम सुख तथा समृद्धि की प्राप्ति की जा सकती है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मुक्ति न दिगम्बरत्व में है, न श्वेताम्बरत्व में, न तर्कवाद में है, न तत्त्ववाद में और न ही किसी एक पक्ष का आश्रय लेने में है। वास्तव में कषायों से सर्वथा मुक्त होना ही मुक्ति है।

सन्दर्भ –

1. नमस्कार महामंत्र गीत, पद्य-2
2. आचारांग प्रथम श्रुत स्कन्ध, 52123-138
3. आत्मा के आस-पास, पृ. 1
4. प्रज्ञापना, 1/7 तथा टीका
5. समाधि शतक, टीका, 6/225/15
6. परमात्म प्रकाश

7. मोक्ष पाहुड–कम्म कलंक विमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो।
8. नियमसार, 7
9. ज्ञानार्णव अधिकार, 21/7/22
10. एकार्थक कोश, पृ. 31
11. फूल और अंगारे, पृ. 433
12. वृहदारण्यक उपनिषद्, 2/5/19
13. वही, 1/4/10
14. जीवन की पोथी, पृ. 3
15. मंत्र : एक समाधान, पृ. 180
16. मन का कायाकल्प, पृ. 99
17. जैन धर्म के साधना सूत्र, पृ. 186, 187
18. भीतर की ओर, पृ. 291.

4. णमो आयरियाणं

मानव स्वतंत्र रहना चाहता है। उसे किसी की अधीनता असह्य होती है। किन्तु कोई व्यक्तित्व ऐसा भी होता है, जिसके समक्ष मानव का स्वाभिमानी मन बरबस झुक जाता है तथा उसके प्रति पूज्यता का भाव जागृत होता है। वह उसे अपने से अधिक श्रेष्ठ समझने लगता है, वह है—गुरु। भारतीय संस्कृति में जिसे 'गुरु' नाम से संबोधित किया जाता है, वहां संत परम्परा में 'आचार्य' शब्द विख्यात है। शास्त्रों में आचार्यों के अनेक नाम उल्लिखित हैं, जैसे—कलाचार्य, शिल्पाचार्य, विद्याचार्य, गणाचार्य, वाचनाचार्य, धर्माचार्य आदि। नमस्कार महामंत्र में केवल धर्माचार्यों को नमस्कार करते हुए 'णमो आयरियाणं' कहा गया है।

तीर्थंकर के प्रतिनिधि

तीर्थंकर धर्मतीर्थ के संस्थापक होते हैं किन्तु तीर्थ का संचालन वे स्वयं नहीं करते। तीर्थ का संचालन उनकी उपस्थिति में गणधर और बाद में आचार्य करते हैं। इसलिए आचार्य देवाधिदेव श्री तीर्थंकर की पट परम्परा कहलाती है। तीर्थंकरों की अनुपस्थिति में चतुर्विध संघ के संगठन, संचालन, संरक्षण, संवर्धन, अनुशासन एवं सर्वतोमुखी अभ्युत्थान का सामूहिक एवं मुख्य उत्तरदायित्व आचार्य का होता है। यही कारण है कि जिनवाणी का यथातथ्य रूप से निरूपण करने वाले आचार्य को तीर्थंकर के समान एवं सकल संघ का नेत्र कहा है। गच्छार प्रकीर्णक-अधिकार एक में कहा गया है, ''तित्थयरो समो सूरि'' अर्थात् तीर्थंकरों की अनुपस्थिति में भविजनों की आध्यात्मिक प्रगति के लिए आचार्यों का स्थान अर्हत् के प्रतिनिधि के रूप में सर्वोपरि होता है। निर्युक्तिकार श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु ने अनुयोगद्वार सूत्र में आचार्य को दीपक की उपमा से उपमित करते हुए कहा है—'दिवा समा आयरिया' नन्दीसूत्र में आचार्य को धर्मसंघ रूपी रथ का सारथी कहा गया है। शास्त्रों में आचार्यों को चक्खुदयाणं, धर्मोपदेशक, बहुश्रुत, धर्मधुरन्धर, दीप, शरण, प्रतिष्ठा, गति, नाविक आदि अनेक गुणों एवं उपमाओं से अभिमंडित किया है। आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यों के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए पंच परमेष्ठी वंदना में कहा है—

अमलतम आचार धारा में, स्वयं निष्णात हैं,
दीप-सम-शत दीप, दीपन के लिए प्रख्यात हैं।
धर्म शासन के धुरन्धर, धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि, प्रगति में अनिवार्य है॥

नि:संदेह संघ की प्रगति में आचार्य की उपस्थिति अनिवार्य है। आचरण की विशुद्धि आचार्य का मौलिक गुण है। आचार्य पद की अर्थवत्ता गुणवत्ता पर निर्भर है। जिस प्रकार राज्य संचालन में केन्द्रीभूत शक्ति प्रधान मानी जाती है, उसी प्रकार आचार्य धर्मसंघ की केन्द्रीभूत शक्ति है। गुरु का मंगल सान्निध्य शिष्यों को प्रतिपल मंगल देता है। गुरु की आस्था हर समस्या का समाधान करती है। गुरु की गुरुता को शिरोधार्य करना स्वयं शिष्य के लिए महनीय होता है।

मोक्ष मूलं गुरोर्कृपा

भारतीय संस्कृति का इतिहास गुरु गौरव की यशोगाथाओं से भरा हुआ है। गुरु धर्म के आलोक से आलोकित होते हैं। प्रबल प्राण-शक्ति वाला व्यक्तित्व जो गुरुता के बिन्दु पर पहुँच जाता है, वह गुरु कहलाता है। उसमें शिष्य निर्माण की अद्भुत कला होती है। सद्संस्कारों का बीजावरोपण करने की अद्भुत क्षमता होती है। समर्थ गुरु प्राण प्रक्षेपण से शिष्य की प्राणशक्ति जागृत कर सकता है। यदि जीवन चौराहा है, तो गुरु साइन बोर्ड सदृश है। यदि जीवन विद्युत्-केन्द्र है तो गुरु कंट्रोलिंग पावर है। गुरु के उपदेश स्वाति नक्षत्र की उन बूंदों के समान हैं, जिन्हें श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाएं चातक की भांति पीते हैं। स्वाति नक्षत्र की ये बूंदें श्रद्धालुओं के हृदय-सीप में ढलकर दर्शन के मोती बनते हैं। जैसा कि कहा भी है—

धर्मज्ञो धर्मकर्त्ता च, सदा धर्म परायण:।
सत्वेभ्यो धर्म शास्त्रार्थ:, देशको गुरु उच्यते॥

समस्त शास्त्रों का ज्ञान गुरु के अधीन हैं अत: प्रत्येक व्यक्ति को गुरु की सम्यक् आराधना करनी चाहिए। उनकी कृपा के बिना शास्त्र ज्ञान कहां? गुरु कृपा को मोक्ष का मूल कहा गया है, जिसकी पुष्टि में एक प्राचीन श्लोक प्राप्त है।

ध्यान मूलं गुरोर्मुर्ति, पूजा मूलं गुरोर्पदं।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरोर्कृपा॥

गुरु के अनंत उपकार की अभिव्यक्ति में चाणक्य नीति में उद्धृत एक श्लोक की पंक्तियां निम्न प्रकार हैं—

एक मेवाक्षरं यस्तु, गुरु: शिष्य प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तत् द्रव्यं यद् दत्वाचानृति भवेत्॥

अर्थात् जो गुरु शिष्य को एक अक्षर का भी ज्ञान देता है, उस शिष्य के लिए पृथ्वी पर कोई ऐसा द्रव्य नहीं, जिसे देकर वह गुरु के ऋण से उऋण हो

सके। इसलिए कहा गया है–''शीष दियां गुरु मिले तो भी सस्ता जान''। संत कबीर ने बहुत यथार्थ कहा है–''हरि रूठै गुरु ठोर है, गुरु रूठै नहीं ठोर''। आगम वाणी भी यही कहती है कि शिष्य गुरु कृपा के अभिमुख रहें।

आयारियपाया पुण अपसन्ना,
अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाह सुहाभिकंखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा॥ [1]

अर्थात् आचार्य पाद के अप्रसन्न होने पर बोधि लाभ नहीं होता। आशातना से मोक्ष नहीं मिलता। इसलिए मोक्ष सुख चाहने वाले मुनि गुरु-कृपा के अभिमुख रहें। जीवन में सच्चे गुरु की प्राप्ति भाग्योदय से होती है। निर्मल, निस्पृह और निर्ग्रन्थ गुरु ही संसार सागर से पार पहुँच सकता है।

गुरु बिना गति नहीं

योग शास्त्र में गुरु के लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

महाव्रतधरा धीरा भैक्षमात्रोपजीविनः।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता॥

जो अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–इन पांच महाव्रतों का पालन करने वाला, धैर्यवान, शुद्ध भिक्षा से जीवन का निर्वाह करने वाला है, संयम में स्थिर रहने वाला तथा धर्म का उपदेश देने वाला है, वह गुरु माना गया है।

इस प्रकार गुरु लक्षणों से युक्त होकर जो गुरुता की कसौटी पर खरा उतरता है, वही व्यक्ति गुरु की गुरुता को प्राप्त कर सकता है। महामंत्र के पांच पदों के मध्य में स्थित है–आचार्य (गुरु)। आगमों में कहा गया है–''मज्झत्थो निर्जरापेही'' जो मध्यस्थ होता है, वही निर्जरादर्शी होता है। आचार्य के लिए मध्यस्थ होना अपेक्षित है। मध्यस्थ शब्द का एक अर्थ है–अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में सम रहने वाला। इसका दूसरा अर्थ है–विवाद की स्थिति में दो पक्षों के बीच समझौता करने वाला। अध्यात्म के क्षेत्र में मध्यस्थ रहने वाला व्यक्ति, कर्मों की विपुल निर्जरा करता है। आचार्य चतुर्विध धर्मसंघ के एकमात्र अधिकारी होते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार वे धर्मसंघ के विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। स्वयं आचार-कुशल होते हैं और चतुर्विध संघ को आचारवान बनाते हैं। वे श्रद्धा, धृति, शक्ति और शांति से सम्पन्न तथा

अष्टगणि संपदा से सुशोभित और छत्तीस गुणों के धारक होते हैं। अतः आचार्य धर्मसंघ की सेवा करते हुए महान् निर्जरा के भागी बनते हैं, इसलिए बहुत ही उपयुक्त कहा गया है–

शीत बिना सती नहीं, तप बिना यति नहीं।
गुरु बिना गति नहीं, इसमें फर्क रति नहीं॥

आचार्य को पंच-परमेष्ठी के मध्य में स्थित करने के तीन प्रमुख कारण हैं–

1. जिनशासनानुरागित्व,
2. सिद्ध ध्येयत्व,
3. प्रशासतृत्त्व।

अर्थात् आचार्य अरिहंत (के स्वरूप और उनकी आज्ञा) के अनुरागी होते हैं। सिद्ध भगवन्तों का सदा ध्यान करते हैं और (उपाध्यायों एवं सर्व साधुओं आदि संघ के) प्रशास्ता हैं इसलिए उन्हें मध्य में (तृतीय पद पर) स्थापित किया गया है।

'मज्झेहि' यह शब्द देहली दीपक न्याय का प्रतीक है। नमस्कार महामंत्र में आचार्य का पद ठीक मध्य में देहली दीपक की तरह सुशोभित है। जो मध्य में होता है, उसका एक विशिष्ट महत्त्व होता है। जैसे नाभि शरीर के मध्य में होती है, सुमेरु-पर्वत लोक के मध्य में होता है तो इनका अपना विशिष्ट महत्त्व है, वैसे ही चतुर्विध धर्मसंघ में आचार्य का पद अप्रतिम, गौरव, गरिमापूर्ण और सर्वोपरि माना जाता है। आचार्य अरिहंत सिद्ध के स्वरूप को प्रकाशित करके उनकी भक्ति का प्रसार करते हैं और उपाध्याय तथा साधु का निर्माण करते हैं। इसलिए उन्हें बिल्कुल बीच में ही स्थान प्राप्त है।

'णमो आयरियाणं' मंत्र पद का उच्चारण तथा पुनरावर्तन करते समय पद का अर्थ, स्वरूप, महत्ता को जानना आवश्यक है, क्योंकि जानकारी के अभाव में वह श्रद्धा, भक्ति, पूज्यता तथा आनन्द नहीं आ सकता जो आना चाहिए। इस दृष्टि से 'णमो आयरियाणं' की आचार-मीमांसा अपेक्षित है।

आचार्य कौन

कार्यकारी अध्यक्ष की भांति आचार्य तीर्थंकर के स्थापन्न होते हैं। एक दृष्टि से देखा जाये तो उनकी कार्यसूची तीर्थंकरों से लम्बी होती है। तीर्थंकरों के सामने गणधर, स्थविर, प्रवर्तक, गणावच्छेदक, आचार्य, उपाध्याय आदि रहते हैं पर

आचार्य के सामने इतने पद नहीं होते। संघ के विकास हेतु निम्नलिखित पांच कार्यों का आचार्य पर विशेष दायित्व रहता है–

1. अनुयोग यानि आगम परम्परा की सुरक्षा,
2. संघ में नीति का निर्धारण,
3. संघ में शिक्षा का विकास,
4. संस्कार निर्माण या स्थिरीकरण,
5. संघ में व्यवस्था बनाये रखना।

ये पांचों कार्य एक ही व्यक्ति करे, यह संभव नहीं है, पर कम से कम प्रथम दो कार्य आचार्य के लिए अनिवार्य हैं, जिन्हें दूसरों को सौंपा नहीं जा सकता। शेष तीन कार्य ऐसे हैं, जिन्हें चाहे तो आचार्य स्वयं करें और चाहे तो दूसरों से करवायें। ये सारी व्यवस्थाएं जब अच्छी तरह से चलती हैं तो गुरु और शिष्य का संबंध मधुर बना रहता है। गुरु और शिष्यों के संबंधों की मधुरता से ही स्वस्थ और शक्तिशाली संघ का निर्माण संभव है।

सोमप्रभ आचार्य ने गुरु कौन है? इस प्रश्न के समाधान में कहा है–

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं,
सुगति कुगति मार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो,
भवजलनिधिपोतस्तं बिना नास्ति कश्चित्॥[2]

आचार्य सोमप्रभ ने उपरोक्त श्लोक में गुरु कौन है? इस प्रश्न के समाधान में पांच सूत्रों को प्रस्तुत किया है–

1. जो मिथ्याज्ञान का नाश करता है,
2. आगमों के अर्थ का बोध कराता है,
3. कृत्य और अकृत्य के भेद का ज्ञान देता है,
4. धर्म-अधर्म के मर्म को प्रकट करता है,
5. नरक कुहर में गिरते प्राणियों की रक्षा करता है।

जैन आगमों में आचार्यों के छत्तीस गुणों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है–

❋ पांच महाव्रत साधना

- ❊ चार कषाय विजय
- ❊ पांच इन्द्रिय विकार विजय
- ❊ पांच समिति साधना
- ❊ तीन गुप्ति की आराधना
- ❊ नव विध ब्रह्मचर्य साधना
- ❊ पंच आचार पालना।

आचार्य का एक प्रमुख गुण है–परम आचार कुशल। जैन आचार मीमांसा में आचार शब्द बहुत व्यापक है। जितना व्यापक सन्दर्भ जैन आचार मीमांसा का है, उतना किसी अन्य आचार मीमांसा में नहीं मिलता। निःश्रेयस के निमित्त किये जाने वाले ज्ञानादि आसेवन रूप अनुष्ठान विशेष को आचार कहा जाता है, वह पांच प्रकार का है–

1. **ज्ञानाचार**–अविनय आदि आठ दोष रहित सम्यक् तत्त्व का ज्ञान कराने के कारणभूत श्रुत की आराधना।

2. **दर्शनाचार**–शंका-कांक्षादि से रहित सम्यक्त्व की शुद्ध आराधना।

3. **चारित्राचार**–ज्ञान एवं श्रद्धापूर्वक अहिंसा आदि का पूर्णरूपेण पालन।

4. **तपाचार**–इच्छा निरोध रूप अनशनादि व द्वादश प्रकार के तप का ग्रहण।

5. **वीर्याचार**–अपनी शक्ति का गोपन न करते हुए धार्मिक कार्यों में यथाशक्ति मन-वचन और काया से प्रवृत्त होना।

आचार्य पद के निर्वाचन के समय कुछ बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जैसे–श्रुत संपदा, बहुश्रुतता, निर्मल आचार-संपदा, मंत्र-ज्ञान, स्वमत और परमत दोनों की जानकारी, अविचल धृति, कुशल प्रवक्ता, गणहित चिन्ता आदि। इस प्रकार आचार्य की आठ गणि-संपदा का उल्लेख ठाणं सूत्र में उल्लिखित हैं। सम्पदा का अर्थ है–सम्पत्ति। आचार्य के पास आठ प्रकार की सम्पदाएं होनी आवश्यक मानी गई हैं। संक्षेप में आठ संपदाओं का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार से है[3]–

1. आचार संपदा : संयम की समृद्धि।
2. श्रुत संपदा : श्रुत शास्त्रीय ज्ञान की समृद्धि।
3. शरीर संपदा : शारीरिक सौन्दर्य।

4. वचन संपदा : वचन कौशल।

5. वाचना संपदा : अध्यापन पटुता।

6. मति संपदा : बुद्धि कौशल।

7. प्रयोग संपदा : वाद कौशल।

8. संग्रह संपदा : संघ व्यवस्था में निपुण।

आचार्य वैसे आचार शास्त्र के निष्णात पण्डित होते हैं। प्रभावशाली, मधुरभाषी तथा तेजस्वी होते हैं। उपर्युक्त आगमोक्त संपदाएं उनके व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं गरिमा को विशेष परिपुष्ट बनाने में सहायक होती हैं।

आठ गणि-संपदा के अतिरिक्त ये जाति-सम्पन्न, कुल-सम्पन्न, लाघव-सम्पन्न, निर्भय, तेजस्वी तथा लज्जावान (संयमी) होते हैं। इन गुणों से आचार्य का महत्त्व कई गुणा बढ़ जाता है। ठाणं सूत्र में आचार्य की छः कसौटियों का निर्देश दिया गया है। अर्थात् आचार्य अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति में निम्नलिखित कसौटियों को मध्य नजर रखें[4]–

1. श्रद्धाशील–अश्रद्धावान पुरुष मर्यादा-निष्ठ नहीं हो सकता। जो स्वयं मर्यादा-निष्ठ नहीं होता, वह दूसरों को मर्यादा में नहीं रख सकता। इसलिए आचार्य बनने की प्रथम योग्यता है–श्रद्धा सम्पन्न होना।

2. सत्यवादी–सत्य के दो अर्थ किये जाते हैं–यथार्थ वचन और प्रतिज्ञा के निर्वाह में समर्थ। यथार्थभाषी पुरुष ही यथार्थ का प्रतिपादन कर सकता है। जो की हुई प्रतिज्ञा के निर्वाह में समर्थ होता है, वही दूसरों में विश्वास उत्पन्न कर सकता है। आचार्य दूसरों के लिए विश्वस्त होना चाहिए। इसलिए उनकी दूसरी योग्यता है–सत्य सम्पन्न होना।

3. मेधावी–मेधा के दो अर्थ किये गये हैं–मर्यादावान और श्रुत ग्रहण करने की शक्ति से सम्पन्न। जो व्यक्ति स्वयं मर्यादावान है, वही दूसरों को मर्यादा में रख सकता है और वही अपने गण में मर्यादाओं का अक्षुण्ण पालन करवा सकता है।

जो व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न होता है, वही श्रुत ग्रहण करने में समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति ही दूसरों (गुरु आदि) से श्रुत ग्रहण कर शिष्यों को उसका अध्ययन कराने में समर्थ हो सकता है। इसलिए उनकी तीसरी योग्यता है–मेधा सम्पन्न होना।

4. बहुश्रुत–जैन परम्परा में बहुश्रुत व्यक्ति का बहुत महत्त्व रहा है। निशीथ भाष्य के अनुसार बहुश्रुत के तीन प्रकार है–

(1) जघन्य बहुश्रुत–जो निशीथ सूत्र का ज्ञाता हो।

(2) मध्यम बहुश्रुत–जो निशीथ और चौदह पूर्वों का मध्यवर्ती ज्ञाता हो।

(3) उत्कृष्ट बहुश्रुत–जो चतुर्दशपूर्वी हो।

आचार्य का बहुश्रुत होना बहुत आवश्यक है। जो बहुश्रुत नहीं होता, वह अपने शिष्यों की ज्ञान-सम्पदा कैसे बढ़ा सकता है? अबहुश्रुत की निश्रा में रहने वाला गण विस्तार नहीं पा सकता। इसलिए उनकी चौथी योग्यता बहुश्रुतता है।

5. शक्तिशाली–गण नायक को शक्ति सम्पन्न होना चाहिए। उनकी शक्ति सम्पन्नता के चार अवयव हैं–

1. शरीर से स्वस्थ एवं दृढ़ संहनन वाला होना।

2. मंत्र के विधि-विधानों का ज्ञाता तथा अनेक मंत्रों की सिद्धियों से सम्पन्न होना।

3. तंत्र की सिद्धियों से सम्पन्न होना।

4. परिवार से सम्पन्न तथा विशिष्ट शिष्य संपदा से युक्त होना। इन्हीं तथ्यों की पुष्टि में गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी का एक पत्र यहां उद्‌धृत किया जा रहा है–

महाश्रमण शिष्य मुदित
सुखपृच्छा!

तुम्हें महाप्रज्ञ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला है। अपना दायित्व जागरूकता के साथ निभाना। उनकी केवल उपासना ही नहीं करनी है, उनसे कुछ उपलब्धियां भी हासिल करनी हैं। तुम्हें महाप्रज्ञ के पास ज्ञान, ध्यान और कुछ मंत्र आदि की विधियां हासिल करने का सलक्ष्य प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे भविष्य के लिए ही नहीं, संघहित में भी उपयोगी होगा।

गणाधिपति तुलसी

6. अल्पाधिकरण–अधिकरण का अर्थ है–कलह या विग्रह। जो स्वमत और परमत के साथ कलह करता रहता है, उसका गौरव नहीं बढ़ता। जिसके प्रति गुरुत्व की भावना नहीं होती, वह गण को लाभान्वित नहीं कर सकता। इसलिए आचार्य की छठी योग्यता है–कलह-रहित होना।

आचार्य कौन ? इसके निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ऐसे आचार सम्पन्न, धर्माचरण में शूरवीर, धीर, वीर, साहसी, निर्भय, शम, दम तथा उपशम प्रधान आचार्य जब तीर्थंकर नहीं होते हैं तब वे उनके प्रतिनिधि के रूप में धर्मोपदेश करते हैं। शास्त्रों में आचार्य तथा उपाध्याय के उत्कृष्ट पांच भव बताये गये हैं। कई उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं, कई दो भव भी कर लेते हैं पर पांचवे भव में तो उनकी मुक्ति निश्चित है। इस प्रकार अनेक गुणों के धारक आचार्यों को प्रातः-सायं दो बार भाव वंदना अवश्य करनी चाहिए।

बिना भक्त तारिये सो तारिबो तिहांरो

एक श्रावक परम्परा में जन्मे हुए व्यक्ति धर्म के कट्टर आलोचक थे। जब वे बीमार पड़ गये, उनकी भावना में परिवर्तन आया। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी को प्रार्थना करवाई–आचार्यवर! आप दर्शन दिरावें। आचार्यश्री पधारे, बातचीत हुई। वे बोले–महाराज! मैंने साधु-संतों की बहुत निंदा की है, अब अंतिम समय निकट आ रहा है। मैं चाहता हूँ अब मुझे धर्म की बात सुनाई जाये। आपने पधार कर दर्शन दिये, बहुत अच्छा हुआ। मेरी भावना है–आप हमेशा साधु-साध्वियों को दर्शन दिलाने भेजें। मुझे अधिक से अधिक धर्म की बात सुनायें। यह सुनकर सारे लोग अवाक् रह गये। लोगों ने कहा–पूर्व में उगने वाला सूरज पश्चिम में कैसे उग आया ? यह क्या हुआ। कैसे हुआ ? उस समय उन्होंने कहा–आचार्यवर मैंने तो कुछ नहीं किया पर आप मुझे तारें, मेरा उद्धार करें। जिन्होंने भक्ति की उन सबको तारना आसान है किन्तु जिन्होंने भक्ति नहीं की, उन्हें तारना ही सचमुच तारना है। यह कहते हुए उन्होंने एक छन्द सुनाया–

पहलाद को तार्‌यो ताके तात को तमासो देख्यो,
ध्रुवजी को तार्‌यो ताको बालपन टार्‌यो है।
मोर ध्वज तार्‌यो ताके पुत्र पे करौत धरी,
हरिश्चन्द्र तार्‌यो ताको कहां सत्य हार्‌यो है।
सुग्रीव को तार्‌यो, ताको बंधव करायो नाश,
विभीषण तार्‌यो ताको कुटुम्ब संहार्‌यो है।
भक्त भक्त तारे या में राव की बड़ाई कहां,
बिना भक्त तारिये सो तारिबो तिहारो है॥

ऐस तिरण व तारणहार आचार्य को नमस्कार का मूल हेतु उनका आचार है। आचार्य का आचार पांच प्रकार, छत्तीस प्रकार एवं एक सौ आठ प्रकार का

है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य–आत्मा के ये पांच मुख्य गुण हैं। उन्हें प्रकट करने हेतु पांचों आचार अनुक्रम से ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार के नाम से जाने जाते हैं। उनमें से ज्ञानाचार के आठ, दर्शनाचार के आठ, चारित्राचार के आठ, तपाचार के बारह प्रकार हैं। ये ही आचार के छत्तीस प्रकार हैं। इन्हीं छत्तीस प्रकार के आचारों को तीन प्रकार के वीर्याचार से गुणित करने पर एक सौ आठ प्रकार के आचार होते हैं। इनका विस्तृत विवेचन आवश्यक सूत्र एवं उनकी टीका आदि में किया गया है। इन सभी आचारों के ज्ञान एवं पालन में जो कुशल है, वे तीसरे पद पर प्रतिष्ठित भाव आचार्य हैं।

णमो आयरियाणं पद की आराधना विधि

1. णमो आयरियाणं–इस मंत्र का जप विशुद्धि-केन्द्र पर दस मिनट अथवा एक माला दीर्घश्वास के साथ नियमित एकाग्रता पूर्वक जपने से आचार की पवित्रता, प्रामाणिकता, सत्य-निष्ठा आदि चारित्रिक गुणों का विकास होता है।[6]

घ्राणेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने के लिए भी यह जप उपयोगी है। आचार्यों के चारित्र सुवास से गंध-विषय वर्जन होता है।[6]

2. ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं–इस मंत्र का विशुद्धि-केन्द्र पर दीर्घश्वास के साथ मानसिक जप करने से विधेयात्मक विचारों का विकास होता है। समय पांच मिनट से आधा घंटा।[7]

स्मृति-विकास तथा चयापचय संतुलन के लिए यही जप विशुद्धि केन्द्र पर पीले रंग में जपना चाहिए। समय पांच मिनट से आधा घंटा।[8]

इस प्रकार 'णमो आयरियाणं'–इस पद की आराधना की अनेक विधियां उपलब्ध हैं। मंत्र का बार-बार पुनरावर्तन होने से उसकी प्रभावक शक्ति बढ़ जाती है। शरीर के आभ्यन्तर अंगों में नव प्राण का संचार होता है। पुनरावर्तन से शब्द-शक्ति बेटरी की तरह रिचार्ज हो जाती है। उसमें पर को प्रभावित करने की अद्‌भुत क्षमता आ जाती है। परन्तु केवल शब्दार्थ ही नहीं अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए। सचमुच यह मंत्र हमारी आन्तरिक मुस्कान का वरदान है, तनाव-मुक्ति का सूत्र है। निःसंदेह गुरु की कृपा और श्रद्धा तथा विश्वास में बहुत बड़ी शक्ति है।

1 सितम्बर, 1981 का घटना प्रसंग है। तमिलनाडु एक्सप्रेस मद्रास से दिल्ली के लिए चली। उसमें एक तेइस वर्षीय युवक अमरचन्द दुगड़ भी था।

लगभग 800 कि.मी. का रास्ता तय हो गया। काजीपेठ गांव के निकट ट्रेन पहुँची, उसी समय शाम के छ: बज रहे थे। भाई अमर जिस डिब्बे में था, सत्तर-पचहत्तर व्यक्ति उसमें सवार थे। सहसा उसका जी मचलने लगा। उसे किसी दुर्घटना का पूर्वाभास होने लगा। आस-पास कोई बात नजर नहीं आई। वह जूस पीकर सो गया। थोड़ी देर बाद उसे फिर कुछ महसूस हुआ। उसके मन में आया यहां से चले जाना चाहिए। वह उठा और बाथरूम की ओर जाने लगा। उस डिब्बे में दो बाथरूम थे। वह दूर वाले बाथरूम में गया। बाथरूम में प्रवेश करके उसने ज्योंही दरवाजा बंद किया कि डिब्बा उलट गया। ट्रेन के सतरह डिब्बे पटरी से उलट गये। ईंजन ट्रेन छोड़कर डेढ़ किलोमीटर आगे चला गया। वह डिब्बा चकनाचूर हो गया। उसके प्राय: सभी यात्री जीवन से हाथ धो चुके थे। भाई अमर बाथरूम में बेहोश हो गया। कुछ देर बाद उसे होश आया। स्थिति की भयानकता से वह स्तब्ध रह गया। बाथरूम की खिड़की टूट चुकी थी। उसने बाहर खड़े लोगों को जूता खोलकर दिखाया। बाथरूम को काटकर बड़ी मुश्किल से उसे बाहर निकाला गया। कोई बचाव का सुराग नहीं पर वह सुरक्षित निकला। सबको आश्चर्य होना स्वाभाविक था क्योंकि डिब्बे में वह एक ही जीवित निकला। इसका रहस्य खोजने पर अमर ने कहा—मैं गुरु दर्शन हेतु मद्रास से दिल्ली जा रहा था। मैं दुर्घटना के समय से लेकर अब तक गुरु का नाम जपता रहा, अत: गुरुकृपा का ही यह फल है। जाँच करने पर पता चला कि उस ट्रेन में मद्रास से दिल्ली आचार्यश्री तुलसी के दर्शनार्थ जाने वाले सब सुरक्षित बच गये। यह सब क्यों हुआ? कैसे हुआ? हमारी समझ से परे है किन्तु यह सत्य निर्विवाद है कि गुरु कृपा एवं हमारी श्रद्धा में बहुत बड़ी शक्ति होती है।

निष्कर्ष

आचार्य का आचरण दर्पण और आस्था मेढीवत् होती है। जैसे दर्पण में दृष्टा की सुरूपता एवं कुरूपता प्रतिबिम्बित हो उठती है तथा उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार आचार्य के दर्शन एवं जप से दर्शनार्थी, जपार्थी के जीवन में विद्यमान आध्यात्मिक सुरूपता एवं भौतिक कुरूपता प्रतिबिम्बित हो उठती है। जिस प्रकार दर्पण सुरूपता व कुरूपता का दिग् निर्देष मात्र कराना है, उसी प्रकार आचार्य के दर्शन से व्यक्ति को अपने जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों का आभास होता है। आचार्य के दिग् निर्देश से व्यक्ति अपने जीवन को बुराइयों से बचाकर अच्छाइयों की ओर प्रवृत्त करता है।

आचार्य की आस्था मेढ़ीभूत होने का तात्पर्य यह है कि जैसे मेढ़ी (मेर) के मजबूत होने पर एक नहीं अनेकों बैलों को अपने सहारे घुमाकर धान्यादि तैयार किया जाता है, उसी प्रकार आचार्य की दृढ़ श्रद्धा होने पर वह अपने आश्रयभूत भक्त समुदाय साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका को अपने आत्मिक लक्ष्य की प्राप्ति कराने में सहयोगी होता है।

गुरु छायानिधि पक्षी के समान होते हैं। छायानिधि पक्षी जब उड़ता है, उसकी छाया जिसे उपलब्ध हो जाये, वह परम आनन्द के साम्राज्य का स्वामी बन जाता है। नाद निधि एक मणि होती है। उसकी विशेषता यह है कि जिस धातु की ध्वनि इस मणि का स्पर्श कर लेती है, वह धातु बहुमूल्यवान बन जाती है, इसी प्रकार शिष्य की कातर पुकार जब गुरु के कानों में पड़ती है, तब वे अपनी विद्युत् धारा से शिष्य की एक-एक शिरा को उर्जस्वल बना देते हैं। अत: स्पष्ट है कि गुरु निर्मलता तेजस्विता और पराक्रम के प्रतीक ही नहीं होते, वे अपनी सर्वोत्कृष्ट क्षमताओं को दूसरों में संक्रान्त करने में समर्थ होते हैं।

आचार्य की महत्ता को उजागर करते हुए कहा गया है–''अनंतनाणो वगओ वि संतो'' शिष्य अनंतज्ञानी (केवलज्ञानी) हो जाए तो वह आचार्य की आराधना वैसे ही करता रहे, जैसे पहले करता था[9]–यह है विनय का उत्कर्ष। इस उत्कृष्ट कोटि के विनय को महामंत्र नवकार की आराधना से प्राप्त किया जा सकता है अथवा 'णमो आयरियाणं' पद की आराधना से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह मंत्र ध्यान, प्रयास और अभ्यास द्वारा प्रमाणित होकर हमारे जीवन की पवित्रता को वृद्धिंगत करता है।

सन्दर्भ–

1. दसवैकालिक, अध्ययन-9, 1 उद्देशक, श्लोक-10
2. सिन्दूर प्रकर, श्लोक-14
3. ठाणं, 8/15
4. वही, 6/1
5. नमस्कार चिंतामणि
6. पर्युषण साधना, पृ. 417
7. मंत्र : एक समाधान, पृ. 94
8. वही, पृ. 63
9. दसवैकालिक, 9/11.

5. णमो उवज्झायाणं

नमस्कार महामंत्र सनातन सत्यों का भण्डार है। उन सत्यों को समझने का सद्भाग्य गुरुकृपा से ही प्राप्त होता है। पंच-परमेष्ठी के चतुर्थ पद पर सुशोभित उपाध्यायों को नमस्कार करने का अर्थ है–ज्ञान को नमस्कार करना। संघ में उपाध्याय का महत्त्व इसलिए है कि वह द्वादशांगी का प्रवक्ता, धर्म संघ की संपदा और आत्म विद्या का संरक्षक होता है, ज्ञान या प्रज्ञा की परम्परा का संवाहक होता है। संघ में उपाध्याय ज्ञान की परम्परा को चलाता है और आचार्य अनुयोग को जोड़कर उसे गहराई तक पहुँचा देता है।

जैन परम्परा में आचार्य और उपाध्याय दो व्यक्ति रहे हैं। उनका अपना-अपना दायित्व होता है। कभी-कभी ये दोनों पद एक ही व्यक्ति में समाविष्ट हो जाते हैं। दोनों का कार्य आचार्य अकेला ही संपादित कर लेता है। सभी तीर्थंकरों के शासनकाल में गणधर विद्यमान रहते हैं। गण का संचालन करने के कारण वे गणधर कहलाते हैं। गणधर पद का समावेश 'णमो आयरियाणं' पद में हो जाता है। कुछ आचार्य इस पद का समावेश उपाध्याय पद में भी मानते हैं। यदि आचार्य और उपाध्याय की कार्यमीमांसा की जाए तो उनका कार्यक्षेत्र है–

* गण को आचार-निष्ठ बनाना।
* गण की रहस्यपूर्ण नीतियों का निर्धारण करना।
* आत्मविद्या की परम्परा का निर्वहन करना।

शास्त्रों में उपाध्याय का स्वरूप

श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु ने 'उपाध्याय' शब्द की मीमांसा में लिखा है–

अति उवओग करणे, ज्झति अ झाणस्स होइ निद्देसे।
एएण होइ उज्झा, ऐसो अन्नोऽवि पज्ञाओ ॥ [1]

अर्थात् उवज्झाय का एक पर्याय उज्झा भी है। इसमें 'उ' यानि उपयोग करना और 'झ' यानि ध्यान। जो उपयोग-पूर्वक ध्यान करते हैं वे उज्झा (उपाध्याय) कहलाते हैं।

उपाध्याय शब्द की अन्य अनेक परिभाषाएं निम्न प्रकार से उपलब्ध हैं– "उप समीपे अधिवसनात् श्रुतस्यायो लाभो भवति येभ्यस्ते उपाध्याय:"। जिनके पास निवास करने से श्रुत की आय अर्थात् लाभ होता है, उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

"उपाधेरायो येभ्यस्ते उपाध्याया:"। जिनके द्वारा उपाधि (शुभ विशेषणों से युक्त पदवी) की प्राप्ति होती है, उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

"उपहन्यते आधेर्मनस्या व्यथाया आय: प्राप्तिर्यैस्ते उपाध्याया:"।

"उपहन्यते अधिय: कुबुद्धेराय: प्राप्तिर्यैस्ते उपाध्याया:"।

"उपहन्यते अध्यायो दुर्ध्यानं यैस्ते उपाध्याया:"।

अर्थात् जिनके द्वारा मानसिक पीड़ा, कुबुद्धि और दुर्ध्यान नष्ट होता है, वे उपाध्याय कहलाते हैं।

उपरोक्त गुणों से युक्त उपाध्याय द्वादशांगी का अध्ययन करने वाले होने से, सूत्र और अर्थ दोनों का विस्तार करने के रसिक होने से, गुरु परम्परा से प्राप्त हुए जिन वचनों का अध्ययन करने में तत्पर होने से भव्य आत्माओं पर महान् उपकार करने वाले होते हैं। शिष्यों को विद्या और विनय सीखाने वाले साधक होने से वे भी भव्य जीवों के लिए नमस्करणीय हो जाते हैं। आचार्यश्री तुलसी ने उपाध्याय के स्वरूप का निदर्शन करते हुए लिखा है–

आगम अध्यापन में अधिकृत,
विमल कमल सम जीवन अविकृत,
शम संयम समुपेत, णमो उवज्झायाणं ॥ [2]

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्राध्यापक और शिक्षक का जो स्थान है, वही वाचनाचार्य और उपाध्याय का है। आचार्य सूत्र से संक्षिप्त तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं और उपाध्याय उस अर्थ का विस्तार करते हैं। क्षमताओं का जहां तक प्रश्न है आचार्य और उपाध्याय में लगभग समान होती है। अन्तर केवल दायित्व विस्तार का है।

उपाध्याय में निम्नलिखित पचीस गुण माने जाते हैं–

11 अंग–

1. आचारांग
2. सूत्रकृतांग
3. स्थानांग
4. समवायांग
5. भगवती
6. ज्ञाता धर्मकथा
7. उपासक दशा
8. अन्तकृत दशा
9. अनुत्तरोपपातिक दशा
10. प्रश्न व्याकरण
11. विपाकश्रुत

12 उपांग—

1. औपपातिक	2. राजप्रश्नीय
3. जीवाभिगम	4. प्रज्ञापना
5. जम्बुद्वीप-प्रज्ञप्ति	6. चन्द्र-प्रज्ञप्ति
7. सूर्य-प्रज्ञप्ति	8. निर्यावलिका
9. कल्पवतंसिका	10. पुष्पिका
11. पुष्पचूलिका	12. वृष्णिदशा।

उपाध्याय उपरोक्त ग्यारह अंग और बारह उपांग सूत्रों के ज्ञाता होते हैं अत: उनके ये तेईस गुण माने गये हैं। उपरोक्त तेईस सूत्रों का वे स्वयं अध्ययन करते हैं और दूसरों को करवाते रहते हैं। अत: दो गुण अध्ययन और अध्यापन हो गये— इस प्रकार उपाध्याय के पच्चीस गुण ज्ञान-संपदा के आधार पर किये गये हैं।

एक अन्य परम्परा के अनुसार उपाध्याय के ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरण सत्तरी व करण सत्तरी—ये पच्चीस गुण माने जाते हैं।

चरण सत्तरी

साधुओं द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारित्र संबंधी नियमों को चरण गुण कहते हैं। चरण गुण सत्तर माने गये हैं, ये चरण सत्तरी के नाम से विश्रुत हैं— पांच महाव्रत, दस प्रकार का श्रमण धर्म, सतरह प्रकार का संयम, दस प्रकार की वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य की नवगुप्तियां, ज्ञानादि रत्नत्रिक, बारह प्रकार का तप और चार कषाय निग्रह।[4]

करण सत्तरी

साधुओं द्वारा प्रयोजन उत्पन्न होने पर जिनका सेवन किया जाये, उसे करण गुण कहते हैं। करण गुण भी सत्तर हैं, ये करण सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं— चार प्रकार की पिण्डविशुद्धि, पांच समिति, बारह भावना, बारह प्रतिमाएं, पंचेन्द्रिय-निग्रह, पच्चीस प्रकार की पडिलेहना, तीन गुप्ति और चार अभिग्रह।[5]

पच्चीस गुणों से सुशोभित उपाध्याय आचार्य के अनुगामी होते हैं और विशेष रूप से ज्ञानी होने के कारण साधुओं के गुरु हैं। इस प्रकार उन्हें चतुर्थ पद पर स्थापित किया गया है। उपाध्याय को चतुर्थ पद पर स्थापित करने के प्रमुख हेतु—

1. आचार्य अनुगामित्व,
2. विज्ञत्व,
3. पाठकत्व,
4. साधु-गुरुत्व।

1. आचार्य अनुगामित्व–उपाध्याय आचार्य व अरिहंत भगवान के आज्ञापालक होते हैं, सिद्ध भगवन्तों का ध्यान करते हैं तथा संघ के प्रशासन में अनुसरण करते हैं। वे आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट संघ के कार्यों को संपादित करते हैं अत: आचार्य के बाद संघ में उनका ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

2. विज्ञत्व–उपाध्याय स्व-सिद्धान्त के विशेषज्ञ तो होते ही हैं, परन्तु पर-सिद्धान्त के भी विशेषज्ञ होते हैं। विज्ञता के कारण वे संघ में अत्यन्त आदरास्पद और आचार्य के कृपापात्र बन जाते हैं।

3. पाठकत्व–वे जिज्ञासु साधकों के लिए सूत्रार्थ के दाता होते हैं। जिन शासन के शिक्षण स्थानीय होने के कारण उपाध्याय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

4. साधु गुरुत्व–उपाध्याय साधुओं को चरण गुण की प्रेरणा देते हैं। उन्हें उनका रहस्य समझाकर आचार में प्रवृत्त करते हैं। अज्ञान जनित जड़ता दूर करते हैं अत: उनका स्थान साधुओं से पूर्व और आचार्य के बाद में निश्चित किया गया है।

स्मृति का चमत्कार

उपाध्याय का ज्ञान केवल पुस्तकों पर निर्भर नहीं होता, उनका ज्ञान मस्तिष्क पर, कण्ठ पर तथा जीभ पर निर्भर होता है। तात्पर्य की भाषा में कहें तो उनका ज्ञान इतना आत्मसात् हो जाता है कि उन्हें सर्वत्र पुस्तकें देखने की अपेक्षा नहीं रहती। उनकी स्मृति इतनी विकसित होती है कि जो कुछ ज्ञान है, वह उनकी स्मृति में पूर्ण रूपेण प्रतिबिम्बित रहता है। प्राचीन काल के ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने हैं।

उपाध्याय यशोविजयजी बनारस में थे, वहां नैयायिक परम्परा का एक अलभ्य ग्रंथ एक ब्राह्मण विद्वान के पास था। वह उस ग्रंथ को दे नहीं रहा था। उपाध्यायजी ने उसका पारायण करना चाहा। ब्राह्मण को समझाया पर वह अपने आग्रह पर अडिग रहा। ज्यों-त्यों उसे मनाया गया। उसने कहा–एक दिन के लिए मैं ग्रंथ दे रहा हूँ, जितना पढ़ना हो पढ़ लो, दूसरे दिन पुन: लौटाना होगा।

उपाध्याय यशोविजयजी ने यह शर्त स्वीकार करली। उस ग्रंथ में सात सौ श्लोक थे। उन्होंने एक दिन-रात में सात सौ के सात सौ श्लोक कण्ठस्थ कर लिये और दूसरे दिन ग्रंथ को उसे वापस सौंप दिया। यह है स्मृति की पटुता, स्मृति का चमत्कार।

उपाध्याय की आराधना विधि

1. णमो उवज्झायाणं

यह सप्ताक्षरी मंत्र है। इस सप्ताक्षरी मंत्र का जप निरन्तर एकाग्रता और आस्था के साथ जपने से ज्ञान-केन्द्र जागृत होता है और स्मृति की दुर्बलता समाप्त होती है।[6] आज अभ्यास प्रारंभ किया और कल परिणाम की प्रतीक्षा हो तो कुछ होना जाना नहीं है। कम से कम एक वर्ष तक निश्चित समय पर मन को एकाग्र कर जाप किया जाये तो उसका प्रभाव ज्ञान-केन्द्र पर होता है।

प्रतिभा को निखारने का सर्वोत्तम उपाय है—मस्तिष्क का अधिकाधिक उपयोग करना। मस्तिष्क के दस भाग हैं, उसमें प्रथम चेतन मन है, जो दाहिनी ओर है। उसका काम तर्क करने का है। अन्य नव भाग अचेतन मन के हैं। प्रथम विभाग स्थित चेतन मन जैसा करता है, वैसे ये नव भाग काम करते हैं। जिस प्रकार बर्फ पानी में तैरती है तो उसके नव भाग पानी में रहते हैं, एक दसवां भाग ही हमें दिखाई देता है, इसी प्रकार मस्तिष्क के बारे में समझना चाहिए। हमारे स्मरण, रटन, कीर्तन, नमन, जप व पुनरावर्तन सब भावात्मक प्रवाह पहले प्रथम विभाग में ही जमा होते हैं, रिजर्व होते हैं। जब वे आवर्त्तन रूप में घन हो जाते हैं, तब वे सक्रिय बनकर अवचेतन मन में चले जाते हैं, अजपाजप चालू हो जाता है।

हमारे द्वारा बोले जाने वाले शब्दों का उद्‌भव नाभि से होता है। वे शब्द कण्ठ से प्रकट होते हैं और उनका परिणमन मस्तिष्क में होता है। परिणमन से ही परिवर्तन होता है। शब्दों के उद्‌भव और प्रकट होने की प्रक्रिया तो जानी जाती है पर इससे मस्तिष्क में होने वाले परिवर्जन से हम अनभिज्ञ हैं। मस्तिष्क में घड़ी में रहे हुए लोलक पेंडुलम की तरह लोलक रहता है। जैसे वह बजता है, घोष और प्रत्याघोष होते हैं, वैसे ही मंत्र-रत्न, कीर्तन के समय मस्तिष्क में घोष, महाघोष और प्रत्याघोष होता है।

जिस प्रकार रण भूमि में जो बाजे बजाये जाते हैं, रणभेरी बजाई जाती है, इसका कारण भी यही है कि सैनिक इतने जोश में आ जाये कि मरने का डर भूल जाये, उस जोश में ऐसे लड़े कि शत्रुओं को परास्त कर दे। यह शब्द का ही

चमत्कार है। ठीक ऐसे ही मंत्र पुनरावर्तन से मंत्र शक्तिशाली बनकर अचेतन मन में चला जाता है और वहां उसकी कार्यक्षमता शत-गुणित हो जाती है। अतः निःसंदेह महामंत्र के चौथे पद का नियमित जप प्रज्ञा जागरण की दिशा का उद्घाटन करता है।

2. ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं – इस मंत्र का आनन्द-केन्द्र पर प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान करने से मानसिक आह्लाद, प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। मानसिक अवसाद दूर होता है।[7]

3. ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं – इस मंत्र की प्रतिदिन दस माला जपने से अशुभ चिंतन का निवारण होता है और शुभ चिंतन शुभ भावों का विकास होता है।[8]

4. प्रमोद भावना की वृद्धि के लिए णमो उवज्झायाणं का जप उपयोगी है। इससे गणधर पद की प्राप्ति भी हो सकती है।[9]

एक समीक्षा

उपााध्याय प्रतिभा सम्पन्न होते हैं। उनकी प्रज्ञा जागृत होती है। संघ के प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ज्ञान का आलोक पहुँचाने का यह काम जितना आवश्यक है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जैन आगम श्रुतज्ञान के अक्षय भंडार हैं। इस भंडार में भरी अध्यात्म विद्या से परिचित होने के लिए उपाध्याय की शरण में जाना ही होगा।

जप के समय यह अनुभव होना चाहिए कि मन बहुत शांत रहा, भावना बहुत पवित्र रही। यदि ऐसा अनुभव नहीं होता है तो मानना चाहिए कि जप में कहीं कमी रही है। सम्यक् विधि और एकाग्रता के साथ किया गया जप कभी निष्फल नहीं होता। जप से व्यक्ति में यह अनुभूति विकसित होती है कि मेरा विकास हो रहा है, शांति और पवित्रता का स्रोत प्रस्फुटित हो रहा है। मस्तिष्क की स्थिरता, निर्मलता और पवित्रता बढ़ रही है। कहा जा सकता है कि णमो उवज्झायाणं का जप जीवन के उत्कर्ष के लिए शक्तिशाली माध्यम है। अपेक्षा है उसे अवचेतन मन तक पहुँचाया जाये।

जब ग्यारह वर्षीय विलियम हावर्ड संकाय सभा मंच पर पहुँचा तो सभागृह तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। जब लोगों ने चतुर्थ आयाम पर विलियम का विलक्षण भाषण सुना तो उसकी विद्वत्ता के सम्मोहन में सभी विस्मय में पड़ गये। मानस अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखने वाले प्रोफेसर बोरिज सिडिस एवं

डॉक्टर साराह सिडिस दम्पत्ति ने अपने अध्ययन के महत्त्व का प्रदर्शन करने के लिए अपने बेटे का चयन किया और औसत स्तर के अपने बेटे को अत्यन्त प्रतिभाशाली बालक के रूप में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने विलियम पर निर्देश संप्रेषण विधि का प्रयोग किया। एक वर्षीय यह बालक अधिकांश साधारण शब्दों को स्पष्टत: बोलने लगा। जब वह बालक दो वर्ष का हुआ तो भली प्रकार वह भाषा को पढ़ने में सक्षम था। पांच वर्ष की उम्र में वह केवल अच्छी राइटिंग ही नहीं लिखता था बल्कि अंग्रेजी के अतिरिक्त चार अन्य भाषाएं भी बोलने में सक्षम हो गया। आठ वर्ष की उम्र में उसे हाईस्कूल में प्रवेश मिल गया। ग्यारह वर्ष की आयु में तो वह चमत्कार ही करने लगा।

सिड़िस दम्पत्ति ने अपनी प्रख्यात पुस्तक "फार्मुला फार जिनियस" में इस विधि का वर्णन किया है, जिसने उसके बेटे को अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न बनाया। उसके अनेकों तरीकों में से एक तरीका यह भी था कि जब विलियम को नींद की झपकियां आने लगतीं, उबासियां आने लगतीं तब उसे उसका पाठ सुनाया जाता और कई बार वह पाठ सो जाने पर ही पूरा होता। अनेकों प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि निद्रा के समय बिस्तर पर जाने से पूर्व पढ़ा गया पाठ दिन के समय पढ़े गये पाठ से कहीं अधिक भलीभांति स्मरण रहता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अवचेतन मन अधिक ग्रहणशील होता है। जब हमारे ऊपर नींद का आलम छाया रहता है इस स्थिति में हमारा मस्तिष्क पूरी एकाग्रता से हमारे द्वारा पढ़े गये पाठ को ग्रहण करता है, हमारे अवचेतन मस्तिष्क की इस ग्राह्य क्षमता के सर्वाधिक उपयोग की आवश्यकता है अत: अवचेतन मन तक मंत्र को पहुँचाने का अति उत्तम तरीका है, सोते समय मंत्र जप करना अथवा स्वाध्याय करना, फिर चाहे वापस नींद आ जाये पर इस समय का जप, ध्यान अथवा स्वाध्याय अवचेतन मन तक जल्दी पहुँचता है।

अभी कुछ वर्ष पूर्व सुपर लर्निंग की प्रणाली विकसित हुई थी। डॉ. लोपनेव ने इस प्रणाली को जन्म दिया। उसका सिद्धान्त है कि हमारे मस्तिष्क में सीखने की अनन्त क्षमता है। उसको विकसित किया जा सकता है। उसके प्रयोग किये गये। जो बच्चा पांच-सात शब्द याद करने में हिचकिचाता था उसको इस प्रणाली से हजारों शब्द याद करा डाले। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि यदि उचित प्रयत्न, दृढ़ अध्यवसाय और उचित साधन सामग्री का संयोजन और संकलन हो तो प्रत्येक कार्य को संभव बनाया जा सकता है। मंत्र को चैतन्य बनाकर सफलता के चरम शिखर पर पहुँचा जा सकता है।

सन्दर्भ –

1. आवश्यक निर्युक्ति
2. नमस्कार महामंत्र गीत, पद्य–4
3. श्रावक प्रतिक्रमण, पृ. 206, जैन शिक्षा, पृ. 4
4. ओघ निर्युक्ति, भाष्य गाथा–2
5. वही, भाष्य गाथा–3
6. नमस्कार चिंतामणि
7. मंत्र : एक समाधान, पृ. 86
8. वही, पृ. 95
9. पर्युषण साधना, पृ. 419.

6. णमो लोए सव्व साहूणं

साधु साधना में लीन होते हैं। वे अपनी साधना से स्वयं के अतिरिक्त लोक कल्याण में भी रत रहते हैं। भारतीय संस्कृति में साधुता की पूजा होती है। नमस्कार महामंत्र में साधुता के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। साधु नमस्कार महामंत्र के पांचवें पद पर स्थित है। साधु को पूजनीय या वंदनीय माना गया है। साधु की साधना का आदि बिन्दु है—पांच महाव्रतों का स्वीकरण। उसका संकल्प होता है—"सावज्जं जोगं पचक्खामि" सपाप प्रवृत्तियों का प्रत्याख्यान। साधु शब्द का अर्थ है—सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र के योग से अपवर्ग-मोक्ष की साधना करने वाला। जो छः जीवनिकाय का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर उनकी हिंसा करने, कराने और अनुमोदन करने से सर्वथा विरत होते हैं तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांचों से दुःख क्षय के लिए सतत् प्रयत्न करते हैं, वे साधु कहलाते हैं। अर्थात् अत्यन्त कष्टदायक, उग्रतर और घोर तपस्या आदि अनुष्ठान कर अनेक व्रत, नियम, उपवास और विविध प्रकार के अभिग्रहों से युक्त संयम का पालन कर तथा सम्यक् रूप में परिषहों, उपसर्गों को सहन कर, जो सभी दुःखों का अन्त करने वाले मोक्ष की साधना करते हैं, वे साधु कहलाते हैं। साधु संयम के पालन से,संयम में सहायक होने से संयम को चाहने वाली आत्मा या अन्य आत्माओं द्वारा नमस्करणीय या आदरास्पद होते हैं।

साधु को पंच-परमेष्ठी के पांचवें पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयोजन

पंच परमेष्ठी के पांचवें पद में "णमो लोए सव्व साहूणं" लोक के सब साधुओं को नमस्कार किया गया है। पंच परमेष्ठी के इस अंतिम पद पर साधु को स्थापित करने के तीन प्रयोजन बहुश्रुत आचार्यों ने बतलाये हैं, [1] जो निम्नलिखित हैं—

1. मूलभूतता,
2. धर्मदेवत्व,
3. शुभत्व।

1. मूलभूतता—साधुत्व आत्म विकास की भावना का मूल है। इसके अभाव में सिद्ध पद, अरिहंत पद, आचार्य पद, उपाध्याय पद कदापि प्राप्त नहीं हो सकते हैं। साधुत्व एक व्यापक शब्द है। अरिहंत पद, आचार्य पद और उपाध्याय पद व्याप्त है और सिद्ध पद साधुत्व का फल है। इस प्रकार साधु पद

मूल और आधार के समान है, इसलिए उसे सबसे नीचे पांचवे पद पर स्थापित किया है।

धर्मदेवत्व

साधु को धर्मदेव कहा गया है अर्थात् धर्म के द्वारा वे दिव्यता प्राप्त करते हैं। धर्म को आराधना व उपदेश से दिप्त करते हैं। जैसे चारों गतियों में देव परम पुण्यशाली, ऋद्धिमान, सुख-शांति सम्पन्न और प्रकाशमान होते हैं, वैसे ही साधु पुण्यात्मा, ज्ञानवान, परमसुखी, लब्धिमान और प्राय: यशस्वी होते हैं। अत: उनको मनुष्यों में देव तुल्य कहा गया है। साधारण मनुष्यों में उच्च कोटि की आत्मा होने से साधु को उपास्य रूप में जिनेश्वर देव ने स्थापित किया है। दूसरे शब्दों में साधु धर्म के पर्याय होते हैं।

शुभत्व

पाप क्रिया को अशुभयोग कहते हैं। जिन जीवों द्वारा पापक्रिया का त्याग नहीं होता, उनके अव्रत और अशुभयोग की प्रवृत्ति चलती रहती है। अत: उनमें अशुभता बनी रहती है। साधारणत: संसारी जीव अशुभता में लीन रहते हैं। साधुत्व का प्रारम्भ भी शुभ योगों (सातवें गुणस्थान) से होता है। उसमें अव्रत की क्रिया का सर्वथा परित्याग हो जाता है। इस प्रकार साधु साधना के उत्कर्ष से शुभत्व में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, इसलिए वे ही अपश्चिम अन्तिम पद पर स्थित आत्मा है। इस तरह के साधु शुभत्व के प्रतीक होते हैं।

साधु पद की महत्ता

नमस्कार महामंत्र में दूसरे पद के अतिरिक्त शेष चारों पद पर स्थित परमेष्ठी साधु हैं। सिद्ध भगवन्त भी इस अवस्था में पूर्व साधु पद पर निश्चित रूप से प्रतिष्ठित होते हैं। (वेश परिवर्तन हो या न हो पर भावों में साधुत्व का अवश्यमेव स्पर्श होता है) इस दृष्टि से साधु पद की महत्ता का आकलन किया जा सकता है तथा साधना के अत्यधिक महत्त्व को समझा जा सकता है। साधु ससीम नहीं, असीम होता है। नमस्कार महामंत्र में इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही पांचवें पद का निर्माण किया गया है। प्रथम चार पदों में 'सर्व' शब्द नहीं जोड़ा गया और पांचवे पद में उसे जोड़कर ''णमो लोए सव्व साहूणं'' कहा गया है अर्थात् सम्पूर्ण लोक में जितने महाव्रतधारी साधु साधनारत हैं, उनको मेरा नमस्कार। यह साधु की असीमता को इंगित करता है। साधना का मूल जब असीम बन जाता है, तब साधना का विकास होता है। यह सचाई है कि ससीम से असीम में आना वास्तव

में असीम होने की दिशा का उद्घाटन करना है। ससीम में असीम के अवतरण का नाम है–साधना।

स्थानांग सूत्र में सुख के दस प्रकारों का उल्लेख किया गया है।[2] जिसमें प्रथम आठ पौद्गलिक सुख और शेष दो आत्मिक सुख हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. आरोग्य–शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य।
2. दीर्घायु–स्वस्थ दीर्घ जीवन।
3. आढ्यता–धन की प्रचुरता।
4. काम–शब्द और रूप।
5. भोग–गंध, रस और रूप।
6. संतोष–इच्छा और अल्पता।
7. अरति–जब-जब प्रयोजन हो तब-तब उसकी आपूर्ति होना।
8. शुभयोग–रमणीय विषयों का भोग।
9. निष्क्रमण–प्रव्रज्या।
10. अनाबाध–जन्म, मृत्यु आदि बाधाओं से रहित मोक्ष सुख।

अध्यात्म के अनुसार पदार्थ में न सुख है और न दुःख है। पदार्थ में होने वाली आसक्ति दुःख है और अनासक्ति सुख है। साधु हो या गृहस्थ, अनासक्ति के रथ पर आरूढ़ होने वाला ही आत्मिक सुख को उपलब्ध हो सकता है।

सारांश में अनासक्ति भाव का निर्वाह करने वाला व्यक्ति ही अपने में साधुता के भाव को उत्पन्न करके सुखों की प्राप्ति कर सकता है।

साधु–स्वर्ण सम

यह प्राकृतिक नियम है कि सोने में सुगंध नहीं होती, इक्षु के फल नहीं लगते और चंदन वृक्ष के फूल नहीं खिलते हैं, जो अपूर्णता का प्रतीक है। पर सोना अपनी चमक से सदैव ही आकर्षण का विषय रहा है। इक्षु अपनी मधुरता से सबको आकर्षित करता है और चंदन अपनी सुवास से सबको सुवासित करता है। इसी तरह सम्यक् पुरुषार्थ अपूर्णता से पूर्णता की ओर गतिशील होने का एक सशक्त सोपान है। ठीक इसी प्रकार साधु पद अपूर्णता का प्रतीक है और सिद्ध पद (साधु का ध्येय) पूर्णता का प्रतीक है। साधु अपने सम्यक् पुरुषार्थ से साधना में चमक, मधुरता और सुवास को फैलाता हुआ अपना परम लक्ष्य प्राप्त करता

है। अत: सोने के गुणों के साथ साधु के गुणों की तुलना की गई है, जिसका उल्लेख निम्नलिखित रूप से किया गया है[3] –

※ जिस प्रकार स्वर्ण में विषघातकता है, उसी प्रकार साधु में मोह विषमारकता है।

※ स्वर्ण रसायन स्वरूप है, साधु आत्मगुणों की पुष्टि में रसायन-स्वरूप है।

※ स्वर्ण मंगलार्थ उपयोगी है, साधु आत्म मंगलकारी है।

※ स्वर्ण में नम्रता है, साधु परीषह, उपसर्ग आदि के समय अतीव नम्र रहता है।

※ अग्नि के सम्पर्क से तरल बनने पर स्वर्ण प्रदक्षिणावर्त्त बनता है, उसी प्रकार साधु का जीवन मार्गानुसारी होने से नित्य प्रदक्षिणावर्त्त ही है।

※ स्वर्ण ठोसता गुण युक्त है, साधु गंभीरता गुण युक्त है।

※ स्वर्ण अग्नि से अदाह्य है एवं अग्नि से उसकी तेजस्विता विशेष प्रकाशित होती है, वैसे ही साधु क्रोध आदि के प्रसंग पर अदाह्य एवं उसकी क्षमाश्रमणता विशेष देदीप्यमान होती है।

※ स्वर्ण सभी पदार्थों में मूल्यवान है, वैसे साधु उचित शील, सदाचार से युक्त होने से परम श्रेष्ठ है।

※ स्वर्ण जैसे प्रारंभ में मिट्टी युक्त होता है और बाद में अग्नि आदि के सम्पर्क से अपनी उच्चता प्रकट करता है, वैसे साधु संसार रूपी कीचड़ में उत्पन्न होकर तप-जप आदि के द्वारा अपना स्थान श्रेष्ठ पुरुषों में बना लेता है।

इस प्रकार स्वर्ण के गुणों की तुलना साधु के गुणों के साथ की गई है। साधु भी साधुता की कसौटी पर खरा उतर कर ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

स्वर्ण के वर्ण मात्र को ग्रहण करने से कोई पदार्थ स्वर्ण नहीं बनता, वैसे साधु का वेश धारण करने मात्र से कोई साधु नहीं बन सकता। विष-घातादि गुण से युक्त पदार्थ ही स्वर्ण है, वैसे ही मोह विषघातादि क्रिया से युक्त व्यक्ति ही साधु है। साधु के स्वरूप को समझाने के लिए शास्त्रों में कहीं 84 उपमाओं से और कहीं 34 उपमाओं से साधु को उपमित किया गया है।

दिगम्बर ग्रंथ ''धवला-टीका'' में कहा गया है ''साधु सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, पवन के समान नि:संग, अप्रतिबद्ध विहारी, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गंभीर, संयम पालन करने में सुमेरु पर्वत के

समान अकंप और अडोल, चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव वाले, मणि के समान प्रभापुंज से युक्त आकाश के समान निरालंबी, निर्भीक तथा मोक्षमार्ग का अन्वेषण करने में और धर्म ध्यांन में तत्पर रहते हैं।''[4]

सारांश में कहें तो साधु एक श्रेष्ठ पुरुष है, जिसमें अनेक गुणों का अधिवास होता है।

श्रमणाचार

साधु, श्रमण, भिक्षु, मुनि, यति, निर्ग्रन्थ, अनगार, संयत, विरत आदि शब्द श्रमण के पर्यायवाची हैं। वे श्रम प्रधान होने से श्रमण, भिक्षा ग्रहण करने से भिक्षु, मितभाषी तथा अधिकांश मौन रखने से मुनि, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस धर्मों को धारण करने से यति, राग-द्वेष रूप ग्रंथि का उच्छेद करने वाले होने से निर्ग्रन्थ, गृहत्यागी होने से अनगार, संयमी होने से संयत तथा संसार से उदासीन होने से विरक्त कहलाते हैं।

श्रमण का आचार पुरुषार्थ का द्योतक है। श्रमण परम पुरुषार्थ के हेतु ही निर्ग्रन्थ पद धारण करते हैं। वे निर्मल विमल स्वभाव की प्राप्ति हेतु अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करते हैं। वे सत्ताईस गुणों के धारक होते हैं। जैसे–भ्रमर, वृक्ष के सुगंधित पुष्प पर बैठकर उसका थोड़ा-सा पराग ग्रहण कर अपने को तृप्त कर लेता है लेकिन किसी भी पुष्प को बाधा नहीं पहुँचाता है, उसी प्रकार साधु भी गृहस्थों के अनेक घरों में परिभ्रमण कर बंयालीस प्रकार के दोषों से रहित शुद्ध आहार लाते हैं और अपने संयम-साधक शरीर का पोषण करते हैं। वे षट् जीव की अपने प्राणों से अधिक सुरक्षा करते हैं। सतरह भेदों से युक्त संयम की आराधना करते हैं। सब जीवों के प्रति नित्य दया के भाव रखते हैं। अठारह हजार शील के अंगों की रक्षा करते हैं। नौ प्रकार की ब्रह्मगुप्ति की पालना करते हैं। बारह प्रकार की तपस्या में अपने पुरुषार्थ की सुगंध फैलाते हैं। ऐसे त्यागी, वैरागी, निर्मल, आत्मज्ञानी, अहिंसा के पुजारी और परिषहजयी साधु ही सच्चे अर्थों में साधु होते हैं। वे मोक्ष मार्ग में सहायक होने से भव्य-आत्माओं के लिए परम उपकारी होते हैं, इसलिए नमस्करणीय है। कहा भी है–

त्रस स्थावर सब जीव के, होते साधु मित्र।
हिंसा सबकी टालते, रहते सदा पवित्र॥

भगवान् महावीर ने भी उत्कृष्ट साधना की थी। साढ़े बारह वर्षों की कठोर साधना के बाद वे अपने लक्ष्य तक पहुँचे। उन्होंने निद्रा पर विजय प्राप्त की,

ध्यान की गहराई में अवगाहन किया, ध्यान काल में होने वाले उपद्रवों और परीषहों को समभाव से सहा, तब जाकर वे भगवान बने अर्थात् अर्हत् बने।

कष्ट मुक्ति का मार्ग परीषह

साधु को परीषहजयी कहा गया है। साधु के बाईस परीषहों[5] का उल्लेख उत्तराध्ययन के दूसरे अध्ययन में विवर्णित है। तत्त्वार्थ सूत्र में परीषह को परिभाषित करते हुए कहा है, "मार्गाच्यवन निर्जरार्थं परिषोढ़व्या: परीषहा:"।[6] निर्जरा, आत्माशुद्धि के लिए और मार्ग से च्युत न होने के लिए जो अनुकूल और प्रतिकूल स्थितियां और मनोभाव सहे जाते हैं, वे परीषह कहलाते हैं, वे क्षुधा, प्यास आदि बाईस हैं। उन परीषहों को जीतने वाला ही परीषहजयी कहलाता है, यथा–

1. भूख में कष्ट का अनुभव न करना–क्षुधा परीषहजय है।
2. प्यास में कष्ट का अनुभव न करना–प्यास परिषहजय है।
3. सर्दी के कष्ट से विचलित न होना–शीत परीषह जय है।
4. गर्मी के कष्ट से विचलित न होना–उष्ण परीषहजय है।
5. डांस, मच्छर आदि से विचलित न होना, क्लेशित न होना दंशमंशक–परीषहजय है।
6. लज्ञा विकार आदि को जितना अचेल परीषहजय है।
7. वन, गुफा आदि असुहावने स्थान पर रहते हुए भी मन में संयम के प्रति अरुचि न आने देना अरति परीषहजय है।
8. ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना, स्त्री परीषहजय है।
9. नंगे पैर चलने से दु:खी न होना, चर्या परीषहजय है।
10. एक ही आसन में ध्यान करते समय शारीरिक कष्ट का अनुभव न करना आसन परीषहजय है।
11. पृथ्वी, शीला या तख्ते आदि पर सोने में दु:ख का अनुभव न करना, शय्या परीषहजय है।
12. किसी के द्वारा अपमान कारक गाली आदि सुनकर भी मन में क्रोध न करना–आक्रोश परीषहजय है।
13. कोई व्यक्ति शारीरिक कष्ट दे, तो भी चित्त में अशांति न लाना, उसके अनिष्ट का चिंतन न करना–वध परीषहजय है।

14. भिक्षा उपकरण आदि लेने में ग्लानि का भाव न आना–याचना परीषहजय है।
15. भोजन अथवा अन्य वस्तु के न मिलने पर दु:ख न मानना–अलाभ परीषहजय है।
16. शरीर में रोग उत्पन्न होने पर समभाव से सहन करना–रोग परीषहजय है।
17. नुकीली घास, कांटे आदि चुभने पर भी खेद खिन्न न होना–तृण स्पर्श परीषहजय है।
18. शरीर में मैल-पसीने आदि से उत्पन्न वदेना को समता से सहन करना–जल्ल (मैल) परीषहजय है।
19. कोई आदर न दे तो दु:ख न करना, सत्कार पुरस्कार परीषहजय है।
20. प्रज्ञा के उत्कर्ष और अपकर्ष को कर्मों का क्षयोपशम या उदय मानकर समभाव रखना प्रज्ञा परीषहजय है।
21. अवधिज्ञान आदि के अभाव में साधना को निरर्थक नहीं मानना, धैर्य से साधना करते रहना–अज्ञान परीषहजय है।
22. तीर्थंकर, आत्मा, पुनर्जन्म इन मोक्ष तत्त्वों को भगवान् की वाणी के आधार पर श्रद्धा से स्वीकार कर सम्यक्त्व रत्न की रक्षा करना, दर्शन परीषहजय है।

साधु के इन बाईस परीषहों में से कुछ शारीरिक, कुछ मानसिक और कुछ भावनात्मक है। परीषहों के प्रतिपादन का उद्देश्य शरीर को कष्ट देना नहीं है। उसका उद्देश्य है–आन्तरिक शक्ति का विकास हो, मनोबल में वृद्धि हो अर्थात् कष्ट को कष्ट के लिए नहीं कष्ट के निवारण के लिए सहन करना आवश्यक है। यह सारा संसार कष्टों से ग्रसित है। यह परीषह को सहन करने का मार्ग कष्ट मुक्ति का मार्ग है, कष्टों को आमंत्रित करने का मार्ग नहीं है। यह वास्तविकता है। यदि व्यक्ति इसके गूढ़ रहस्य तक नहीं पहुँचता है तो उसे अटपटा सा लगता है। लेकिन जब वह इसकी साधना कर लेता है तो उसे जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। इसी तथ्य की पुष्टि में कहा गया है–

वर्धतां शक्तिरन्तस्तथा, वर्धतां च मनोबलम्।
वर्धतामंदरानंदस्तत्, सोढव्या: परीषहा:॥

न कष्टं नाम कष्टाय, कष्टापोहाय तद्मतम्।
अस्मिन कष्टाकुले लोके, कष्टमुक्ते रसौ पथः॥

सच्चा साधु कौन?

गणधर गौतम ने भगवान महावीर से पूछा—"भंते जीवन का सार क्या है?" समाधान की भाषा में भगवान ने कहा—"गौतम! जीवन का सार है—संयम।" "आत्म स्वरूप की उपलब्धि"। जिज्ञासु गौतम का अगला प्रश्न था—"भंते! आत्म स्वरूप की उपलब्धि के साधन कौन-कौन से हैं?" भगवान ने फरमाया—"गौतम! अन्तर्दर्शन, अन्तर्ज्ञान और अन्तर्विहार—ये तीन इसके साधन हैं।" इन तीनों का समन्वित रूप है—आत्म-स्वरूप की उपलब्धि या अध्यात्म रमण। यह दीक्षा का अथ से इति तक का क्रम है। सद् जिज्ञासा से प्रारम्भ हो आत्मोपलब्धि में पर्यवसित हो जाना ही दीक्षा का चरम लक्ष्य है। दीक्षित होने वाला "संजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो"[7] बाह्य आभ्यन्तर सब संजोगों से मुक्त अनगार भिक्षु बन जाता है, वह साधु कहलाता है। प्रश्न हो सकता है कि वर्तमान में सच्चे साधु कौन? उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में साधु के जो मानक प्रस्तुत किये गये हैं, उनके आधार पर व्यक्ति स्वयं निर्णय कर सकता है कि कौन साधु कौन असाधु? आचार्य भिक्षु के सामने यही प्रश्न उपस्थित किया गया। उन्होंने एक दृष्टांत से इसे समझाते हुए कहा—"किसी ने पूछा—शहर में साहुकार कौन? एक समझदार आदमी ने उत्तर दिया—जो ऋण लेकर लौटा देता है, वह साहुकार जो ऋण लेकर उसको वापस नहीं लौटाता है, मांगने पर झगड़ा करता है, वह दिवालिया। इसी प्रकार पांच महाव्रतों को स्वीकार कर उनकी सम्यक् अनुपालना करता है, वह साधु और उसकी सम्यक् अनुपालना नहीं करता, वह असाधु।"

उत्तराध्ययन सूत्र में पापी श्रमण कौन है, इस संबंध में कुछ बिन्दु दर्शाये गये हैं—

1. जो साधु अधिक निद्रालु है,
2. जो साधु खा-पीकर सुख से सोया रहता है,
3. जो साधु गुरु की निंदा करता है,
4. जो साधु अभिमान वश गुरु की सेवा नहीं करता,
5. जो साधु प्रतिलेखन आदि श्रमणचर्या में प्रमाद करता है,
6. जो साधु बार-बार क्रोध करता है,

7. जो साधु कलह करता है,

8. जो साधु खाने का असंयम रखता है।

इस प्रकार के दुर्गुण जिसमें होते हैं, वह पापी श्रमण कहलाता है।[8] सारांश में यही कहा जा सकता है कि सच्चा साधु वही है, जिसमें साधुता का स्वरूप परिभाषित होता है।

साधना की आवश्यकता

प्रकृति ने हमें फेफड़ों द्वारा प्राण शक्ति के माध्यम से चेतना शक्ति के संचार की एक गति प्रदान की है। व्यक्ति अनियमित जीवनशैली के कारण इस गति द्वारा इस शक्ति का पूरा लाभ नहीं ले पाता है। अधिक चेतना शक्ति के संचार के लिए मानव शरीर में एक ओर उपकरण है, जिसे दिव्य शक्ति की रेखा (डिवाईन-चैनल) माना जाता है। जो मानव शरीर में स्थित ऊपर के चार चक्रों—सहस्रार-चक्र, आज्ञा-चक्र, विशुद्धि-चक्र, अनाहत-चक्र में निहित है। कहा जाता है कि लगभग पांच वर्ष की बाल्यावस्था तक यह चैनल जागृत रहता है। परन्तु जैसे-जैसे व्यक्ति सांसारिक प्रपंच वासनाओं में फँसता जाता है, वैसे-वैसे यह चैनल बंद होता जाता है। जीवन में अधिक शक्ति की आवश्यकता होने पर व्यक्ति इस चैनल का लाभ नहीं ले पाता। इस दिव्य शक्ति के चैनल को पुनः-पुनः जागृत करने के लिए कई वर्षों की साधना, किसी दिव्य आत्मा के आशीर्वाद या किसी जानकार व्यक्ति के शक्तिपात की आवश्यकता रहती है।

साध्य की सिद्धि हेतु जो विशेष क्रिया की जाती है, वह साधना कहलाती है। कोई भी कार्य साधना के बिना सफल नहीं होता। विद्यार्थी एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के लिए 16-18 वर्षों की साधना करने पर सफलता प्राप्त कर पाता है। विद्युत् शक्ति के प्रकाश को प्राप्त करने की साधना में अनेकों वैज्ञानिकों ने वर्षों तक पूरी दृढ़ता तथा साहस से कठोर परिश्रम किया तथा सफलता प्राप्त की।

चित्रकार, संगीतज्ञ, कलाकार आदि की विशिष्ट सिद्धियों को देखकर बहुत बार आश्चर्य होता है। पर ये सिद्धियां एकाएक अथवा अकस्मात् प्राप्त नहीं होती। इनके पीछे बहुत बड़ी साधना होती है। वर्षों का अखण्ड पुरुषार्थ, परिश्रम या साधना होती है।

धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यही होता है। इसमें जो प्रगति, विकास अथवा सिद्धि होती है, वह विशिष्ट प्रकार की साधना की देन है। यदि साधना न हो तो प्रगति, विकास, सिद्धि संभव नहीं है। सिद्धि साधना का ही

परिणाम है। भगवान महावीर के केवलज्ञान की सिद्धि के लिए साढ़े बारह वर्ष साधना करने का जो वर्णन आगमों में पढ़ते हैं, तो रोमांच होता है, अत: साधना काल में धृति की अत्यन्त अपेक्षा रहती है।

निष्कर्ष

अब तक का जैन तथा भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है, हजारों पापी चेतनाएं सन्तों की पावन सन्निधि में बैठकर पाप मुक्त, व्यसन मुक्त हुई हैं। जिन अपराधियों को राज्य-शक्ति, दण्ड-शक्ति नहीं बदल सकी वे तप शक्ति, संत शक्ति से बदले हैं। राजा परदेशी, दृढ़ प्रहरी, अर्जुन मालाकार, अकबर, अंगुलिमाल आदि अनेक डाकू सदा सर्वदा के लिए शांत होकर संत मुनियों के प्रति प्रणत हो गये। इसका प्रमुख कारण है संतों का प्रशस्त व तेजस्वी आभामण्डल।

सामान्यत: प्रत्येक प्राणी के चारों ओर प्राण-शक्ति (आभामण्डल) तीन से ढ़ाई ईंच के घेरे में रहती है। यह प्राण शरीर एक प्रकार से व्यक्ति का कवच है। यह नेगेटिव वायब्रेशन को व्यक्ति के शरीर में प्रवेश होने से रोकता है। साधक व्यक्ति, साधु-संत और ऋषि-महर्षियों का यह प्राणशरीर अपनी तेजस्वी साधना व विधेयात्मक चिंतन के कारण लगभग 16 से 18 फुट तक विकसित रहता है। व्यक्ति के चेहरे की चमक, आकर्षण व तेज तथा स्वस्थता का मुख्य आधार यह तेजोमय प्राण शरीर ही है। यही कारण है कि व्यक्ति जब अपने पूज्यपाद संत-शिरोमणि या तेजवान सज्जन व्यक्ति के इस विकसित प्राण शरीर की सीमा में आकर श्रद्धा से नमन करता है, तब व्यक्ति के तन, मन व प्राण में स्वस्थता व आनन्द की लहर फैल जाती है। आत्म-जागृति की भावना पैदा होती है। तनावों से मुक्ति का अहसास व शरीर का हल्कापन अनुभव करने लगता है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि साधुत्व को नमस्कार करने से पाप कर्मों का क्षय होता है और आत्म-शुद्धि होती है। इससे जीवन में शांति, समता, सहिष्णुता तथा समृद्धि का भाव विकसित होता है। जैसा कि कहा गया है–

आरोढ़ मुणिवणिया महग्घसीलंगरयण पडिपुन्नं।
जह तं निव्वाणपुरं सिग्घमविग्घेणं पावंति॥

मणिवणिक शीलांग रत्नों से परिपूर्ण यानपोत में आरूढ़ होकर अविघ्न रूप से शीघ्र ही निर्वाण को पा लेते हैं। अत: सन्तों को नमस्कार करने से नमस्कर्त्ता की आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है।

सन्दर्भ –

1. नमस्कार महामंत्र
2. ठाणं, 10/15, पृ. 904
3. नमस्कार चिंतामणि
4. ध्वला टीका
5. उत्तराध्ययन, 2/2-46
6. तत्त्वार्थ सूत्र, 9/8
7. उत्तराध्ययन, 1/1
8. वही, 17/3-4.

7. णमो लोए सव्व साहूणं : आराधना विधि

भक्त से भगवान, आत्मा से परमात्मा बनने के लिए नमस्कार महामंत्र एक राजमार्ग है। ध्येय के अनुसार ध्याता अन्त में ध्येय रूप में परिवर्तित होता है। यह एक सनातन सत्य है। इसका साक्षात्कार नमस्कार से होता है। नमस्कार नमस्कर्त्ता से कुछ लेने के लिए नहीं किन्तु अपनी आत्मा को नमस्कार स्वरूप बनाने हेतु होता है।

उपासना का फल

भारतीय संस्कृति में त्यागी तथा तपस्वी संतों का स्थान सदा से ऊँचा रहा है। पंच महाव्रतधारी साधु को भाव पूर्वक वंदना (नमस्कार) करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय और उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है। श्रमणं की उपासना समता की उपासना है, समानता की उपासना है, तपस्या की उपासना है। उनकी उपासना करने वाला स्वयं समतामय, समानतामय और तपस्यामय बन जाता है। उनकी जीवन नौका कभी समुद्र के बीच में नहीं रहती। तट के उस पार पहुँच जाती है। एक गृहस्थ तो साधु को वंदना करता ही है पर साधु भी दीक्षा पर्याय में ज्येष्ठ मुनि को वंदना करता है।

एक बार गणधर गौतम ने भगवान से पूछा—''भन्ते! आचार्य, उपाध्याय, साधु और साधर्मिक मुनि की पर्युपासना से जीव किस गुण को प्राप्त करता है।'' प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा—''गौतम! ज्येष्ठ साधु तथा साधर्मिक साधु की पर्युपासना से विनय तप की प्राप्ति होती है। वह विनयशील अपने गुरु का स्वप्न में भी अविनय नहीं करता है अतः आशातना दोष से रहित होने के कारण वह आत्मा नरक गति और तिर्यंच गति—इन दो दुर्गतियों का तथा मनुष्यों में म्लेच्छ आदि, देव गति में किल्विषी देव रूप दुर्गति का बंध नहीं करता। गुरु के गुण प्रकाशन, उनके आने पर अभ्युत्थान आदि करना तथा उनके प्रति बहुमान की भावना रखना—इन गुणों के कारण वह मनुष्य सुगति (ऐश्वर्यादि कुल में जन्म लेना) को, देव सुगति को (इन्द्रत्वादि पद पाना अथवा वैमानिक देव होना) प्राप्त करने योग्य कर्मों का उपार्जन करता है। सिद्ध रूप सुगति का विशोधन करता है। अर्थात् सिद्ध गति के कारणभूत सम्यक् दर्शनादि की विशुद्धि करता है। वह इस भव में प्रशस्त तथा विनय हेतुक समस्त श्रुत ज्ञानादि रूप कार्यों को करता हुआ अन्य बहुत से जीवों को भी अपने जीवनकाल में इस धर्म में लगा जाता है।

चरण स्पर्श का महत्त्व

दण्डकारण्य की एक सुन्दर गुफा। राम, लक्ष्मण और सीता का प्रवास स्थल। एक दिन त्रिगुप्त और सुगुप्त नाम के दो मुनि वहां आए। उन्होंने सीता के हाथ से भिक्षा लेकर दो मास की तपस्या का पारणा किया। उस गुफा के पास एक वृक्ष था, जिस पर एक गीध पक्षी रहता था। वह वृद्ध तो था ही, बीमार भी था। उसकी दृष्टि नीचे खड़े मुनियों पर पड़ी। उसे कुछ परिचित-सा लगा। उसने मुनि के परिधान पर दृष्टि केन्द्रित की। विचारों की उथल-पुथल मची, ऊहापोह हुआ और उसे अपना पिछला जन्म याद हो आया। उसने देखा वह पिछले जन्म में दण्डक राजा था। उसके नाम से ही वह जंगल दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने पापी पालक के द्वारा पांच सौ साधनाशील मुनियों का किस प्रकार नृशंस वध करवाया और इस स्मृति मात्र से वह बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। सीता ने उसको ऊपर से गिरते हुए देख लिया। उसने करुण-कातर नयनों से उसकी पीड़ा को परखा और अपने स्नेहसिक्त हाथों से उठाकर मुनि के चरणों का स्पर्श करा दिया।

सीता ने सोचा इस वृद्ध पक्षी का यह अन्तिम समय है और कुछ हो या नहीं, संतों के चरण स्पर्श से इसकी आत्मा को सुख मिलेगा। पक्षी को मुनि के चरणों में रखा गया, उस समय वह बेहोश था। कुछ ही क्षणों में पक्षी ने अपने पर फड़फड़ाने शुरू किये। वे मुनि विशिष्ट लब्धि सम्पन्न थे। उनके स्पर्श से गीध पक्षी स्वस्थ ही नहीं सुन्दर भी हो गया। राम, लक्ष्मण और सीता के मन पर उस घटना का गहरा प्रभाव हुआ। उन्होंने उसको भाई जैसा स्नेह देकर अपने साथ रख लिया। उसकी जटा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वे उसे जटायु नाम से संबोधित करने लगे।

यह वही जटायु पक्षी था, जिसने रावण द्वारा सीता के अपहरण का प्रतिवाद किया था। कहां रावण और कहां पक्षी। रावण ने शस्त्र के एक ही प्रहार से उसे धराशायी कर दिया। जटायु मरकर भी अमर हो गया।

णमो लोए सव्व साहूणं पद की आराधना विधि

मंत्र-विद आचार्यों ने मंत्र के गूढ़तम रहस्यों के आधार पर महामंत्र के एक-एक पद के एक-एक वर्ण की परिकल्पना की है। ''णमो लोए सव्व साहूणं'' पद के साथ नीले रंग का समायोजन किया है।

रंग-चिकित्सा के अनुसार नीले रंग को सम्पूर्ण चेतना का रंग माना है। यह मस्तिष्क के साथ-साथ पूरे शरीर को शांति पहुँचाता है। त्वचा पर पड़ने वाले

दाग, धब्बों के ईलाज में यह सहायक है। यकृत संबंधी या पित्त की गड़बड़ी में यह लाभ पहुँचाता है। यह रंग आवेश को नियंत्रण में रखता है।

गले की व्याधियां, लैरिंजाटिस, पैचिश, चेचक, मुँह, फोड़ा-फुन्सी, मिर्गी, दिल की धड़कन के कम ज्यादा होने, टाइफाइड, उल्टी इत्यादिक के रोगियों के लिए नीले रंग का वातावरण लाभप्रद बताया है। इसलिए व्याधि शमन के लिए भी इस मंत्र को नीले रंग में जपा जाता है।

रागात्मक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए नीले रंग का आवास उपयोगी होता है। उसकी प्रकृति का परिवर्तन होने लगता है। नीला रंग उसके रूपान्तरण का सही घटक है।

द्वेषात्मक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए हरे रंग का आवास कारगर होता है। वासना विजय एवं इन्द्रिय विजय के लिए नीले रंग का ध्यान उपयोगी है। ''णमो लोए सव्व साहूणं'' का स्थान स्वास्थ्य-केन्द्र है। वहां नीले रंग का ध्यान जप के साथ करने से उत्तेजना शांत होती है तथा रागात्मक भाव बदलता है।[1]

सावधानी

नीले रंग का अत्यधिक इस्तेमाल कफ और वात को बढ़ाता है।

प्रयोग प्रविधियां

''णमो लोए सव्व साहूणं'' इस पद की अनेकों विधियां आराधना के रूप में उपलब्ध हैं, जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. नाभि से चार अंगुल नीचे (पेडू के स्थान पर) नीले रंग के साथ (यह रंग शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाता है) णमो लोए सव्व साहूणं इस पद की आराधना (जप) से रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास होता है। इस पद को दीर्घश्वास के साथ जपने से आरोग्य तथा उपशम भाव का विकास होता है।[2]

2. ''ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं'' इस मंत्र पद की शक्ति-केन्द्र पर नीले रंग के साथ प्रतिदिन दस माला फेरने से राहु व केतु ग्रह संबंधी दुष्प्रभाव शांत रहता है। इस मंत्र को उपरोक्त विधि से ज्ञान-केन्द्र पर जपने से शनि ग्रह जनित समस्या का निर्वाण होता है।[3]

3. पारस्परिक सौहार्द–

(1) समस्या–गृह-कलह।

(2) मंत्र–''ॐ ऐं ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं''।

(3) मंत्र संख्या—प्रतिदिन एक माला।

(4) प्रयोग प्रविधि—पूर्वाभिमुख होकर जप करें। प्रत्येक पद के उच्चारण के साथ नये वस्त्र के एक सौ आठ गांठ लगायें।

(5) परिणाम—गृह-कलह का निवारण होता है। पारिवारिक शांति वर्धमान होती है।[4]

4. मैत्री का विकास—मुनित्व से मैत्री भाव का उदय होता है और इससे मुनि पद का विकास होता है, जिन्हें प्रेम का भाव प्राप्त नहीं है और प्रेम की भाषा में बोलना नहीं आता है, उनके लिए ''णमो लोए सव्व साहूणं'' पद की आराधना विशेष रूप से उपयोगी है। श्याम वर्ण में मुनि पद का ध्यान करें। सबके प्रति मैत्री भावना का अभ्यास (संकल्प) करें।[5]

निष्कर्ष

परमेष्ठी का यह पांचवा पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह पद प्रथम चारों पदों की आत्मा है। साधु के बिना किसी भी पद को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस पद में मन को नियंत्रित करने की अद्‌भुत क्षमता है। महामंत्र के इस पद में किसी साधु विशेष को वंदना नमस्कार न करके गुण निष्पन्न साधु को ही नमस्कार किया गया है। अत: इस पद की आराधना साधुता की क्षमता को विकसित करती है। कर्मों की निर्जरा व मन की नियंत्रण क्षमता को बढ़ाती है।

एक तरफ स्टील का बर्तन पड़ा है और एक तरफ पानी तो स्थूल दृष्टि वाला कहेगा पानी की अपेक्षा स्टील की ताकत ज्यादा है किन्तु यदि स्टील को पानी के अन्दर रखा जाए तो एक लम्बी अवधि के बाद वह स्टील गल जायेगा, नष्ट हो जायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि स्टील की अपेक्षा पानी अधिक बलवान है। पानी की अपेक्षा वाष्प की शक्ति अधिक है, क्योंकि भाप से बड़े-बड़े इंजन चलते हैं और इस भाप से भी बिजली की ताकत अधिक है और उससे भी शक्तिशाली मानव-मन है।

प्रश्न उठता है कि इतने शक्तिशाली मन को कैसे वश में किया जाये? मन को वश में करने के अनेक कारणों में एक शक्तिशाली कारण है—मंत्र। मंत्र में मन को वशीभूत करने की ताकत होती है। मंत्र की परिभाषा भी यही स्पष्ट करती है। जो मन को साधे वह मंत्र है। मंत्र केवल मन को ही नहीं शक्तिशाली देव-देवेन्द्र को भी वश में कर लेता है। मंत्राधिराज नवकार का पांचवां पद ''णमो लोए सव्व साहूणं'' इस मंत्र जप से न केवल शरीर ही सधता है अपितु भाव और मन भी

संतुलित रहते हैं क्योंकि भाव, मन और शरीर–तीनों का घनिष्ट संबंध जुड़ा हुआ है। साधु भाव सब परमेष्ठी आत्माओं में अन्तर्निहित होने के कारण मूल पद और महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ–

1. सोया मन जग जाये, पृ. 130
2. मंत्र : एक समाधान, पृ. 302, 303
3. वही, पृ. 147, 152
4. वही, पृ. 182
5. पर्युषण साधना, पृ. 418, 419.

8. एसो पंचणमुक्कारो

भाव विशुद्धि, भावना की पवित्रता, आदर्श की स्थिरता हेतु आदर्शभूत पुरुषों को नमना, बारम्बार नमना मानव जीवन का परम-पवित्र कर्त्तव्य है। नमस्कार का यह आन्तरिक रहस्यभूत भाव इस नमस्कार महामंत्र के पवित्र पदों द्वारा सूचित होता है। वास्तव में विशुद्ध भावों से समर्पण की भाषा ही भक्ति है। भक्ति से भगवत्ता प्राप्त करने की एकमात्र विद्या है—अहं का विसर्जन एवं स्व का समर्पण। किसी शायर ने सटीक बात कही है—

''खुदी का जब पर्दा उठा, अजब यह माजरा देखा।
जिसे मैं बंदा समझा था, उसी को फिर खुदा देखा॥''

''जो अपनी खुदी से जुदा हो गया।
खुदा की कसम वह खुदा हो गया।''

भगवान महावीर ने कहा ''धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ''।[1] श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा—''जहां सर्वोत्कृष्ट शुद्धि वहां सर्वोत्कृष्ट सिद्धि''। भाव-पूजा, भाव-नमस्कार करते हुए अर्हत् भगवान की स्तुति में आचार्यश्री तुलसी ने कहा—प्रभो! आप चेतन स्वरूप है, मैं आपको पाषाण कैसे बना सकता हूँ? आप निर्मल हैं, अविकारी हैं, फिर आपको स्नान कराने का क्या प्रयोजन? आप छः काय के जीवों को अभयदान दे चुके हैं। मैं अपना सम्पूर्ण जीवन आपको अर्पित कर चुका हूँ तो फिर फल, फूलों की भेंट रूप हिंसा का क्या प्रयोजन? आपका कण-कण केवल ज्ञान की सुरभि से सुरभित है, फिर आपके चारों तरफ अगरबत्ती की सुरभि फैलाने वाले पदार्थ और चंदन चरच कर सुगंध फैलाने की क्या अपेक्षा। भगवान मेरे पास ताल, कंसाल, धूप, दीपक आदि द्रव्य पूजा रूप सामग्री नहीं है पर मेरा चित्त आप में रमा हुआ है इसलिए मैं आपमें एक लय होकर आपके गुणों का ध्यान कर रहा हूँ, आपको हृदय मंदिर में बुला रहा हूँ। आप करुणा सागर हैं, अपनी करुणा दृष्टि से आपके हृदय स्थित होने से मन की मलिनता को हटना ही पड़ेगा। भगवन! आप वीतराग समदर्शी हो अतः समता रस का संचार करो। अपने अनन्य भक्त तुलसी को हे! तारण-तरण-तीर्थपते! अपने समान मूल रूप में प्रतिष्ठित कर दो।

वस्तुतः भावपूजा में ही वह अनन्य शक्ति है, जो भक्त को भगवान स्वरूप में प्रतिष्ठित कर सकती है।

गुणात्मक सत्ता का अभिव्यंजक नवकार

नमस्कार महामंत्र गुणात्मक सत्ता का अभिव्यंजक है। गुणात्मक सत्ता के प्रति नमन व्यक्ति के चित्त पर गुणों की अमिट छाप छोड़ जाता है। चित्त पर पड़ी यह छाप व्यक्ति को सदैव पवित्रता की ओर अग्रसर करती रहती है। यह पवित्रता ही आत्म-विजय का मूल आधार बनती है। सेना में अच्छा कार्य करने वालों को वीर-चक्र, परमवीर-चक्र, महावीर-चक्र दिये जाते हैं, वैसे ही अध्यात्म क्षेत्र में आत्म-विजयी को वीर, महावीर, परमवीर, महाप्रज्ञ आदि संबोधन प्राप्त होते हैं।

नमस्कार महामंत्र में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शक्तियां निहित होने के कारण इसके जप से आश्चर्यकारिक परिवर्तन देखे जाते हैं। इस महामंत्र के अचिंत्य प्रभाव से चोर-रक्षक, ग्रह-अनुग्रह, अपशकुन-शुभशकुन रूप बन जाते हैं। इतिहास साक्षी है कि जब श्रीपाल-मैना सुन्दरी ने इस महामंत्र की आराधना की श्रीपाल का कुष्ठ रोग समाप्त होकर उसे अनेक प्रकार की ऋद्धियां-सिद्धियां प्राप्त हुईं। इसी महामंत्र के प्रभाव से अबोध श्वान ने इन्द्र पद पाया। जिनदास के दो बैल इसी महामंत्र के प्रभाव से कंबल, संबल नाम के दो भवनपति देव हुए। शिव कुमार मौत के मुँह से बच निकला। जंगलों, अटवियों में भूले-भटकों के लिए मार्गदर्शक, मददगार यही मंत्र बना। सारांश में कहा जा सकता है कि इस महामंत्र के अक्षर-अक्षर में अष्टमहासिद्धि, नव-निधि तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान आदि समाया हुआ है।

जिस प्रकार भवन के ऊपर शिखर होता है, उसी प्रकार पंचपदात्मक नवकार के ऊपर चार पद शिखर रूप है। प्राचीन ग्रंथों में इनको चूलिका नाम से अभिहित किया गया है। नमस्कारावलिका आदि ग्रंथों में कार्य विशेष होने पर चूलिका के ध्यान का भी विधान किया गया है। वहां लिखा है, "भूमि पर बत्तीस पंखुड़ी के एक कमल का संकल्प किया जाये और प्रत्येक पंखुड़ी पर चूलिका का एक-एक अक्षर पढ़ा जाए। चूलिका के पूरे तैंतीस अक्षर हैं, अतः अवशिष्ट तैंतीसवें अक्षर को बत्तीस पंखुड़ियों के ठीक बीच में रही हुई कर्णिका पर पढ़ना चाहिए।"

चूलिका के ध्यान की यह प्रक्रिया बड़ी सरस एवं प्रभावोत्पादक है। उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा साधक की आत्मा में आध्यात्मिक शक्तियां जागृत होती हैं, वासनाओं का वेग क्षीण होता है, मन विशुद्ध होता है और एक दिन पामर से पामर मनुष्य भी महान् आत्मा होकर महापुरुषों की श्रेणी में सम्मिलित हो जाता है।

चूलिका गाथा में पापों का नाश और बाद में मंगल का उल्लेख किया है। पहले दो पदों में हेतु का उल्लेख है तो अंतिम दो पदों में कार्य के फल का वर्णन है। जब आत्मा पाप-बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाती है तो फिर सर्वत्र सर्वदा आत्मा का मंगल ही मंगल है, कल्याण ही कल्याण है। नमस्कार महामंत्र हमें पाप नाश रूप अभावात्मक स्थिति पर ही नहीं पहुँचाता, प्रत्युत परम मंगल का विधान करके हमें पूर्ण आशावादी बनाता है, भावात्मक स्थिति पर भी पहुँचाता है। सचमुच नमस्कार महामंत्र में वह क्षमता है जिससे कर्मावरण विलय होकर चेतना का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो सके।

कैसे होता है महामंत्र से सब पापों का नाश? इस प्रश्न का बहुत सुन्दर और यथार्थ समाधान प्रस्तुत किया है—आचार्यश्री तुलसी ने। चन्द्रकांत-मणि एवं नाद-मणि की तरह यह छोटा-सा मंत्र रहस्यमय है, अपेक्षा है उन रहस्यों का विधिपूर्वक उद्घाटन किया जाये।

सव्वपावपणासणो

सव्वपावपणासणो—इस पंक्ति में अन्तर्निहित रहस्य का उद्घाटन करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है[2]—नमस्कार महामंत्र का प्रयोग सबसे पहले जिन महापुरुषों ने किया, बहुत ही सोच-समझकर किया है, ऐसा प्रतीत होता है। तप के द्वारा पाप का नाश होता है। संसार में जितने पाप हैं, उनका वर्गीकरण आठ कर्मों के रूप में है। कोई व्यक्ति उपवास करता है। उपवास के द्वारा कौन-सा कर्म क्षीण होगा? किस कर्म की निर्जरा होगी? जैन दर्शन की अवधारणा यह है कि उपवास सब कर्मों को प्रकंपित करता है। उसका प्रभाव ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय आदि किसी एक ही कर्म पर नहीं होगा। कर्मों के बंधन और निर्जरा के क्रम में उनको अलग-अलग नहीं किया जा सकता। प्रवृत्ति असत् होगी तो एक साथ सात-आठ कर्मों का बंधन होगा। प्रवृत्ति सत् होगी तो उतने ही कर्मों की निर्जरा एक साथ होगी। तप कर्म निर्जरा का साधन है। इसी प्रकार जप, ध्यान, स्वाध्याय, सेवा आदि से भी सब कर्मों व पापों को विनष्ट करने की शक्ति है। वास्तव में तो कर्म अलग-अलग होते ही नहीं। वे घुल मिलकर घोल बन जाते हैं।

मंत्र-जाप या तपस्या के द्वारा सात-आठ कर्मों के विनाश की बात भी सापेक्ष है, क्योंकि इनका सम्पूर्ण क्षय चौदहवें गुणस्थान के बाद होता है। वर्तमान में आबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है, इस अपेक्षा से उनका विनाश घटित हो जाता है।

पाप का एक अर्थ है–दुःख। दुःख से छुटकारा पाना धार्मिक अनुष्ठान की निष्पत्ति है। इसका संबंध आस्था के साथ भी है। शास्त्रों में कहा है–समाचारी सब दुःखों का नाश करने वाली है। कायोत्सर्ग सब दुःखों का विनाशक है। सुख-दुःख कौन-से हैं? एक दृष्टि से देखा जाए तो दुःख सब एक हैं और सुख सब एक हैं। पुण्य एक है और पाप एक है। संक्षेप और विस्तार–इन दोनों पद्धतियों से तत्त्व की व्याख्या होती है। वक्ता की विवक्षा को समझ लिया जाये तो सारी उलझनें समाप्त हो जाती हैं।

आचार्य भिक्षु ने कहा–एक महाव्रत टूटता है तो पांचों टूट जाते हैं क्योंकि पांचों का समवाय एक है। कपड़ा थोड़ा-सा जलता है, फिर भी कहा जाता है कि कपड़ा जल गया। एक बहुत बड़ा मकान है, उसकी दीवारें भी बड़ी हैं। उनमें से कुछ दीवारें गिर जाती हैं तो कहा जाता है कि मकान गिर गया। मकान कहां गिरा? वह तो खड़ा है, पर उसका जो भाग क्षतिग्रस्त हुआ उसकी विवक्षा करने से मकान गिरने की बात भी सही हो जाती है। इसी प्रकार पाप या दुःख अंश रूप में भी नष्ट होता है तो भी उसे समग्रता से ही बताया जाता है। इस अपेक्षा से सव्वपावपणासणो विशेषण सार्थक प्रतीत होता है।

पाप का एक अर्थ होता है–अमंगल। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में लिखा है–"सिणेहो पावसंकी"–स्नेही अमंगल की आशंका करता है। मानना होगा कि अमंगल की कल्पना स्नेही के प्रति ही होती है। इस अर्थ को स्वीकार करें तो महामंत्र सब प्रकार के अमंगल को दूर करता है। अमंगल को दूर वही कर सकता है, जो स्वयं मंगल होता है। नमस्कार महामंत्र को सब मंगलों में प्रथम कोटि का मंगल माना गया है। निःसंदेह पवित्र आत्माओं के प्रति श्रद्धा भक्ति होने से मोह रूपी अंधकार का विलय होता है। अज्ञान, संशय, विपर्यय आदि का नाश होता है। आत्मशक्ति का विकास होता है। दुःखों का अन्त होता है। दुःख का मूल अज्ञान, संशय अथवा विपरीत ज्ञान ही है। कहा भी है–"अज्ञानं खलु कष्टं, क्रोधादिभ्योऽपि सर्वपापेभ्यः।" इन पापों के नाश का फलितार्थ है–ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति का विकास। इसके अतिरिक्त कोई साधना, आराधना नहीं है, मंगल नहीं है इसलिए इस सन्दर्भ में यथार्थ ही कहा है–"ऐसो पंचणमुक्कारो सव्वपावपणासणो" यह नमस्कार महामंत्र सब पापों का नाश करने वाला है।

श्रद्धा परमौषधि

सभी प्रकार के अरिष्टों को दूर कर सब प्रकार की सिद्धियों का प्रदाता होने के कारण नमस्कार महामंत्र कल्पवृक्ष से भी महान, श्रेष्ठ माना गया है। इसकी

साधना के लिए श्रद्धा, दृढ़ विश्वास तथा संकल्प शक्ति का होना आवश्यक है। आज के वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बिना आस्तिक्य भाव के किसी लौकिक कार्य में भी सफलता पाना संभव नहीं है। अमेरिकन डॉक्टर होवार्ड रस्क ने बताया कि रोगी तब तक स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता जब तक वह अपने आराध्य में विश्वास नहीं करता। आस्तिकता ही समस्त रोगों को दूर करने वाली है। जब रोगी को चारों ओर से निराशा घेर लेती है, उस समय आराध्य के प्रति की गई आराधना, जप आदि प्रकाश का कार्य करते हैं। सन् 1950 का प्रसंग है–बम्बई निवासी रतनचन्द भाई के गले में कैंसर की गांठ होने से इलाज हेतु अठारह लाख रुपए खर्च हो गये पर कोई लाभ नहीं हो पा रहा था। वे अमेरिका से वापस बम्बई आ गये। बम्बई में डॉक्टरों ने 24 फरवरी, 1950 का दिन उनके इस जीवन का अंतिम दिन घोषित किया क्योंकि गले में स्थित गांठ ने भयंकर रूप ले लिया था।

रतनचन्द्र ने उस तड़फन की स्थिति में चिन्तन किया कि अब मुझे सब दवाओं को छोड़कर नमस्कार महामंत्र की शरण स्वीकार करनी चाहिए ताकि समाधिपूर्वक मृत्यु का वरण कर सकूं। तत्काल डॉक्टर को बुलाकर उन्होंने ग्लुकोज, इन्जेक्शन, ऑक्सीजन, सारी नलकियां आदि निकलवा दी। सबको कमरे से बाहर भेज दिया। कमरे में एक दवा की बोतल तक नहीं रखी।

रतनचन्द भाई ने अपने पारिवारिक जनों से कहा–मैं पंच परमेष्ठी की शरण स्वीकार कर रहा हूँ अर्थात् नमस्कार महामंत्र का ध्यान कर रहा हूँ अत: कोई कमरे में न रहे। सबको बाहर भेज दिया। कमरा बंद करवा दिया। भीतर ध्यानस्थ हो उन्होंने केवल अपनी आत्मा से लय जोड़ ली। उन्हें अलौकिक आनंद की अनुभूति होने लगी। ''नमस्कार महामंत्र'' और सर्वे भवन्तु सुखिन: इन पद्यों के जप में पूरा दिन और आधी रात बीत गई। वे तन्मयता पूर्वक सारी वेदना को भूलकर एक आसन में स्थिरता से जाप, ध्यान करते रहें। उन्हें अप्रतीम आत्मबल की अनुभूति होने लगी। आधी रात के करीबन उन्हें एक रक्त की वमन हुई। मानो सारा रोग शरीर से बाहर निकल गया हो। उन्हें गहरी शांति की अनुभूति हुई। रात्रि भर जप चलता रहा। सुबह उन्होंने दरवाजा खोला और पारिवारिक जनों को स्वस्थता की बात कही। उन्होंने एक गिलास दूध लिया। सबको आश्चर्य हुआ कि पानी की एक घूंट गले से नीचे नहीं उतर रही थी और वे आसानी से एक गिलास दूध पी गये। इस प्रत्यक्ष शारीरिक परिवर्तन ने सबको महामंत्र के प्रति

श्रद्धानत कर दिया। डॉक्टर स्वयं आश्चर्यचकित रह गये। इसके बाद जीवन भर जप का क्रम घंटों-घंटों तक चलता रहा। वे जप में एकदम तन्मय हो जाते। कुछ समय पश्चात् उन्होंने डॉक्टरों से शारीरिक जाँच करवाई पर आश्चर्य की बात शरीर में कैंसर का एक तत्त्व भी नहीं रहा।[3]

उपरोक्त घटना इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आराध्य के प्रति की गई भक्ति में बहुत बड़ा आत्म संबल है। भगवान महावीर ने कहा–"श्रद्धा परम दुल्लहा"।[4] वास्तव में श्रद्धा बहुत दुर्लभ है। श्रद्धा परम औषधि भी है। श्रद्धा में अचिन्त्य शक्ति है। दृढ़ आत्म-विश्वास एवं आराध्य के प्रति गहरी श्रद्धा, भक्ति सभी प्रकार के विघ्नों को दूर कर मंगलों को प्रकट करने वाली होती है। डॉक्टर एलफ्रेड टोरी भूतपूर्व मेडिकल डायरेक्टर नेशनल एसोसियेशन फॉर मेंटल हॉस्पिटल ऑफ अमेरिकन का अभिमत है कि "सभी बीमारियां शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं से संबंधित हैं। अत: जीवन में जब तक धार्मिक प्रवृत्ति का उदय नहीं होगा, रोगी का स्वास्थ्य लाभ करना कठिन है। आराध्य के प्रति भक्ति उक्त प्रवृत्ति को उत्पन्न करती है। अदृश्य बातों की महत्त्वपूर्ण शक्ति का पता लगाना मानव को अभी नहीं आता है। जितने भी मानसिक रोगी देखे जाते हैं, अन्तरतम की किसी अज्ञात वेदना से पीड़ित हैं। इस वेदना का प्रतिकार आस्तिक्य भाव ही है।" अत: स्पष्ट है कि उच्च या पवित्र आत्माओं की आराधना जादू का कार्य करती है।

नमस्कार महामंत्र के उच्चारण से एक आत्मा की ही नहीं अनंत-अनंत वीतराग आत्माओं की स्तुति एक साथ हो जाती है, क्योंकि भूतकाल में अनंत चौबीसियां हो चुकी हैं और भविष्य में अनंत चौबीसियां होगी। सिद्ध जीव भी अनंत हैं। अत: महामंत्र सब पापों का नाश करने वाला है, निर्वाण सुख को देने वाला है, इसमें कोई संशय नहीं।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं

नमस्कार महामंत्र को सब मंगलों में प्रथम मंगल कहने के अनेक हेतु हैं–

1. विघ्नविनाशकता,
2. कल्याणकारिता,
3. भवान्तता,
4. दुरितशामकता,
5. गुणात्मकता,

6. अपाय निवारकता,

7. निज स्वभाव प्रकाशकता आदि।

इस एक मंत्र के आधार पर कितने ही मंत्र, बीजमंत्र, मातृकाएं आदि निष्पन्न हुई हैं। यह मंगल भावनाओं का महामंत्र है। प्रातःकाल उठते ही महामंत्रोच्चारण के पश्चात् सबके प्रति मैत्री-भावना, मंगल-भावना का अनुचिंतन करना चाहिए। नमस्कार महामंत्र स्वयं मंगल है। इसलिए इसके आलंबन से सर्व देश एवं सर्वकाल के श्रेष्ठ महापुरुषों का स्मरण साधक को पाप वासना मुक्त और धर्मानुग बनाता है। इसी कारण सर्व मंगलों में महामंत्र प्रथम मंगल कहलाता है। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है, "हजारों पाप एवं सैकड़ों हत्याएं करने वाले तिर्यंच जीव भी इस मंत्र का आराधन कर देव गति को प्राप्त हुए हैं।" इस सन्दर्भ में एक वृत्तांत प्रासंगिक और प्रेरक है।

दुर्व्यसनों में फँसे चारुदत्त नामक अपने पुत्र को पिता ने अंतिम शिक्षा स्वरूप कहा—"पुत्र! तुमने आज तक मेरी एक भी बात नहीं मानी परन्तु अब मेरा अन्त समय नजदीक है इसलिए तुम्हें एक शिक्षा दे रहा हूँ। उसको सदा याद रखना क्योंकि ज्यादा बात तो तू मेरी मानेगा ही नहीं इसलिए सब सुखों की जो कुंजी रूप है, वह संक्षेप में कहता हूँ, उसे मत भूलना। वह यह है कि जब कोई विकट वेला आए तब तुम नमस्कार महामंत्र का स्मरण करना और कराना। यह मेरी अंतिम शिक्षा है।" इतना कहते-कहते चारुदत्त के पिता की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु के उपरांत दुर्व्यसनी चारुदत्त ने अपने पिता का संचित किया हुआ सारा धन खर्च कर दिया। निर्धन होकर वह अपने सगे संबंधी जनों के पास रहने लगा। कुछ समय पश्चात् उसने अपने मामा के साथ कपास का व्यापार किया पर देवयोग से आग लग जाने से सारा कपास जल गया।

एक बार चारुदत्त को उसके मामा ने कहा—"समीपस्थ जंगल में भारुण्ड पक्षी उड़ते हैं। वे बहुत तेज गति से उड़ते हैं। वे स्वर्ण दीप में रहते हैं। वे मांस लोभ से स्वर्ण दीप से उड़कर यहां आते हैं और मांस मिलने पर वे उसे लेकर वापस स्वर्ण दीप में चले जाते हैं। इसलिए हम दोनों ताजे चमड़े की धमण तैयार कर उसमें प्रवेश कर जंगल में जाकर बैठे। उस समय वे भारुण्ड पक्षी मांस के भ्रम में हम दोनों को उठाकर स्वर्णदीप में ले जायेंगे। हम वहां पहुँच जायेंगे। हमें जितना सोना चाहिए उतना सोना लेकर किसी उक्ति से पुनः यहां लौट आयेंगे। इस तरह पहले भी बहुत मनुष्य स्वर्ण लेकर आए हैं इसलिए हमको भी ऐसा करना चाहिए।" दोनों ने वैसा ही किया और स्वर्ण दीप पहुँच गये।

वहां पहुँचने पर दोनों धमण से बाहर निकले और स्वर्ण दीप में घुमने लगे परन्तु कहीं भी उन्हें सोना नहीं मिला। घूम-घूम कर वे हताश हो गये। इसके अलावा खाने-पीने को भी कुछ नहीं मिलने से वे हताश हो गये। वापस लौटने का विचार करने लगे। परन्तु चारों तरफ समुद्र ही समुद्र था अत: और अधिक निराश हो गये। कोई उपाय न होने से वे रोने लगे। रोते-रोते चारुदत्त को पिता की अंतिम शिक्षा का स्मरण हो आया और उसने नमस्कार महामंत्र जपना शुरू कर दिया। कुछ समय पश्चात् वह नमस्कार महामंत्र बोलता-बोलता चारों तरफ घुमने लगा। घुमते-घुमते एक जगह उन्होंने एक मुनि को देखा। दोनों मुनि के पास गये, वंदना की और बैठ गये। कुछ समय पश्चात् वहां एक देदीप्यमान कांति वाला देव पहुँचा। देव ने पहले चारुदत्त को नमस्कार किया फिर मुनि को वंदना की। ऐसा उल्टा क्रम देखकर मामा ने मुनि से जिज्ञासा की। मुनि ने कहा–यह देव पूर्व भव में बकरा था। उस समय चारुदत्त ने उसे नमस्कार महामंत्र सुनाया, जिसके प्रभाव से यह तिर्यंच योनि को त्यागकर महर्द्धिक देव बना है। अत: यह देव चारुदत्त का उपकार मानता है इसलिए मेरे पहले उसको नमस्कार किया है। फिर देव ने उन दोनों की इच्छानुसार स्वर्ण देकर उन्हें अपने स्थान पर पहुँचा दिया। वे देव की प्रेरणा से सदा सर्वदा के लिए दुर्व्यसन से मुक्त हो गये। दोनों ने अपने पूर्वकृत पापों की आलोचना की। जीवन को धार्मिक क्रिया में नियोजित किया। अन्त में नमस्कार महामंत्र को जपते हुए मृत्यु के उपरांत सद्गति को प्राप्त हुए, महर्द्धिक देव बने, इस प्रकार महामंत्र के प्रभाव से मामा, भाणजा तथा बकरा–तीनों ने देव गति को प्राप्त किया।

यह नमस्कार महामंत्र कर्ण, मुख, मन और आत्मा का सर्वश्रेष्ठ अलंकार है। अंतिम क्षण में मात्र मुख में स्थित यह भूषण मृत्यु जैसी अवस्था को भी अलंकृत कर देता है तो हृदय में सदा-सर्वदा स्थित रहकर कितनी विशिष्टता देने वाला होगा। इसलिए यह मंत्र सदा सर्वदा हृदय में बस जाये और हम उन्हीं पदों को आत्मा में सुघटित करने के लिए शिल्पी और छैनी दोनों का कार्य करें, यह अपेक्षित है। जो कोई भी इस मंगल महामंत्र का आलंबन लेता है, वह मंगल स्वरूप बन जाता है। अत: मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं की सार्थकता स्वत: सिद्ध है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नमस्कार के प्रथम पद के स्मरण से शत्रु और दु:खों की निवृत्ति होती है। दूसरे पद के स्मरण से कार्य सिद्धि होती है। तीसरे

पद के स्मरण से अष्ट सिद्धि और नव निधि मिलती है। चतुर्थ पद के स्मरण से अज्ञान का नाश और ज्ञान की वृद्धि होती है तथा पंचम पद के स्मरण से तन, मन और भावों की स्वस्थता तथा विशुद्धि होती है। इस प्रकार पांचों पदों के स्मरण से आरोग्य, कल्याण, सुख तथा ऐश्वर्य प्राप्ति के साथ-साथ सब पाप दूर होते हैं, जिसका परिणाम निम्न रूप में देखा जा सकता है–

1. प्रज्ञा का अनावरण
2. चित्त का निरोध
3. समाधि के द्वार का उद्घाटन
4. सूक्ष्म शक्तियों का जागरण
5. भीतरस्थ ज्ञान, शक्ति और आनंद का प्रकटीकरण।

ऐसा कल्याणकारी और मंगलकारी है–महामंत्र। यह महामंत्र सब पापों का नाश करने वाला और सब मंगलों में प्रधान मंगल है, हम इस आगम वाक्य का मूल्यांकन करें, इसकी सम्यक् आराधना करें, जिससे अव्याबाध सुख और शांति का अनुभव हो सके। निःसंदेह शास्त्र और मंत्र दोनों ही दृष्टियों से यह महामंत्र शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण है। ऐसा पवित्र और शक्तिशाली महामंत्र हमें विरासत में पूर्वजों से मिला है, इसे चैतन्य करें और आत्मसिद्धि के पद पर अग्रसर बनें, इन्हीं भावों के साथ आचार्यश्री तुलसीकृत पंच परमेष्ठी की स्तुति की निम्नोक्त पंक्तियां मंत्र रूप हैं–

ॐ नमोऽस्तु अरिहंत महान, वंदे सविधि सिद्ध भगवान।
अभिनव आचार्योपाध्याय, सब सन्तन के प्रणमूं पांय॥

सन्दर्भ–

1. उत्तराध्ययन, 3/12
2. मन हंसा मोती चुगे, पृ. 30, 32
3. मंत्र यंत्र तंत्र विज्ञान, मासिक जनवरी-1980 का अंक
4. उत्तराध्ययन, 3/9.

9. लोकोत्तर मंगल

मंगल शब्द आर्य संस्कृति का एक विशिष्ट शब्द है, जिसके साथ कई प्रकार की भावनाएं जुड़ी हुई हैं। जैनाचार्यों ने 'मंगल' शब्द के विभिन्न अर्थ बताये हैं। इन अर्थों में लौकिक व लोकोत्तर सभी प्रकार के मंगल अन्तर्निहित हैं, यथा–

❋ जिसके द्वारा हित की प्राप्ति हो, वह मंगल है।

❋ जो आत्मा को (शुभ भाव से) अलंकृत करता है, वह मंगल है।

❋ जो भव (संसार) से पार करता है, वह मंगल है।

❋ जिससे मोद होता है, जिससे पूजित होता है, जिससे हितार्थ की ओर गति होती है, जिसके द्वारा दोष तथा कष्ट दूर होते हैं, वह मंगल है।

लौकिक मंगल

लोक में जिन पदार्थों को मंगल माना जाता है, उनका प्रयोग लौकिक मंगल है, जैसे–दही, दुर्वा, अक्षत, श्रीफल, स्वस्तिक, पूर्ण कलश आदि पदार्थ। विनायक की स्थापना, लौकिक देवों का स्मरण, लौकिक.देवों की पूजा, माता-पिता तथा बड़ों का आशीर्वाद इन सबको भी लौकिक मंगल माना गया है। इनको द्रव्य मंगल भी कहा जाता है। जैन आगमों में भी अष्ट-मंगल (द्रव्य-मंगल) का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं–

1. स्वस्तिक
2. वर्धमानक
3. श्रीवत्स
4. नन्द्यावर्त्त
5. भद्रासन
6. पूर्ण कलश
7. मीन युगल
8. दर्पण।

कहा जाता है कि जब तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं तब अष्ट-मंगल शुभ संकेत के प्रतीक के रूप में तीर्थंकर भगवान के आगे-आगे चलते हैं।

इन लौकिक मंगलों में कष्ट निवारण करने या सुख देने का संदिग्ध सामर्थ्य होता है। ये अपूर्ण सुख देते हैं, वह भी इस लोक में, परलोक में नहीं। अर्थात् मंगल का कार्य अनिष्ट का निवारण एवं इष्ट का लाभ दिलवाने का है, वह जिससे हो अथवा न भी हो, वह द्रव्य मंगल है, लौकिक मंगल है।

जिस प्रकार भरा हुआ घड़ा (कलश) सभी के लिए समान फलदायक नहीं है। गृह प्रवेश में पूर्ण भरा हुआ कलश शकुनकारी है परन्तु कृषक अथवा चोर के

लिए रिक्त कलश शकुनकारी नहीं है, ऐसा शकुनशास्त्र के ज्ञाता कहते हैं। अक्षत मंगल है पर गिरकर आँख में गिर जाये तो अमंगल भी बन सकता है, इससे यह सिद्ध होता है कि दही, अक्षत आदि द्रव्य मंगल सभी के लिए गुणकारी हो ऐसा नहीं है। द्रव्य मंगल में एक बार शुभ-शकुन हुए और दूसरी बार अशुभ-शकुन हो जाए तो शुभ-शकुन का परिणाम नष्ट भी हो सकता है अत: लौकिक मंगल अशाश्वत है।

लोकोत्तर मंगल की अवधारणा

लोकोत्तर मंगल शाश्वत मंगल है। वे किसी के लिए मंगलकारी हो, किसी के लिए न हो, ऐसा नहीं है। जो भाव मंगल को भाव मंगल के रूप में स्वीकार करते हैं, उसके लिए भाव मंगल मंगलकारी है। लोकोत्तर मंगल सुख के निश्चित्त साधन है और उनको अपनाने वालों को सम्पूर्ण सुख देते हैं। इस प्रकार द्रव्य मंगल की तुलना में भाव मंगल का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

लौकिक मंगल का प्रयोग गृहस्थ करते हैं। लोकोत्तर मंगल के प्रति गृहस्थ और साधु सबकी समान आस्था है। मंगल-पाठ, नमस्कार महामंत्र, लोगस्स– ये लोकोत्तर मंगल है, आत्मा भी लोकोत्तर मंगल है। लोकोत्तर मंगल के चार रूप हैं–अर्हत्, सिद्ध, साधुं, केवली-भाषित धर्म। इन चारों को उत्तम मंगल होने के कारण लोकोत्तम माना गया है। लोकोत्तम होने के कारण इनकी शरण स्वीकार की जाती है।

जैन शास्त्रों में सभी प्रकार के भाव मंगलों में नमस्कार महामंत्र को सर्वोत्कृष्ट भाव मंगल माना गया है। अर्हत् आदि पांचों आत्माएं मंगलकारी होने से इनको पंच-मंगल कहा गया है। जैन आगमों की रचना में भी आदि, मध्य और अंतिम– इन तीन स्थानों पर मंगल करने का विधान प्रचलित रहा है।

आद्य मंगल के हेतु–

1. शिष्यों को विघ्नोपशांत होकर शास्त्राध्ययन में विशेष श्रद्धा उत्पन्न होती है।

2. श्रद्धा से बहुमान, बहुमान से सद्-शास्त्र अध्ययन में उपयोग, उपयोग से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होकर विशेष सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है।

3. सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति से शास्त्रों का अध्यापन कराने वाले सद्गुरुओं पर भक्तिभाव की वृद्धि होती है, उससे जिनशासन की प्रभावना होती है।

4. अनेक आत्माओं को शास्त्राध्ययन के प्रति रुचि प्रकट होती हैं।

ये आद्यमंगल के अलौकिक फल हैं।

मध्य मंगल के हेतु –

1. शिष्यों को अध्ययन करने में उत्साह की स्थिरता बनी रहे।
2. शिष्यों के अध्ययन की अतिशीघ्र पूर्णता हो।
3. अध्ययन के समय किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो।

अंतिम मंगल के हेतु –

1. शास्त्र शिष्य, प्रशिष्यादि को अविघ्नता से प्राप्त हो।
2. अध्ययन की परम्परा सुखपूर्वक चले।
3. शिष्य, प्रशिष्यादि में अध्ययन की रुचि, उत्साह सतत् प्रवाहित रहे।
4. शास्त्र विच्छेद न हो।

इस प्रकार आदि, मध्य और अंतिम मंगल की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के प्रत्येक प्रसंग में मंगल का महत्त्व है। जिनशासन में जो चार प्रकार के मंगल माने गये हैं, उनका समावेश नमस्कार महामंत्र में ही हो जाता है। नमस्कार महामंत्र में अरिहंत और सिद्ध तो नाम पूर्वक हैं ही, साधु में आचार्य, उपाध्याय का समावेश है और अंतिम चार पद धर्म स्वरूप ही हैं।

नमस्कार महामंत्र में आद्य मंगल 'णमो' शब्द से किया है। मध्य मंगल 'नमुक्कारो' शब्द से किया है एवं अंतिम मंगल 'मंगलम्' शब्द से किया गया है। 'णमो' शब्द विनय का प्रतीक होने से महामंगलकारी है। जब सामान्य आत्माओं का विनय, नमस्कार फलदाता बनता है तो अति उत्तम आत्माओं को किया गया विनय-पूर्वक नमस्कार विशिष्ट फलदाता बनें इसमें क्या आश्चर्य? अंतिम मंगलम् शब्द इस मंत्र की शाश्वत्तता को सिद्ध कर रहा है अर्थात् अंतिम मंगल की व्याख्या इस मंत्र की अनादि-अनंत काल की शाश्वतता को प्रकट कर रही है।

तर्क नहीं आस्था का प्रश्न

आस्था जीवन का अमृत है। इसमें अलौकिक शक्ति निहित है। यह सबसे बड़ा आश्वासन है, जो व्यक्ति में नवस्फूर्ति एवं बल का संचार करती है। मंगल-पाठ के साथ जुड़ी हुई जन-आस्था इसकी लोकप्रियता को उजागर करती है। गुरु के श्रीमुख के मंगल-पाठ सुनना अत्यन्त शुभ और मांगलिक माना जाता है। कोई व्यक्ति गांव में प्रवासित साधु-साध्वियों के दर्शन करें या न करें, प्रवचन सुनें या न सुनें, धर्मचर्चा में रस लें या न लें पर शुभ कार्यों में, व्यापार, कोर्ट, कचहरी

में जाते समय, विवाह, यात्रा, दीक्षा, जन्म-जयन्ति आदि प्रसंगों में मंगलपाठ सुनने के लिए अवश्य आता है, यह तर्क का नहीं, आस्था का प्रश्न है।

मंगल-पाठ में एक ही बात है कि तूं (आत्मा) जहां भी जाएं चार की शरण स्वीकार करना। मांगलिक में कहां आया है कि जिससे धन की वृद्धि हो आदि-आदि। यह तो अपने पुण्य के अधीन है पर वीतराग प्रभु के नाम स्मरण में अद्भुत शक्ति है। उससे कर्मों की निर्जरा होती है और कर्म-निर्जरा से अनुकूलताएं, सफलताएं स्वयं आकर चरण चूमने लगती हैं। अगर मंगल-पाठ की आस्था के साथ सात ककार छोड़ने की आस्था भी जग जाए तो सोने में सुहागा वाली कहावत चरितार्थ हो सकती है। सात ककार को निम्नलिखित दोहे में संयोजित किया गया है–

काम क्रोध कलि कुटिलता, कुगुरु कुपथ कुविचार।
अगर शांति की कामना, तज नर सात ककार॥

सिद्ध-मंगल, मंगल का चरम विकास है। अरिहंत-मंगल, सिद्ध-मंगल के समीप का भवस्थ चरम विकसित मंगल है। साधु-मंगल–इन मंगलों की उपलब्धि के लिए अपनी समग्र चेतना में प्रस्थित मंगल और धर्म-मंगल, चेतना को मंगल रूप में परिणत करने की प्रक्रिया है। अत: लौकिक और लोकोत्तर–दोनों उत्कृष्ट फल इसके साथ जुड़े हुए हैं। मंगल पाठ वीतराग प्रभु की वाणी है। इसमें स्थित आत्मा स्वयं गुण रूप है और वह गुणों के बहुमान स्वरूप है। अत: मंगलपाठ की लोकोत्तरता और मंगलमयता असंदिग्ध है। अपेक्षा है घनीभूत आस्था के विकास की। आस्था पूर्वक किया गया कार्य अतिशीघ्र फलीभूत बनता है। कहा भी है–

मंगल दीपक नहीं, दीपक का प्रकाश है।
सबसे बड़ा मंगल मन का विश्वास है॥

सफलता की पहली शर्त है–आस्था, श्रद्धा तथा समर्पण की भावना। श्रद्धा का अर्थ है–लक्ष्य के साथ तादात्म्य या एकात्मकता स्थापित कर लेना, तन्मय हो जाना। तन्मयता ही व्यक्ति को सफल बनाती है।

अर्हत् मंगल के प्रयोजन

1. अर्हत् वीतराग है इसलिए मंगल है।

2. अर्हत् मोक्ष मार्ग रूप रत्नत्रयी के उपदेष्टा है, जिन पर चलने वाले भव्य जीवों को मुक्ति (मोक्ष) मिलती है। रत्नत्रय मंगल है, मोक्ष मंगल है, अतः अर्हतों की शरण भी मंगल स्वरूप है।

3. अर्हतों की शरण परिणाम विशुद्धि का कारण है। आत्मा के शुभ अध्यवसाय के सिवाय कुछ भी मंगल नहीं है यह निश्चयनय के आधार पर कहा जा सकता है। शुभ अध्यवसाय मंगल है अर्हतों की शरण भी मंगल है।

4. अर्हतों की शरण से दर्शन विशुद्धि होती है। आचार्यश्री तुलसी द्वारा विरचित निम्न पंक्तियां इसी तथ्य को प्रदर्शित कर रही हैं–

अर्हतों के अनुभवों का आगमों में सार है।
वह हमारी साधना का प्राणमय आधार है॥[1]
देव मेरे दिव्य अर्हन्, श्रेष्ठ सारे लोक में,
साधना धन साधु मेरे, सुगुरु पथ आलोक में।
धर्म वह है जो साधना पथ केवली उपदिष्ट है,
आत्म-निष्ठामय अमल सम्यक्त्व मुझको इष्ट है॥[2]

अर्हतों की शरण से सम्यक्त्व रत्न की उपलब्धि, पुष्टि तथा स्थिरता बढ़ती है। सम्यक्त्व मंगल है अत: अर्हतों की शरण भी मंगल है।

अर्हत मंगल (नाम) का चमत्कार

वि.सं. 2032 की घटना है। मोटागांव (गोगुंदा) के श्रावक वेणीरामजी खोखावत दृढ़धर्मी, लोकप्रिय, जिम्मेदार, श्रद्धालु और साधु-संतों के भक्त थे। एक दिन रात्रि के समय वे ऊपर के कमरे में सो रहे थे। अचानक डाकू आये और उन्हें मौत के मुख सुला गये।

दूसरे दिन जब उनकी अंतिम यात्रा शुरू हुई, अर्थी को कंधे पर उठाते ही अर्हत् भगवान महावीर के जय नारे लगाये गये। दरवाजे के बाहर पैर रखा कि समस्या आ गई। पुलिस इन्स्पेक्टर और थानेदार कार्यवाही हेतु पहुँच गये। आदेश मिला अर्थी को नीचे उतारो। पहले समुचित कानूनी कार्यवाही सम्पन्न होगी। इन्स्पेक्टर का आदेश सुनते ही सब घबरा गये, क्योंकि कंधे पर उठाई हुई अर्थी को वापस नीचे रखना अपशकुन का प्रतीक माना जाता है। पता नहीं भगवान महावीर के नाम का क्या चामत्कारिक प्रभाव हुआ? तत्काल इन्स्पेक्टर बोला–जब भगवान् महावीर का नाम ही ले लिया है तो चले जाओ, इसकी कार्यवाही नहीं करेंगे। पुलिस की गाड़ी तत्काल वहां से लौट गई। पुन: सारा वातावरण भगवान महावीर के जयनारों से गूंज उठा।

आगम प्रसिद्ध घटना है कि जब पूरण तापस का जीव असुरेन्द्र बना, उसने शक्रेन्द्र को पहले स्वर्ग में अपने से ऊपर समृद्धि सम्पन्न देखा। उसका

सौन्दर्य, सुख नष्ट करने की भावना से असुरेन्द्र प्रथम स्वर्ग में छद्मस्थ अर्हत् महावीर की शरण लेकर गया अन्यथा भवनपति देव की इतनी ताकत नहीं कि वह वैमानिक देवलोक में पहुँच सके। जब वह वहां पहुँचकर मर्यादा से बाहर हो गया, उसे वज्र फेंककर वहां से दौड़ाया गया। तब भागकर असुरेन्द्र अपनी सुरक्षा के लिए अर्हत् महावीर के श्रीचरणों के नीचे कुंथुआ का रूप बनाकर बैठ गया और वज्र के आघात से बच गया।

सिद्ध-मंगल की सार्थकता

सिद्ध मंगल के निम्न हेतु हैं–

1. सिद्ध केवल शुद्ध आत्मा है। आत्मा से बढ़कर आत्मवादी के लिए कोई मंगल नहीं हो सकता है? आत्मा का नाम ही सिद्ध है और सिद्ध का नाम ही आत्मा है अत: सिद्ध मंगल है और सिद्ध भगवन्तों की शरण मंगल स्वरूप है।

2. देव, देवेन्द्र, चक्रवर्ती अथवा अहमिंद्र के पद एवं सुख अशाश्वत हैं परन्तु सिद्धों का सुख शाश्वत और अव्याबाध है। जो शाश्वत है, वह मंगल स्वरूप है अत: सिद्धों की शरण भी मंगल स्वरूप है।

3. अरिहंत नमस्कार के पीछे मोक्ष मार्ग हेतु प्रधान है तो सिद्ध भगवान को नमस्कार करने के पीछे अविनाश हेतु प्रधान है। परन्तु गौण हेतु अनेक हो सकते हैं। जैसे-जैसे उन हेतुओं का प्रणिधान बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे नमस्कार की भावरूपता, शरण की सार्थकता और परमार्थ मंगलमयता बढ़ती जाती है।

गौण हेतुओं में अरिहंत भगवान का शब्द एवं सिद्ध भगवान का रूप (स्वरूप), अरिहंत भगवान का औदार्य और सिद्ध भगवान का दाक्षिण्य, अरिहंत भगवान का उपशम और सिद्ध भगवान का संवेग, अरिहंत भगवान की मैत्री और सिद्ध भगवान की मध्यस्थता, अरिहंत भगवान की अहिंसा और सिद्ध भगवान का सत्य आदि गौण हेतुओं में माने जाते हैं। अरिहंत व सिद्ध के ये गौण हेतु भी मंगल हैं, शुभ भाव स्वरूप हैं।[3] अत: अरिहंत व सिद्ध भगवान की शरण मंगल है। सिद्ध मंगल सिद्धि देने वाला है अत: इसकी सार्थकता स्वयं सिद्ध है।

सिद्ध-मंगल : एक प्रयोग

सरदारशहर की एक बहिन ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किये और कहा–गुरुदेव! सिर में भयंकर दर्द रहता है इस कारण न माला फेर सकती हूँ और न ही सामायिक कर सकती हूँ। गुरुदेव ने उसे दीर्घकाल तक ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करने का सुझाव दिया। उसने सघन आस्था के साथ प्रयोग किया

और सफल हो गई। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। "चंदेसु निम्मलयरा", "सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु" –ये मंत्र मृत्युंजय महामंत्र का काम करते हैं। जिन लोगों को भयंकर गुस्सा आता है, वे लंबे समय तक "चंदेसु निम्मलयरा" का सफेद रंग में ललाट पर ध्यान करें तो गुस्सा संतुलित हो जाता है, समस्या समाहित हो जाती है।[4]

साधु मंगल का औचित्य

1. साधु मंगल में पंच परमेष्ठी का समावेश है। केवली भगवान भी साधु मंगल में ही अन्तर्निहित है। केवल-ज्ञान मंगल है अत: साधु की शरण मंगल स्वरूप है।

2. पांचों परमेष्ठियों में नमस्कार के हेतुओं की प्ररूपणा करते हुए विशेषावश्यक भाष्य में कहा है–

मग्गो अविप्पणासो आयारो विणयया सहायत्तं।
पंचविह नमोक्कारं करेमि एएहिं हेउहिं॥2644॥[5]

अर्थात् अर्हत् नमस्कार से मार्ग, सिद्ध नमस्कार से अविप्रणाश, आचार्य नमस्कार से आचार, उपाध्याय नमस्कार से विनय एवं साधु नमस्कार से सहाय– ये मुख्य हेतु के रूप में प्राप्त होते हैं। साधु की शरण में व प्रणिधान में पांचों हेतु निमित्त रहते हैं जो मंगल रूप हैं अत: साधु की शरण भी मंगल है।

3. साधु का मंगल अध्यात्म का मंगल है। साधु साधना का प्रतीक है। जो साधना में, आत्मा में रहता है, रहने की कोशिश करता है, वह साधु है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप मोक्ष मार्ग हैं। अरिहंत सिद्ध–ये मोक्ष स्वरूप हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु–ये मार्ग पर रहते हैं। मार्ग मंगल है अत: मार्ग पर रहने वाले भी मंगल हैं और उनकी शरण भी मंगल है। इस प्रकार साधु मंगल का औचित्य उपयुक्त ही है।

साधु मंगल का चमत्कार

गुरुदेव श्री तुलसी का वि.सं. 2028 का चातुर्मास लाडनूं में था। श्रावक सदासुखजी कोठारी का गिरने के कारण हाथ के अंगूठे में फ्रेक्चर हो गया। जैन विश्वभारती के एक आवश्यक नोटिस पर उन्होंने बायें हाथ से हस्ताक्षर कर दिये। नोटिस प्राप्त करने वालों को हस्ताक्षर संबंधी संशय हो गया पर कोठारीजी ने स्पष्टीकरण कर दिया। फिर उन्होंने सोचा गुरुदेव के विराजने के काल में यदि अंगूठा ठीक नहीं हुआ तो अनेक कठिनाइयां आ सकती हैं। कोठारीजी दृढ़

आस्था के साथ गुरुदेव के पास पहुँचे और मंगलपाठ सुनाने का निवेदन किया। गुरुदेव ने मंगलपाठ सुनने का कारण पूछा। उन्होंने कहा–मैं हाथ का पक्का पट्टा उतरवा सकूं, इसलिए मंगल-पाठ सुनने आया हूँ। गुरुदेव उनकी बात सुन मुस्कुराने लगे और उत्तराभिमुख होकर मंगल-पाठ सुना दिया।

कोठारीजी ने अपने पुत्र विजयसिंह को कहा–अब सीधे अस्पताल चलकर पट्टा खुलवाना है। पुत्र को आश्चर्य हो रहा था पर कोठारीजी को गुरु के मुख से सुने मंगलपाठ पर पूरी आस्था थी। पुत्र ने हठपूर्वक कहा–एक महीने का पट्टा बंधा है, अभी तो चार-पांच दिन ही हुए हैं। आप कुछ दिन और ठहर जायें। मेरे अनुरोध को स्वीकार करें कि पहले स्क्रीन करवा लें यदि ठीक नहीं होगा तो पुनः पट्टा बंधवा लेंगे। पट्टा खोला गया। ऑपरेटर ने एक्स-रे मशीन चलाई। देखा कि हड्डी क्रेक है ही नहीं। पूज्य गुरुदेव के मुख से सुने मंगल-पाठ का चमत्कार देखकर उनका पुत्र आश्चर्यचकित रह गया।[6]

मंत्र-बल, मंत्र-शक्ति और मंत्र-प्रभाव के बहुत से ऐसे सफल और शक्तिशाली प्रमाण मिलते हैं कि इस विषय में मनुष्य की स्वाभाविक श्रद्धा हो जाती है। यह तो सिद्ध है कि महापुरुषों द्वारा उच्चारित सामान्य शब्दों में भी अद्‌भुत सामर्थ्य समाया हुआ होता है तो फिर अमुक उद्देश्य पूर्वक वर्णों की की हुई संकलना का बल तो विशिष्ट प्रकार का ही होगा, उसमें संदेह ही क्या है? मनुष्य तो क्या देवता और तिर्यंच भी मंगल-पाठ सुनते ही बोधि, समाधि तथा सिद्धि की ओर चरणन्यास करते हैं।

केवलि पण्णतो धम्मो मंगलं

दसवैकालिक सूत्र में कहा गया है–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ॥[7]

1. धर्म आत्मा की शुद्धि या सिद्धि से संबंधित है अतः उत्कृष्ट मंगल है।

2. धर्म ऐसा मंगल है जो सुख स्वरूप है, साथ ही वह दुःख का आत्यन्तिक क्षय करता है, जिससे उसके अंकुर नहीं रह पाते। इस अपेक्षा से धर्म की शरण मंगल-स्वरूप है।

3. धर्म आत्मा की सिद्धि कराने वाला है। वह जन्म-मरण के बंधनों को तोड़ने वाला है। संसार बंधन से बड़ा कोई दुःख नहीं है और संसार-मुक्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है। अतः मुक्ति प्रदान करने के कारण धर्म उत्कृष्ट मंगल, अनुत्तर मंगल है।

4. मोक्ष परम मंगल है, इसलिए उसकी उत्पत्ति के साधन को भी परम मंगल कहा गया है। वही धर्म परम मंगल है, जो मोक्ष की ओर अग्रसर कर सके।

धर्म का एक अर्थ है – धारण करने वाला। मोक्ष का साधन वह धर्म है, जो आत्मा के स्वभाव को धारण करे। आत्मा का स्वभाव अहिंसा, संयम और तप है। साधना काल में ये आत्मा की उपलब्धि के साधन रहते हैं और सिद्धि काल में आत्मा के गुण कहलाते हैं। पहले ये साधे जाते हैं, फिर स्वयं सध जाते हैं अत: धर्म की शरण मंगल स्वरूप है।

निष्कर्ष

श्रद्धा, भक्ति, विनय तथा समर्पण से ही जीवन सफल बनता है। पंच परमेष्ठी के रूप में अपनी आत्मा का दर्शन करना ज्ञान है। इससे आत्मा पंच-परमेष्ठीमय बनता है। पंच-परमेष्ठी में अपनी आत्मा को स्थापित करना दर्शन है। अति उत्तम वस्तु के प्रति मन में आदर न रहे तो वह अविनय है। छोटा बच्चा भी समझे बिना दवा लेने से निरोग बनता है। समझे बिना ली गई दवा भी गुणकारी होती है, निरोग बनाती है, वैसे ही पंच-परमेष्ठी को तीन करण, तीन योग पूर्वक किया गया नमस्कार आत्मा को शुद्ध बनाता है। नमस्कार सार है लेकिन उसमें मन को जोड़ना महासार है। आत्मा यदि एक क्षण के लिए भी परमेष्ठीमय बने तो उसमें इतना सामर्थ्य है कि मोक्ष मार्ग में बाधक होने वाले कर्मों की महान निर्जरा होती है, वे कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।

वस्तुत: शरण, आधार या नमस्करणीय राग-द्वेष मुक्त वीतराग आत्मा अथवा उस पथ के पथिक ही हो सकते हैं। इसलिए शरण के पीछे दो शर्तें रखी गई हैं – पहली शर्त जो मंगल है वही शरणदाता है। अमंगल कभी शरण देने योग्य नहीं होता है। दूसरी शर्त, शरण वही होगी जो लोक में उत्तम है। अनुत्तम कभी शरण नहीं हो सकता। उत्तम का अर्थ है – प्रबलतम। प्रबलतम वह होता है जो शिखर पर पहुँच गया हो अत: दो तथ्य स्पष्ट हो गये कि जो मंगल है, लोक में उत्तम है, वही शरण है।

अरिहंत, सिद्ध, साधु, धर्म – ये चार मंगल हैं, जो उत्तम हैं। इसलिए व्यक्ति इनकी शरण स्वीकार करता है। कितना सुन्दर कहा है संत कबीर ने –

ज्यों तिल मांहि तैल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुझ में, तू जाग सके तो जागि॥

जैसे इक्षु का सार माधुर्य रस, तिल का सार तेल, पुष्प का सार परिमल और दूध का सार नवनीत है, वैसे ही मंगल, उत्तम व शरण का सार होगा– ''अप्पाणं शरणं गच्छामि'' आत्मा की शरण का स्वीकार।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मंगलपाठ में निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार के मंगल नियोजित है। इससे लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार के मंगल सिद्ध होते हैं। लोकोत्तर मंगल होने के कारण ही यह परम मंगल, परम उत्तम और परम शरण है। गुरु मुख से मंगल-पाठ श्रवण करने वालों का चित्त पूरे दिन सहज ही आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत रहता है तथा चित्त भी शांत, प्रशांत बन जाता है। इसी तथ्य की पुष्टि आचार्यश्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियों से होती है–

अरिहंते सिद्धे साहू, धम्मं शरणं सुपवज्जामि।
विघ्नहरण मंगलमय तेरा स्मरण सदा अन्तर्यामि॥

सन्दर्भ–

1. श्रावक प्रतिक्रमण–ज्ञान
2. वही, दर्शन सम्यक्त्व
3. परमेष्ठी नमस्कार
4. साधना और सिद्धि, पृ. 17
5. विशेषावश्यक भाष्य, 2644
6. साधना के शलाका पुरुष गुरुदेव श्री तुलसी, पृ. 62
7. दसवैकालिक, 1/1

10. वंदन पाठ की वैज्ञानिकता

मानव मस्तिष्क की अद्‌भुत और अपरिमित क्षमताओं का अक्षय-कोष है। वह अनंत रहस्यों का भण्डार है। अभ्यास के द्वारा इन क्षमताओं को जागृत और विकसित किया जा सकता है। अभ्यास के साधन हैं—ध्यान, स्वाध्याय, जप, योग, साधना, श्रद्धा व समर्पण भाव आदि। भगवान महावीर ने कहा—''श्रद्धा परम दुल्लहा''। जहां श्रद्धा घनीभूत होती है, वहां परिणाम चमत्कार सा लगता है पर श्रद्धा चमत्कार नहीं होती। वह चैतन्य जागृति की सूचना देती है और उस तादात्म्य भाव की समरसता में मन की भावना सफल हो जाती है। यह भी सुनिश्चित तथ्य है कि जहां श्रद्धा गहरी होगी वहां समर्पण सहज ही सध जायेगा। पूजा, प्रार्थना, स्तुति, नमस्कार, वंदना—ये सब क्रियाएं समर्पण की प्रतीक हैं।

पंचांग प्रणति—एक श्रेष्ठ योग

चरण स्पर्श की प्रथा भारतीय संस्कृति में अति प्राचीनकाल से प्रचलित है। चरण स्पर्श करना व्यक्ति की नम्रता और आदर भावना को प्रकट करता है। यह चरित्र शुद्धिकरण का भी एक अंग है। जैसा कि कहा गया है—

अभिवादन शीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्॥ [1]

नित्य वृद्धजनों को प्रणाम करने से तथा उनकी सेवा करने से मनुष्य की आयु, विद्या (बुद्धि, कीर्ति), यश और बल बढ़ते हैं।

लगभग प्रत्येक धर्म की उपासना पद्धति में उपासना करते समय एक विशिष्ट प्रकार की मुद्रा या आसन का प्रयोग किया जाता है, जिसमें व्यक्ति घुटनों के बल बैठकर, हाथों को जोड़कर, मस्तक झुकाकर मस्तक से भूमि का स्पर्श करता है। मुसलमान नमाज पढ़ते समय, ईसाई चर्च में प्रार्थना करते समय, वैदिक, बौद्ध, जैन आदि देव वंदन या गुरुवंदन करते समय लगभग इसी आसन मुद्रा का प्रयोग करते हैं। जब कमर को झुकाकर मस्तक को भूमि तक झुकाया जाता है तब एड्रीनल ग्रंथि में अहंकार को पैदा करने वाले हार्मोन्स का परिष्कार होता है। उपासक में नम्रता के भाव पैदा होते हैं। अति प्राचीन समय में सार्वभौम रूप से सर्वत्र यह प्रथा प्रचलित थी। आसन, मुद्रा एवं भावना के संयुक्त प्रभाव से ग्रंथियों के हार्मोनों को परिष्कृत करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

जैन परम्परा में 'पंचांग-प्रणति' वंदना की विधि है। तिक्खुत्तो के पाठ से पंचांग प्रणति पूर्वक की गई वंदना आध्यात्मिक वैज्ञानिक होने के साथ-साथ स्वास्थ्यवर्धक और ध्यान की दिशा को भी उद्घाटित करने वाली है क्योंकि इसमें विनय, नमन और समर्पण आदि का श्रेष्ठ भाव है। पंचांग प्रणति का तात्पर्य—दो हाथ आनन्द-केन्द्र पर जुड़े हुए, दो घुटने जमीन पर टिके हुए और मस्तक झुकाकर नीचे भूमि पर लगाना।

पंच परमेष्ठी भगवन्तों को पंचांग-प्रणति पूर्वक वंदना करना जहां एक ओर नैतिक आचरण की शुद्धि का द्योतक है, वहीं दूसरी ओर श्रेष्ठ प्रकार का योग भी है क्योंकि एड्रीनल ग्रंथि पर नियंत्रण रहने से शरीर और मन का आरोग्य बना रहता है। इस वंदना में सर्वाधिक महत्त्व भाव-वंदना का है। आचार्यश्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियां इस दृष्टि से मननीय है—

पंचांग प्रणति जैनों की वंदन-विधि है,
मुश्किल से मिलती संतों की सन्निधि है।
अवसर पर चरण स्पर्श करें धीमे से,
है सबसे अच्छी भाव वंदना वैसे॥[2]

शिष्टाचार

शिष्टाचार के प्रति जैन आचार्य बड़ी सूक्ष्मता से ध्यान देते हैं। वे आशातना को सर्वथा परिहार्य मानते हैं। किसी के प्रति अनुचित व्यवहार करना हिंसा है। आशातना हिंसा है। अभिमान भी हिंसा है। नम्रता का अर्थ है—कषाय-विजय। अभ्युत्थान, अभिवादन, प्रियनिमंत्रण, अभिमुख गमन, आसन-प्रदान, पहुँचाने के लिए जाना, प्रांजलीकरण आदि-आदि शिष्टाचार के अंग हैं। इनका विशद विवरण उत्तराध्ययन के प्रथम और दसवैकालिक के नौवें अध्ययन में है।

श्रावक व्यवहार दृष्टि से श्रावकों को भी वंदन करते थे।[3] धर्म दृष्टि से उनके लिए वन्दनीय मुनि होते हैं। पंचपरमेष्ठी को वंदन-पाठ से वंदना की जाती है तथा नमस्कार महामंत्र में भी पंच-परमेष्ठी को नमस्कार किया जाता है।

वंदन-पाठ

तिक्खुत्तो	तीन बार
आयाहिणं	दाईं से बाईं ओर
पयाहिणं	प्रदक्षिणा
करेमि	करता हूँ

वंदामि	स्तुति करता हूँ
नमंसामि	नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि	सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि	सम्मान करता हूँ
कल्लाणं	आप कल्याणकारी हैं
मंगलं	आप मंगलकारी हैं
देवयं	आप धर्मदेव हैं
चेइयं	आप ज्ञानवान हैं
पज्जुवासामि	सेवा करता हूँ (उपासना)
मत्थएण वंदामि	मस्तक झुकाकर वंदना करता हूँ।

वंदना के कतिपय दोष[4]

1. अनादृत वंदना	:	अनादर पूर्वक वंदना करना
2. स्तब्ध वंदना	:	अभिमान पूर्वक वंदना करना
3. प्रदुष्ट वंदना	:	जिसे वंदना करते हैं, उसकी त्रुटि को ध्यान में रखते हुए घृणापूर्वक वंदना करना।
4.मत्स्य वंदना	:	एक को वंदना करके दूसरे को घूमते हुए वंदना करना।
5. गौरव निमित्त वंदना	:	लोग कहते हैं समाचारी में कुशल है, इस प्रलोभन से वंदना करना।
6. चौर्य वंदना	:	लोगों की दृष्टि चुराकर वंदना करना या मेरा लाघव न हो अत: चोर की तरह छुपकर वंदना करना।
7. प्रत्यनीक वंदना	:	आहारादि काल में वंदना करना।
8. मैत्री वंदना	:	पूर्व संबंध तथा स्नेहवश वंदना करना।
9. दृष्टादृष्ट वंदना	:	देखने पर वंदना करना, दूरी या अंधकार में न करना।
10. मूक वंदना	:	बिना बोले वंदना करना।

11. ढड्ढर वंदना : जोर से बोलते हुए वंदना करना।

12. वेदिका बद्ध वंदना : हाथों को जांघ या घुटनों के बीच रखकर वंदना करना।

13. करमोचन वंदना : बंधन मानते हुए वंदना करना।

वंदना का सैद्धान्तिक आधार

भगवान् महावीर से पूछा गया–"वंदणएणं भंते! जीवे किं जणयइ?" प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा–वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं निबंधइ। सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ।[5] भगवान् ने वंदना के चार परिणाम बताये–

1. नीच गोत्र का क्षय, उच्च गोत्र का अर्जन।
2. सौभाग्य–लोकप्रियता।
3. अनुलंघनीय आज्ञा की प्राप्ति।
4. अनुकूल परिस्थिति।

वंदना एक प्रवृत्ति है। इसके मुख्य रूप से दो कार्य निष्पन्न हुए–

1. नीच गोत्र का क्षय–यह निर्जरा है।
2. उच्च गोत्र का बंध–यह पुण्य का बंध है।

वंदना का मुख्य फल निर्जरा और प्रासंगिक फल पुण्य कर्म का बंध है। इससे यह सिद्धान्त फलित होता है कि जहां-जहां शुभ प्रवृत्ति है, वहां-वहां निर्जरा है। कोई भी शुभ प्रवृत्ति ऐसी नहीं, जिसमें केवल पुण्य का बंध हो, निर्जरा न हो। पुण्य का बंध निर्जरा का सहचारी कार्य है।

आत्म-मीमांसा के आचार्य, आचार्य सामंतभद्र ने भगवान् महावीर की स्तुति करते हुए कहा है–

देवागम–नभोयान–चामरादि–विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान॥

भगवान! विमान के द्वारा देवता आपके पास आते हैं। आपके पास छत्र, चामर आदि विभूतियां हैं। इनसे आप महान नहीं हैं। ये सब तो मायादि-एन्द्रजालिक के पास भी हो सकती हैं। आपकी महानता के हेतु हैं–आपका निर्लिप्त भाव, आपकी निरहंकारिता। आप विभूक्ति युक्त हैं, फिर भी आपका

किसी के प्रति राग-द्वेष, आसक्ति का भाव नहीं है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अर्हतों की पूजा, अर्चना, गुणोत्कीर्तन या पर्युपासना महान निर्जरा का हेतु है तथा स्वयं को उस आलोक से आलोकित करने का उपक्रम है।

वंदना का आध्यात्मिक वैज्ञानिक महत्त्व

वंदन-मुद्रा में सर्वप्रथम दोनों एड़ियों को सटाकर दोनों पंजे थोड़े खुले रखे जाते हैं और दोनों हाथ बिना पोलार के जोड़कर खड़े होते हैं। इस विधि से खड़े होते ही शरीर में ऊर्जा की उत्पत्ति अधिक होने लगती है। मूलबंध भी लग जाता है अर्थात् मूल नाड़ी तन जाती है। मूल नाड़ी के तनने का अर्थ है–वीर्य के अधोगमन की समाप्ति और उर्ध्वारोहण का प्रारम्भ।[6] इस विधि से खड़े होते ही शरीरस्थ रसायनों का परिवर्तन भी प्रारंभ हो जाता है। जैसा कि प्रेक्षाध्यान में कहा गया है–जैसी मुद्रा वैसा भाव, जैसा भाव वैसा स्राव, जैसा स्राव वैसा व्यवहार, जैसा व्यवहार वैसा आचरण। आज विज्ञान ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है कि हमारी अन्त:स्रावी ग्रंथियां अन्य कारणों के साथ हमारी भावधाराओं की उत्पादक भी है। ये ही भावधाराएं हमारी चारित्र की नियामक हैं। चारित्र ही हमारे आध्यात्मिक/पारलौकिक सिद्धि का आधार है। अन्त:स्रावी ग्रंथियां हमारी स्वस्थता, हमारी कष्ट-सहिष्णुता की शक्ति को बढ़ाने वाली भी है।

वंदन मुद्रा के पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा दी जाती है। आदक्षिण प्रदक्षिणा कृति कर्म का एक प्रकार है। कृतिकार ने इसका अर्थ दक्षिण हस्त से प्रारम्भ कर चारों ओर प्रदक्षिणा करना किया है। प्राचीन काल में अपने इष्ट देव या गुरु के चारों तरफ घुमकर प्रदक्षिणा की जाती थी। उसका प्रारंभ गुरु के दायें हाथ की ओर से होता और प्रदक्षिणा करने वाले के शरीर का दायां भाग निरन्तर गुरु की ओर रहता। दिगम्बर सम्प्रदाय और दक्षिण भारत में प्रदक्षिणा की यह परम्परा आज भी प्रचलित है। वर्तमान में श्वेताम्बर जैन परम्परा में इसका प्रचलन नहीं है। अभिवंदना के समय दोनों हाथों को बद्धांजलि कर दायीं ओर से प्रारंभ करके तीन बार घुमाने की परम्परा प्रचलित है।

अध्यात्म मार्ग में नमस्कार मुद्रा, वंदना, प्रदक्षिणा आदि प्रतिक्रियाएं वृत्त परिवर्तन द्वारा वृत्ति परिवर्तन के माध्यम हैं। इसको वैज्ञानिक सन्दर्भ में समझा जा सकता है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में गोलाकार वस्तुओं की सतह का क्षेत्रफल सबसे कम होता है और इसी कारण उनकी सतह की ऊर्जा निम्नतम होती है। इसी

निम्नतम ऊर्जा या अधिकतम स्थिरता को प्राप्त करने के लिए वस्तुएं गेंद जैसा आकार धारण करने की कोशिश करती हैं। यही कारण है कि सूरज, चाँद, तारे, धरती और दूसरे खगोलीय पिण्डों की बनावट गोल होती है।

वंदना से पूर्व दोनों हाथों को दक्षिणावर्त्त घुमाकर फिर पंचांग नमाने के विधान के पीछे महत्त्वपूर्ण कारण वृत्ति परिवर्तन ही रहा है। गुरु, परमात्मा या परम-पुरुष के पास आने से पूर्व व्यक्ति में रही हुई दूषित वृत्तियां, जो कि उत्तरावर्त्त होती हैं, उनमें परिवर्तन करने के लिए उस पवित्र वातावरण में प्रवेश करतें ही तिक्खुत्तो के पाठ से यह प्रक्रिया तीन बार दोहराई जाती है।

अरिहंतों द्वारा प्रतिपादित वृत्ति परिवर्तन का यह सिद्धान्त, वंदना की यह मुद्रा उनकी अनोखी और अपूर्व देन है। यह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक भी है। इसी प्रकार नमस्कार मुद्रा, कायोत्सर्ग मुद्रा आदि मुद्राओं के पीछे अध्यात्म के साथ-साथ वैज्ञानिक रहस्य भी जुड़े हुए हैं।

मानव शरीर में ऊर्जा का संचरण भी दाईं से बाईं ओर होता है। प्रेक्षाध्यान में भी बायें हाथ को नीचे और दायें हाथ को ऊपर रखा जाता है। इसके पीछे भी यही रहस्य है कि ऊर्जा का संचरण सही गति से होता रहे ताकि ध्यान में एकाग्रता बनी रहे।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

प्रदक्षिणा के पश्चात् वंदनासन में बैठकर वंदामि से आगे का पाठ बोला जाता है। उस समय पैर का अंगूठा, अंगुलियां मुड़ती हैं। वहां पर सिर, कान व शक्ति-केन्द्र की नर्व्स् पर दबाव पड़ता है। पिनियल पिच्युटरी के भी ये ही स्थान हैं। ये हमारे शरीर की नियामक ग्रंथियां हैं। इन पर दबाव पड़ने से जुकाम ठीक होती है। एड़ी पर दबाव पड़ने से बवासीर नहीं होता। अगर किसी के बवासीर हो तो इस मुद्रा में बैठने से शनैः-शनैः ठीक होने की संभावना रहती है। आसन शास्त्रानुसार वंदनासन से पैर, जंघा मजबूत होती है, आलस्य दूर होता है, पाचन तंत्र ठीक होता है तथा वायु कुपित नहीं होती।

अन्त में मत्थेण वंदामि कहते हुए मस्तक को जमीन पर लगाया जाता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने एक जगह लिखा है, 'ण' के उच्चारण से खेचरी मुद्रा के लाभ होते हैं। 'ण' के उच्चारण के समय जीभ तालु से स्पर्श करती है, जिससे मस्तिष्क का रेटीकुलर फॉरमेशन प्रभावित होता है। नीचे झुकते ही नाभि पर दबाव पड़ता है। रेटीकुलर फॉरमेशन का स्राव एड्रीनल ग्लैण्ड को प्रभावित करता

है। परिणामत: हिंसात्मक उत्तेजनाएं कम होती हैं। नाभि हमारे शरीर की जड़ है। गर्भस्थ शिशु का शारीरिक विकास मां की नाभि से ही होता है। नाभि हमारे शरीर की बैटरी है। आयुर्वेद के अनुसार नाभि के सही स्थान पर रहने से ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है। बीमारी का प्रमुख कारण नाभि का असंतुलन माना गया है। इस प्रकार वंदनासन की मुद्रा में शशांकासन के सभी लाभ सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं, जैसे–गुस्सा कम होना, सहिष्णुता का विकास आदि। इसके साथ-साथ गला, पिनियल ग्लैण्ड, पिच्युटरी, थाइराइड, पेराथाइराइड–ये सब ग्रंथियां प्रभावित होती हैं। नाभि में एक केन्द्र है, जहां से सर्वांगव्यापी नसें निकलती हैं। ऊपर की ओर निकलने वाली दस नसें छींक, डकार, अश्रु ग्रंथियों को प्रभावित करती हैं। नीचे जाने वाली दस नसों का संबंध अधोवायु, मल-मूत्र आदि से रहता है। चार तिरछी दोनों तरफ दो-दो रोम के बाहर से आदान-प्रदान करती हैं। नाभि पर दबाव पड़ने से ये सब नसें प्रभावित होती हैं और विधेयात्मक भावों को विकसित करती हैं।

निषेधात्मक भावों से एड्रीनल को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। वह थक जाती है। अन्य ग्रंथियां भी अतिरिक्त श्रम से शिथिल हो जाती हैं। पंचांग प्रणति से इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह सम्यक् होने से यह मुद्रा व्यक्तिगत निर्माण में भी अत्यन्त सहयोगी रहती है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात् गुरु के चरणों में अंगुष्ठ को शीश लगाया जाता है। चरण स्पर्श किया जाता है। उस समय अंगुष्ठ तथा पैरों की अंगुलियों से नि:सृत तरंगें हमारी आन्तरिक क्षमताओं को उजागर करने में सहायक सिद्ध होती है। चरण तथा चरण रश्मियों के शारीरिक, आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व को समझकर उन रश्मियों से लाभान्वित होने में सहायता मिल सकती है।

शारीरिक महत्त्व

शरीर के कुछेक अवयव ऐसे हैं, जिनसे प्राण ऊर्जा का निर्गमन अधिक होता है। उनमें मुख्यतया हाथ, पैर, वाणी और चक्षु हैं। जैन-संस्कृति में पाद-विहार की परम्परा है। भूमि के साथ पैरों का सीधा सम्पर्क होता है। पैरों की एडियां भूमि से विद्युत् ग्रहण कर सम्पूर्ण शरीर को पहुँचाती है। एक्युप्रेशर के अनुसार जितने भी केन्द्र मस्तिष्क में विद्यमान हैं, उन सबके संवादी-केन्द्र पैरों के अंगूठे और अंगुलियों में पाये जाते हैं। शरीर का ऐसा एक भी अवयव नहीं है, जिसका संवादी-केन्द्र पैर में न हो। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि पैर तथा पैर का अंगूठा या अंगुलियां इतनी शक्तिशाली हैं कि पूरे शरीर का प्रतिनिधित्व

कर सकती हैं। नंगे पैर चलने से स्वत: पैर के बिन्दुओं पर दबाव पड़ता है। जिस बिन्दू का जिस रोग से संबंध होता है, वह बिन्दू सम्यक् प्रकार से दबने पर उस रोग की चिकित्सा हो जाती है। पैरों का यह मूल्यांकन शारीरिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के स्तर पर किया गया है।

वि.सं. 2015 की घटना है। टाटगढ़ में एक बहिन दीर्घकाल तक ज्वर से पीड़ित रही। बहुत इलाज करवाने के बावजूद भी बहिन को ज्वर छोड़ नहीं रहा था। औषधोपचार से लाभ न होने के कारण वह निराश हो चुकी थी। शरीर की दुर्बलता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी। अर्द्धनिद्रा की स्थिति में अचानक एक दिन उस बहिन के मन में एक विचार आया। अपने ग्राम में तेरापंथ की साध्वियां विराज रही हैं। सुना है उनमें से एक साध्वी तपस्विनी है, जिसका नाम है—साध्वीश्री भत्तूजी। जिनके अभी भी तप चल रहा है। उस समय वे आयम्बिल की प्रथम परिपाटी कर रही थी, जिसमें एक सौ नब्बे दिन लगते हैं। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को उन्होंने चतुर्मास में यह तप प्रारम्भ किया और शेष काल में विहरण करते हुए बैशाख शुक्ला छठ को पूर्ण किया।

उस बहिन ने सोचा तप को परम औषध माना गया है। तपस्वी सन्त के पास अनेक प्रकार की शक्तियां होती हैं। क्यों न मैं ऐसी तपस्विनी साध्वी की चरण रज का प्रयोग कर देखूं। उसने सब दवाओं को छोड़कर घनीभूत श्रद्धा के साथ इस उपचार को प्रारम्भ करने का दृढ़ निश्चय किया। एक दिन साध्वीश्री भत्तूजी गोचरी पधार रही थीं। पीछे से उस बहिन ने चरण रज ग्रहण की। वह प्रसन्नता पूर्वक अपने घर लौट आई। चरण रज को पानी में घोलकर उस पानी को पिया और सम्पूर्ण गात्र पर पानी को दवा के रूप में लगा लिया! संयोग की बात उस दिन उसका ज्वर कुछ कम हुआ और कुछ दिनों तक निरन्तर प्रयोग करने के बाद ज्वर वैसे ही काफूर हो गया जैसे हवा में कपूर। चमत्कार को नमस्कार होता ही है। उस बहिन की श्रद्धा को अधिक बल मिला। वह तेरापंथी साधु-साध्वियों से प्रभावित हुई और अपने पूरे परिवार को तेरापंथी बनाया।

वस्तुत: साधना, संयम और शील के प्रभाव से शरीर के अणु शक्तिशाली बनते हैं, फिर श्रद्धालु व्यक्ति के दिल में विश्वास हो तो तपस्वियों के चरण स्पर्श आदि से रोग, उपद्रव भी शांत होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। नि:संदेह गुरु के चरणामृत और चरण रज का प्रयोग अनेक व्याधियों के शमन में कामयाब होता है।

आध्यात्मिक महत्त्व

आध्यात्मिक दृष्टि से पैर संयमी आत्मा की अध्यात्म यात्रा, संयम यात्रा के प्रतीक हैं। तीर्थंकर आदि उस संयम-यात्रा के प्रतीक वीतराग-पुरुष हैं। उनकी

चेतना भव-बीज को उत्पन्न करने वाले राग-द्वेष से मुक्त है, पूर्णतया विशुद्ध या पवित्र आत्मा है। ऐसी पवित्र आत्मा के चरणों की शरण लेना स्वयं के लिए सुरक्षा कवच का निर्माण करना है। आराध्य के चरणों का स्पर्श और उसमें भी अंगुलियों और अंगूठों का स्पर्श करना अति प्रभावकारी और चमत्कारी होता है। आज के वैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य के अंगूठे और अंगुलियों के आभामंडल का फोटो लिया जा सकता है।

भारतीय साधना पद्धति में शक्तिपात का भी अपना विशिष्ट स्थान है। हाथ और पैर दोनों विद्युत् ऊर्जा निर्गमन के शक्तिशाली स्रोत हैं और सिर उस ऊर्जा को ग्रहण करने का माध्यम है। शिष्य गुरु के चरणों में मस्तक टिकाता है, गुरु सिर पर हाथ धरता है, उस समय गुरु के हाथ और पैरों से संक्रान्त होने वाली ऊर्जा शिष्य के मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाती है। उसकी योग्यताओं का विस्तार हो जाता है। यही शक्तिपात का रहस्य है।

वैज्ञानिक महत्त्व

वैज्ञानिक भी अब चरण-स्पर्श के महत्त्व को स्वीकार करने लगे हैं। उनका मानना है कि मानव शरीर में हाथ एवं पैर अत्यधिक संवेदनशील अंग हैं। हम किसी भी वस्तु को कोमल, शीतल, कठोर, गर्म आदि के गुण युक्त होने का हाथों या पैरों के स्पर्श कर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसी तरह हम किसी वरिष्ठ व्यक्ति, साधक अथवा तपस्वी व्यक्ति का चरण स्पर्श करते हैं तब उनके आशीर्वचनों के साथ उत्साहित मन से उनसे निःसृत ऊर्जा उनके हाथ और पैरों की अंगुलियों से हमारे शरीर में प्रविष्ट होती है और उस शक्ति से हम अपने आप में स्फूर्ति महसूस करते हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि जब कोई अपनी दोनों हथेलियों से किसी विशिष्ट व्यक्ति का चरण स्पर्श करता है तो कॉस्मिक इलेक्ट्रोमेग्नेटिक वेव्स का एक चक्र उसके शरीर के अग्र-भाग में घूमने लगता है। उसके शरीर से विकारों को नष्ट करने वाली ऊर्जा उत्पन्न होती है। चरण-स्पर्शकर्त्ता को नई स्फूर्ति के साथ नई प्रेरणा मिलती है और उसी शक्ति के कारण उसकी नकारात्मक प्रवृत्तियां समाप्त होने लगती हैं। चरण स्पर्श करने वाला धीरे-धीरे सात्विक प्रवृत्ति से सम्पन्न बनने लगता है। इस तथ्य को ऐसे समझा जा सकता है कि महापुरुष जिनसे निरन्तर सद्भावनाएं संप्रेषित होती है और उनकी पिच्युटरी ग्रंथि से A.C.T.H. नामक हार्मोन स्रावित होता है। यह स्राव नमनकर्त्ता के S.T.H. नामक हार्मोन्स को प्रभावहीन कर देता है। परिणामतः महापुरुषों की

ऊर्जा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति रोग रहित भी होता है और दूषित भावनाओं से मुक्ति भी पाता है। इसी को भारतीय संस्कृति में आशीर्वाद, वरदान, कृपा या अनुग्रह रूप माना जाता है।

सूक्ष्म अगोचर तरंगों का प्रभाव कितना प्रभावक है, यह आज की दुनियां में कम्प्यूटर, केलकुलेटर, रिमोट कंट्रोलर के भिन्न-भिन्न बटनों को दबाकर देख ही रहे हैं। जिस प्रकार इलेक्ट्रोमेग्नेटिक तरंगों की शक्ति से अंतरिक्ष में भेजे गये रॉकेट को पृथ्वी पर से नियंत्रित कर सकते हैं, उनकी यांत्रिक खराबी दूर कर सकते हैं, लेजर किरणों की शक्ति से लोहे के चादर में छेद कर सकते हैं। ओसीलेटर यंत्र की तरंगों से समुद्री चट्टानों का पता लगा सकते हैं। इसी प्रकार गुरु के आशीर्वाद के रूप में ऊपर उठे हाथ से निकलने वाली ऊर्जा रश्मियां वंदन-कर्त्ता के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं।

गुरु के चरणों में मस्तक रखने से उनके पैरों से निःसृत विद्युत् का लाभ मिलता है। आशीर्वाद से हाथ से निःसृत ऊर्जा का लाभ मिलता है। जब वे शांत भाव से भक्त को देखते हैं तब नेत्रों से निःसृत विद्युत् भी प्राप्त होती है। मन तीनों ओर से लाभान्वित होता है, यह भी एक विज्ञान है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि वंदन-पाठ की विधि में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय है। ऊर्जा की सुरक्षा, विकास और उर्ध्वारोहण की सम्यक् प्रक्रिया है। सहज समर्पण का अहोभाव है। आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में–

रत्नाधिक सम्मान में, करें न अंश प्रमाद।
विधियुत सायं वंदना, रखे हमेशा याद॥[7]

सन्दर्भ–

1. मनु स्मृति, 2/121
2. श्रावक संबोध, 2/36
3. भगवती, 11
4. ज्ञान-किरण, पृ. 16
5. उत्तराध्ययन, 29/11
6. मैं : मेरा मन : मेरी शांति, पृ. 169
7. संस्कार बोध, 19

11. पंच परमेष्ठी का प्रतीक मंत्र : ॐ

भारतीय संस्कृति में ओम् शब्द अत्यधिक विश्रुत है। किसी भी शुभ कार्य की आदि में, किसी भी साधना अथवा ध्यान के प्रारम्भ में 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है। नमस्कार महामंत्र की तरह ओंकार को भी सर्व-सिद्धियों का मूल माना है। कहा भी है—''कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमोनमः''। सांसारिक एवं आध्यात्मिक सुखों को देने वाले ओंकार को नमस्कार हो।

भारत भूमि पर जितने भी धर्मों और मतों का प्रादुर्भाव हुआ है, भले ही उनमें बुनियादी भेद हो, परन्तु वे सबके सब ॐ के महत्त्व पर एकमत हैं। हिन्दू धर्म ॐ को महामंत्र मानता है। जैनधर्म ॐ को नमस्कार महामंत्र से निःसृत मानता है। बौद्ध धर्म में ॐ को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। सिक्ख धर्म में तो 'इक ओंकार सतनाम' पर पूरा धर्मग्रंथ ही आधारित है। सभी इसे आदि शक्ति मानते हैं।

वैष्णव इसे ईश्वर का वाचक, जैन पंच-परमेष्ठी का वाचक और कुछ लोग इसे ब्रह्मा, विष्णु व महेश—इन तीनों देवों का वाचक मानते हैं। प्रवचन सारोद्धार की वृत्ति में उल्लेख किया गया है कि ''नमस्कार महामंत्र सभी मंत्रों की उत्पत्ति के लिए समुद्र के समान है। जिस प्रकार समुद्र से अनेक मूल्यवान रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार नमस्कार महामंत्र से अनेक उपयोगी और शक्तिशाली मंत्र उत्पन्न हुए हैं। पंच परमेष्ठी के नामों के आधे अक्षरों को लेकर 'ओम्' पद की रचना हुई है। इस प्रकार ॐ में पांचों पदों का निवास है। ओंकार की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है—

पद	अक्षर
अरिहंत	अ
अशरीरी (सिद्ध भगवान को अशरीरी भी कहते हैं)	अ
आचार्य	आ
उपाध्याय	उ
मुनि (साधु को मुनि भी कहते हैं)	म्

व्याकरण शास्त्रानुसार—अ+अ=आ, आ+आ=आ, आ+उ=ओ, मुनि का म्—ये सब मिलकर संधि हुई—ओम्। ओम् को ॐ इस प्रकार भी लिखा जाता है। इसमें चन्द्र बिन्दु को सिद्धशिला का प्रतीक माना है एवं बिन्दु सिद्धत्व का द्योतक है।

इसी तथ्य की पुष्टि वृहद्-द्रव्य-संग्रह गाथा-49 से परिपुष्ट होती है–

अरिहंता अशरीरा, आयरिय उवज्झाय मुणिणो।
पढमक्खर ठिप्पणो, ओंकारो पंच परमेष्ठी॥

मंत्र के मुख्यतः तीन अंग हैं–रूप, बीज और फल। जितने भी प्रकार के मंत्र हैं, उनमें बीजरूप नमस्कार महामंत्र या उससे निष्पन्न कोई सूक्ष्म तत्त्व रहता है। जिस प्रकार होमियोपैथी दवा में दवा का अंश जितना अल्प होता जाता है, उतनी शक्ति बढ़ती जाती है। इसी प्रकार नमस्कार महामंत्र के सूक्ष्मीकरण के द्वारा जितने सूक्ष्म बीजाक्षर अन्य मंत्रों में निहित किये जाते हैं, उन मंत्रों की उतनी ही शक्ति बढ़ती जाती है।

नमस्कार महामंत्र में कण्ठ, तालु, मूर्धन्य, अन्तस्थ, उष्म, उपधमानीय, वत्सर्य आदि सभी ध्वनियों के बीज विद्यमान हैं। बीजाक्षर मंत्रों के प्राण हैं। ये बीजाक्षर ही स्वयं इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनकी उत्पत्ति कहीं से हुई है। ॐ, ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि बीजमंत्रों की उत्पत्ति का स्रोत नमस्कार महामंत्र को बताते हुए कहा है–

पणव हरिया रिहा, इह मंतह बीआणि सप्पहावाणि।
सव्वेसिं तेसिं मूलो, इक्को नवाकार वरमंतो॥ [1]

प्रणव अर्थात् ओंकार, माया अर्थात् ह्रींकार और अर्हं आदि जो प्रभावशाली बीजमंत्र हैं, उन सबमें मूल एक प्रवर नमस्कार महामंत्र है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नमस्कार महामंत्र की बीज ध्वनियां ही समस्त मंत्रों की आधारशिला हैं।

ॐ अनंत रहस्यों का भण्डार

बीजकोश में ॐ को प्रणव बीज, ध्रुव बीज, ब्रह्म बीज और तेजोबीज कहा है। यह अनंत रहस्यों का भंडार है। इस मंत्र का आराधक पंच-परमेष्ठी में अपनी तन्यमता, तल्लीनता तथा प्रसन्नता का अनुभव करता है। ॐ की विशिष्ट शक्ति को कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1. यह प्राण-शक्ति को जागृत करने का मंत्र है।
2. यह चेतना, आनन्द और शक्ति का स्रोत है।
3. यह अध्यात्म संपदा से सम्पन्न मंत्र है।
4. यह अपराजित मंत्र है।
5. यह अनंतशक्ति का प्रतीक मंत्र है।

6. यह राग से विराग पथ पर चरणन्यास कराने का सेतु है।
7. यह मोक्ष रूपी मंजिल का सोपान है।
8. यह आत्म-संपदा को सुरक्षित रखने वाला लाइफ इन्श्योरेंस है।
9. यह क्रूर प्रवृत्तियों को भीतर प्रविष्ट होने से रोकने वाली लक्ष्मण रेखा है।
10. यह चेतन शक्ति का ज्ञान कराने वाली सूक्ष्म मंत्र-शक्ति है।
11. यह तनाव-मुक्ति का समाधान है।
12. यह वह पराध्वनि है, जो भीतर, बाहर के दूषण/प्रदूषण को निष्क्रिय करती है, समाप्त करती है।
13. यह आत्मसाक्षात् कराने वाली परम ज्योति और विघ्नहर्ता मंत्र है।

संक्षेप में कहा जाये तो ॐ का अर्थ है – सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, सर्वगतिदाता, सर्वज्ञ, प्रकाशक, पापविनाशक, तृप्ति कारक, शक्तिमान, न्यायकारी, वृद्धि, पुष्टि, सुगन्ध देने वाला, सत्, चित्त, आनंद इत्यादि।

सिद्ध मंत्र

जैन और वैदिक – दोनों परम्पराओं के अनुसार अ, उ और म् – इन तीन वर्णों के संयोग से ओंकार बनता है। मान्यता अन्तर इस प्रकार है –

वर्ण	जैन परम्परा	वैदिक परम्परा
अ	सम्यक् ज्ञान का प्रतीक	रजोगुणी, पीत वर्ण वाला, ब्रह्म का वाचक
उ	सम्यक् दर्शन का प्रतीक	सतोगुणी, श्वेत वर्ण वाला, विष्णु का वाचक
म्	सम्यक् चारित्र का प्रतीक	तमोगुणी, कृष्ण वर्ण वाला, शिव का वाचक

ॐ के जप से निःसृत तरंगों से तन व मन तरंगित होकर शक्तियों व सिद्धियों को प्राप्त होता है। रासायनिक घटकों का निर्माण भी इन रासायनिक तरंगों के माध्यम से होता है, जिससे चेतन शक्ति जागृत होती है। जीवन-तंत्र के परिचालन में ऊर्जा की प्रमुख आवश्यकता है। ॐ ऊर्जा प्रदान करने वाला सर्व-सिद्ध मंत्र है। मांडूक्य उपनिषद् में ॐ को निर्भय पद बताते हुए कहा है –

युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥

अर्थात् चित्त को ॐ में समाहित करो। ॐ निर्भय ब्रह्मपदं है। ॐ में नित्य समाहित रहने वाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता।

ॐ परमात्मा का वाचक

ॐ तीन लोक का प्रतीक है–

अ–अधोलोक उ–उर्ध्वलोक म–मध्यलोक।

ॐ त्रिपदी का प्रतीक है–

अ–अक्षर (ध्रौव्य) उ–उत्पाद म–मरण (व्यय)

ॐ के चार रूप–उ ◌ँ ◌ँ · चेतना के चार स्तर के प्रतीक–ये चारों रूप स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम चेतना के इन चारों स्तरों को इंगित करते हैं, जिसको निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. बहिरात्मा–स्थूल चेतना–निगोद के जीवों की चेतना में मूर्च्छा ज्यादा व चेतना की जागृति कम होती है।

2. जागृतात्मा–सूक्ष्म चेतना–अन्य जीवों की अपेक्षा कुछ कम विकास होता है, जैसे–बेइन्द्रिय आदि जीव।

3. अन्तरात्मा–सूक्ष्मतर चेतना–शांत वृत्तियां, विचारों में पवित्रता एवं मानवीय गुणों के विकास में वृद्धि होने लगती है।

4. परमात्मा–सूक्ष्मतम चेतना–परमात्मा भाव का विकास।

इस प्रकार स्थूल से सूक्ष्मतम की यात्रा का प्रतीक मंत्र है–ॐ। इस मंत्र की आराधना के द्वारा देह से देहातीत हो सकते हैं। यह हमारी चेतना के अन्त:स्थल में केन्द्रित हैं क्योंकि 'ॐ' परमात्मा का वाचक है। और परमात्मा का साम्राज्य हमारे भीतर है। हम अपने भीतर इसकी अनुगूंज को सुन सकते हैं, जितने हम विचारों से शांत होकर बैठेंगे, इसकी अनुगूंज अनहद नाद के रूप में उतनी ही साफ सुनाई देगी। परम शांति में ही परम अस्तित्व रहता है।

ॐ ध्वनि विज्ञान की पराकाष्ठा

तंत्र शास्त्र के अनुसार ॐ में लिपि के छ: तत्त्व हैं–)) ◌ँ – ◌ँ ·। इन छ: तत्त्वों से सम्पूर्ण वर्णमाला का निर्माण होता है। ॐ व्यक्ति की मूल ध्वनि है। ध्वनि के गर्भ में ॐ है, ध्वनि का जनक ॐ है। ॐ से ही ध्वनि है। ध्वनि के पार ॐ है, ॐ ही पराध्वनि है। ॐ ध्वनि विज्ञान की पराध्वनि है। ॐ में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भाषा के तीनों स्तर समाये हुए हैं। त्रैलोक्य की समस्त दिव्यताएं ॐ में समाविष्ट हैं। हर दिव्यता ॐ से ही प्रकट होती है। यह ब्रह्म बीज है, मंत्रों का मंत्र है, शांति और शक्ति का पुञ्ज है। तिब्बती बौद्ध लामा किसी धातु के मटके

जैसे बर्तन में एक विशेष प्रकार का डण्डा इस प्रकार घुमाते हैं कि उससे उनके प्रसिद्ध मंत्र ''ओम् मणिपद्मेहुम'' की ध्वनि बड़ी देर तक गूंजती रहती है। तिब्बत के बौद्ध भिक्षु जो तिब्बत के पहाड़ों में रहते थे वे अपने इस मंत्र का इस तरीके से रटन करते थे मानो ओवरलोपिंग हो रहा हो। एक अंश भर भी संधि नहीं छोड़ते। एक मंत्र से दूसरे मंत्र में प्रवेश करने के लिए इतनी रफ्तार के साथ उच्चारण करते कि वहां उन्हें पसीना चूने लगता। इस प्रकार एक ही ध्वनि का विराम रहित उच्चारण करने से ताप पैदा होता है जो न केवल सर्दी को ही भगाता है अपितु स्वस्थ चेतना को भी जगाता है, विकसित करता है।

ॐ मनोवैज्ञानिक ध्वन्यात्मक चिकित्सा है। ॐ को यदि हम प्रखरता के साथ आत्मसात् होने दे तो जैसे शरीर से पसीना बाहर निकल आता है, वैसे रोग भी शरीर से दूर हो जाते हैं। शरीर को संयमित रखना और संयमित आहार करना ॐ की व्याधिमुक्त प्रक्रिया को और अधिक बल देता है। ॐ में स्थिर रहने वाला स्वास्थ्य लाभ और अप्रमत्तता तो क्या स्थितप्रज्ञता को भी उपलब्ध कर लेता है।

ॐ आकृति में भरे रहस्य

ॐ केवल शब्द नहीं है, शब्द के रूप में उसे लिखा भी नहीं जाता। ॐ तो चित्र है। निःशब्द की यात्रा में शब्द छूट जाता है और चित्र ऊभर आता है। यही कारण है ओम् न लिखकर ॐ लिखते हैं। भारत से बाहर जाने पर ॐ की आकृति और उच्चारण में क्रमशः अन्तर आ गया। जितने धर्मों ने परम सत्तावान परमेश्वर को स्वीकृत किया है, उन्होंने ॐ को इस शक्ति तक पहुँचाने की कुंजी माना है। जैसलमेर के प्राच्य भण्डारों में ॐ के विभिन्न रूपों के कई चित्र उपलब्ध हैं।

ॐ की आकृति पर भी यदि गहराई से ध्यान दिया जाये तो हर व्यक्ति शुभ अवस्था और मंगल कार्यों के लिए ''श्री गणेशाय नमः'' लिखता है। ॐ की आकृति स्वयं में ही गणेश के रूप को लिये हुए है। इस्लाम धर्म में ॐ के अ को अल्लाह का प्रतीक म् मुहम्मद का प्रतीक और उ के ऊपर ॅ आधा चाँद इस्लाम धर्म का प्रतीक माना गया है। इस्लाम धर्म में आधे चाँद की बड़ी इबादत है, इज्जत है, इसलिए चाहे ईद हो या रोजा बिना चन्द्रमा के कुछ भी नहीं होता। ॐ के ऊपर की चन्द्र बिन्दी उनके धर्म में अर्द्धचन्द्र और तारे के रूप में मान्य और प्रतिष्ठित है।

क्रिस्चयनिटी में क्रास की जो मान्यता है, वह स्वस्तिक चिह्न का बचा हुआ रूप है, यही ॐ की प्रथम आकृति भी है। स्वस्तिक गति का प्रतीक है।

जैन धर्म ने तो निर्वाणधाम का रूप भी अर्द्धचन्द्राकार माना है। वहां उसे सिद्धशिला कहा जाता है। जैन लिपि में ॐ की आकृति में जो पांच आकृतियां अंकित हैं, वे परमेष्ठी के पांच स्थानों की प्रतीक बताई गई हैं।[2] यथा–ॐ

1. चन्द्रकला के ऊपर की आकृति यह सिद्ध का स्थान है। सिद्धशिला संसार से ऊपर है। सिद्ध जगत् के सर्वोच्च स्थान में और परम शून्य में विलीन हुए हैं।

2. चन्द्रकला गत आकृति यह अरिहंत का स्थान है। अर्हत् जगत् से अलिप्त ऐसे अर्द्ध आध्यात्मिक आकाश में विराजमान होकर अपने आध्यात्मिक तेज से लोकालोक को प्रकाशित करते हैं और ज्ञानामृत की शीतल किरणों द्वारा उत्पन्न आत्माओं के अंतर ताप को शांत करते हैं।

3. चन्द्रकलागत आकृति के नीचे की आकृति आचार्य का स्थान है। सदाचार के उपदेष्टा आचार्य तत्त्वज्ञानी जनता के अग्रभाग में विराजमान होकर अपने आदर्श, आचार-विचारों से जनता को सन्मार्ग पर लगाते हैं।

4. मध्यगत रेखा की आकृति उपाध्याय के स्थान का प्रतीक हे। सम्यक् ज्ञान के अध्यापक उपाध्याय निष्काम मन से अपने ज्ञान का अक्षयदान देते हैं।

5. निम्न रेखागत आकृति साधु का स्थान बतलाती है। स्व-पर कल्याण की साधना में तल्लीन साधु जगत् को नीचे से ऊपर चढ़ने के लिए प्रेरणा और बल प्रदान करते हैं।

ऐसा इन पांचों स्थानों का सूक्ष्म रहस्य है। इन स्थानों का दूसरा क्रम अन्य प्रकार से भी कहा जा सकता है। सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाला मुमुक्षु आत्मा किस क्रम से उत्क्रांति के सोपान पर आरूढ़ होकर उच्च पद प्राप्त करता जाता है। इसका भी इस ओंकार की आकृति में सूक्ष्म सूचन रहा हुआ है। जैसे–साधु, उपाध्याय, आचार्य, अर्हत् और सिद्धत्व की प्राप्ति। इस प्रकार पंच-परमेष्ठी पद के आध्यात्मिक विकास क्रम का जो विचार तत्त्व गर्भित रूप में रहा हुआ है, वह इस ओंकार की आकृति में सूचित किया गया है।

जहां यह ॐ त्रिदेव का पर्याय है, वहां आदिनाथ भगवान के अ और भगवान महावीर के म से भी अन्तर्गुंफित है। इसी आभा से ऐसा प्रकट होता है कि जैन धर्म के चौबीस अर्हत् इसमें समाविष्ट हैं। इसके अतिरिक्त लोगस्स की प्रतिछाया, प्रतिध्वनि इस ॐ में प्राण-प्रतिष्ठित होकर महामंत्र के उच्च शिखर पर आनंद, शक्ति और कल्याण की गंगोत्री बनकर जगत् के सारे ताप-पाप-संताप का हरण करती है। इस प्रकार ॐ परम सत्ता से अभिन्न है।

अ प्रथम स्वर है, अ से अल्लाह, अ से आदिनाथ और अ से अरिहंत होता है। अ के बिना हिन्दी भाषा का कोई मूल्य ही नहीं रहता। अ मूल स्वर है। उ स्वर उर्ध्वगामी होता है। उ नाभि से उपजता है। ज्ञान का प्रतीक उपाध्याय शब्द उ का विस्तार है। उ का काम है मानसिक वेदना और व्यथा को व्यक्ति से अलग करना। सम्पूर्ण ॐ में उ ही ऐसा वर्ण है, जिसके उच्चारण से शरीर के सारे अवयव प्रभावित और स्पन्दित होते हैं। यदि कोई व्यक्ति मानसिक तनाव से घिर जाये तो उससे मुक्ति पाने के लिए उ का उच्च स्वर में उच्चारण करें। उ को इस प्रकार उच्चारित करें मानो सिंहनाद कर रहा हो। यह प्रयोग व्यक्ति को आश्चर्यचकित कर डालेगा। उसका शरीर पसीना-पसीना होने लगेगा। जब ''उऽ'', ''उऽ'' करते-करते थक कर चूर हो जाये तो शांत हो जाये। तब पहले दस मिनट बोले, अगले दस मिनट गहरी शांति का अनुभव करे। उ का यह वेदनामुक्ति हेतु किया जाने वाला मंत्र-योग है।

ॐ का अंतिम वर्ण म् है। म् व्यंजन वर्ण का आखिरी सोपान है। जो अ से चालू हुआ उ की ऊँचाइयों को छूता हुआ म तक पहुँचा। म का अर्थ है– मंजिल। म से ही मौन विकसित होता है। म से ही मुनित्व का विकास हुआ है। म से ही मन बना है। म से ही मनु, मन और मनुष्य का संबंध है। इस प्रकार अ से म तक की यात्रा ॐ की यात्रा है और ॐ की यात्रा परमात्मा की यात्रा है इसलिए वह परमात्मा से अलग नहीं हो सकता। जो अलग नहीं होते वे ही विराट बनते हैं। विराट होने का तात्पर्य अर्हत् से है। अर्हत् सार्वभौम सत्य के प्रतीक होते हैं।

ॐ के विविध प्रयोग

1. ॐ का ध्यान

इसे चार चरणों में पूरा किया जाता है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण दस-दस मिनट के और चतुर्थ चरण पन्द्रह मिनट का।

पहले चरण में ॐ का दीर्घ उच्चारण उच्च आवाज में करें। दूसरे चरण में होठों को बंद कर लें। दांत खुले रहें और मुँह के भीतर भ्रमर की तरह उसकी अनुगूंज करें। तीसरे चरण में मानसिक जप श्वास के साथ इतनी तल्लीनता से करें कि श्वास ही ॐ बन जाये। चौथे चरण में बिल्कुल शांत, निर्विचार अवस्था का अनुभव करें। मात्र ॐ के स्वरूप व ॐ की चेतना में स्वयं को व्याप्त होने दें।

पहला चरण पाठ है, दूसरा चरण जप है, तीसरा चरण अजपाजप है और चौथा चरण अनाहत है। इन शांति के क्षणों में आत्मानंद की अनुभूति होने लगती है।

2. ॐ का जप

एक श्वास में जितनी बार ॐ का उच्चारण कर सकें, करें–दस मिनट तत्पश्चात् पांच मिनट चन्द्र स्वर में मानसिक रूप से ॐ का जप करें। यह प्रयोग तनाव मुक्ति और मानसिक शांति को बढ़ाने वाला है।

विविध प्रसंगों में ॐ का जप विधि सहित करने के अनेकों प्रयोग उपलब्ध हैं–

1. तनाव मुक्ति, मन की स्थिरता और कलह निवारण के लिए ज्ञान-केन्द्र (मस्तक) पर श्वेत रंग की धारणा के साथ ॐ का जप करें।[3]

2. स्मृति विकास, ज्ञान-तंतुओं की सक्रियता के लिए ज्ञान-केन्द्र पर पीले रंग की धारणा के साथ ॐ का जप करें।[4]

3. शक्ति वृद्धि और अनिष्ट निवारण हेतु दर्शन-केन्द्र (भृकुटी-मध्य) पर अरुण रंग की धारणा के साथ ॐ का जप करें।[5]

4. पारिवारिक सामंजस्य और मैत्री के लिए आनन्द-केन्द्र (सीने के मध्य) पर हरे रंग की धारणा के साथ ॐ का जप करें।[6]

5. वज्रासन की मुद्रा में लयबद्ध पांच मिनट दीर्घश्वास का प्रयोग करने के पश्चात् 20 मिनट ॐ का लयबद्ध उच्चारण करने से रक्तचाप का संतुलन तथा मिरगी के रोग में लाभ होता है।[7]

6. ॐ ऐं ॐ नमः–इस कार्यसिद्धि मंत्र को प्रतिदिन नौ बार बोलें। घर से बाहर निकलते हुए उच्चारण करने से जिस कार्य के लिए घर से प्रस्थान किया है, उस कार्य की पूर्ति होती है।[8]

7. ॐ क्षौं ॐ क्षीं ॐ क्षं ॐ क्षः स्वाहा। इस मंत्र की प्रतिदिन एक माला जपने से सर्व कार्य में सिद्धि प्राप्त होती है।[9]

8. क्षिप् ॐ स्वाहा। शरीर पर हरे रंग का ध्यान करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करने से अथवा माला जपने से त्वचा के रोग (चर्म रोग) नष्ट हो जाते हैं। मानसिक प्रसन्नता बढ़ती है।[10]

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने "तुम स्वस्थ रह सकते हो" पुस्तक में ॐ की विविध विधियों का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा अनेक व्याधियों का संतुलन संभव है, जैसे–उच्च रक्तचाप (पृ. 47), निम्न रक्तचाप (पृ. 48), सिरदर्द (पृ. 48), ज्वर (पृ. 60), चर्म रोग (पृ. 51) आदि।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ॐ कल्पातीत, अर्थातीत और व्याख्यातीत है। यह हमारी अध्यात्म यात्रा का सार्वभौम प्रतीक है। इसमें परमात्मा का स्वरूप, पंच परमेष्ठी का निवास है। यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश का संगम है। यह परम मंगल मंत्र है। अध्यात्म शक्तियों का स्रोत है। अनंत रहस्यों का भण्डार है। सब विघ्न बाधाओं तथा आपत्तियों से बचाने वाला यह ॐ मंत्र कवच निर्माण का कार्य करता है। साधक इस प्रशस्त और आध्यात्मिक मंत्र की आराधना से अपना तेजस्वी तथा अलौकिक आभामंडल निर्मित कर सकता है। ॐ की यात्रा में अनंत शक्ति का स्रोत प्रस्फुटित होने लगता है, जिसका चुम्बकीय आकर्षण हमें जोड़कर रखता है और ज्ञान का अगाध कोष कैवल्य एक दिन प्रकट हो जाता है।

सन्दर्भ –

1. नमस्कार चिंतामणि, पृ. 16

2. यंत्र-मंत्र-तंत्र विज्ञान, प्रथम भाग, पृ. 96, 97

3-6. उपासना कक्ष, पृ. 16

7. तुम स्वस्थ रह सकते हो, पृ. 40

8. मंत्र : एक समाधान, पृ. 130

9. वही, पृ. 140

10. वही, पृ. 330.

12. अर्हत् का बीजमंत्र–अर्हं

ॐ की तरह अर्हं मंत्र भी परमसत्ता व परमेष्ठी का वाचक है। योग शास्त्र में इसी तथ्य की पुष्टि निम्न प्रकार से वर्णित है–

अकारादि–हकारन्तं रेफ मध्ये सबिन्दुकम्।
तदेव परमं तत्त्वं यो जानाति स तत्त्ववित्॥
महातत्त्वमिदं योगी यदैव ध्यायति स्थिरः।
तदैवानंदसम्पद्भूर्मुक्ति श्री रूपतिष्ठते॥ [1]

अर्थात् 'अ' जिसकी आदि में है और 'ह' जिसके अन्त में है तथा चन्द्रबिन्दु सहित 'रेफ' जिसके मध्य में है। ऐसा जो अर्हं मंत्र पद है, उसे जो जानता है, वह यथार्थ तत्त्वज्ञ है। इस महातत्त्व का जब योगी स्थिर होकर ध्यान करता है तब आनन्द स्वरूप सम्पत्ति की भूमि जैसी मोक्ष विभूति उसके आगे आकर खड़ी रहती है।

मंत्राधिराज

अर्हं मंत्र पदों में दूसरा पद है। मंत्र पदों में राजा समान होने से इसे मंत्राधिराज कहा जाता है। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र आचार्य ने अपनी प्रत्येक कृति में, ग्रंथ में आद्य मंगल के रूप में इस पद्य का स्मरण किया है तथा सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक अपने सर्वप्रधान ग्रंथ में तो इस मंत्राक्षर को व्याकरणशास्त्र के खास आद्य सूत्र के स्थान में गूंथन कर दिया है और इसकी व्याख्या करके इस मंत्र के महत्त्व को समझाया है–अर्हमित्येतदक्षरं परमेश्वरस्य परमेष्ठिनो वाचकं सिद्धचक्रस्यादि बीजं सकलागमोपनिषद् मूलमशेषविघ्न-निघातनिघ्रमखिलदृष्टादृष्टफलसंकल्पद्रुमोपमं शास्त्राध्ययनाध्यावधि प्रणियेयम्॥ [2] तात्पर्य यह हुआ अर्हं यह अक्षर परमेश्वर स्वरूप परमेष्ठी का वाचक है। सिद्ध-चक्र का आदि-बीज है। सकल आगमों, सर्वशास्त्रों का रहस्यभूत है। सर्वविघ्न समूहों का नाश करने वाला है और सर्वदृष्ट ऐसे राज्य सुखादि तथा स्वर्गसुखादि फल उन्हें देने के लिए संकल्प करने वालों के लिए कल्पद्रुम समान है।

सकल आगमों सर्वशास्त्रों का रहस्यभूत कैसे?

अर्हं को सकल आगमों एवं सर्वशास्त्रों का रहस्यभूत बताने का कारण स्पष्ट करते हुए न्यासकार ने लिखा है–"अर्हं इस पद में जैसे परमेष्ठी के परम तत्त्व

का समावेश है, वैसे ब्रह्मा, विष्णु और हर-शिव का स्वरूप भी इस अक्षर में अन्तर्निहित है क्योंकि इस पद में जो अ, र, ह–ये तीन अक्षर हैं, वे क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और हर के वाचक हैं, ऐसा योगी मानते हैं, जैसा कि कहा गया है–

अकारेणोच्यते विष्णु रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः।
हकारेण हरः प्रोक्तस्तदन्तो परमं पदम्॥

इस पद के शब्द के अन्त में चन्द्रबिन्दु ऐसी चन्द्रकला है, यह परम पद सिद्धशिला की सूचक है। इस प्रकार अर्हं शब्द विष्णु आदि लौकिक देवों का अभिधायक होने से सकल आगमों अर्थात् सर्वधर्मों के सिद्धान्तों का रहस्यभूत है, ऐसा कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अर्हं इस पद की महिमा और अर्थ बहुत गूढ़ है।''

महापथ के पथिक आचार्यश्री तुलसी ने इसी जिज्ञासा के समाधान में लिखा है– **'अ' इमरतमय कोष है, 'र' तेजोमय स्पष्ट।**
प्राण शक्ति का केन्द्र 'ह', बिन्दु हरे सब कष्ट॥[3]

'अ' अमृत से भरा हुआ अक्षर भंडार है। 'र' तेज को प्रकट करता है। 'ह' प्राण-शक्ति का स्रोत है। बिन्दु अनुपम शक्ति प्रदाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अर्हं में 'अकार' अमृतमय और सुखमय है। स्फुटायमान 'हकार' रत्नत्रय को संकलित करने वाला है। 'मकार' मोह कर्म समूह का नाश करने वाला है। अन्य दृष्टि से अवलोकन करने पर 'अ' वर्णमाला का आदि अक्षर है तथा 'ह' अंतिम अक्षर है। समस्त ज्ञान अ और ह में समाहित है। 'र' का उच्चारण ऊर्जा का प्रतीक है, परमशून्य/आत्मा का वाचक है।

सर्वसिद्धिदायक मंत्र

सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली होने से यह एक शक्तिशाली मंत्र है। अर्हत् का बीजमंत्र होने से यह भगवान महावीर का प्रतीक मंत्र है। हमारे अस्तित्व की स्मृति एवं अर्हता का बोध कराने वाला मंत्र होने से यह हमारा इष्टमंत्र है। सर्वसिद्धिदायक इस मंत्र के ध्यान से विग्रह तथा कषाय शांत होते हैं। मानसिक तनाव को दूर कर स्वाभाविक आनन्द को जागृत करने वाला यह मंत्र हमारे भीतर निहित शक्तियों को, प्राण ऊर्जा को सक्रियता देता है तथा चैतन्य-केन्द्रों को जागृत करता है।

मंत्र रचना की दृष्टि से अर्हं के अंतरंग एवं बाह्य दो रूप बनते हैं। अन्तरंग रचना–परम सत्ता परमेश्वर के अनंत चतुष्टय–ज्ञान, श्रद्धा, शक्ति और आनन्द का प्रतीक है।

बाह्य रचना–बाह्याकार मंत्र अर्हं में पांच उच्चारण स्थितियां हैं–अ र् ह म् और नाद।

इसमें 'अ' कुंडलिनी (तैजस शक्ति) का स्वरूप है। 'र' अग्निबीज है। इससे बुरे संस्कार तथा बुरे भाव नष्ट होते हैं। 'ह' आकाश बीज है, इससे चिदाकाश का अनुभव बढ़ता है। 'म्' एक झंकार है, इससे ज्ञानतंतु सक्रिय बनते हैं।

मंत्र शास्त्रीय दृष्टि से 'र' और 'ह' का योग होने से यह मंत्र अत्यधिक शक्तिसम्पन्न है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी की दृष्टि में अर्हं के 'ह' का स्वरूप–अर्हं इस मंत्र के जप में 'ह' का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पांचों तत्त्वों में अंतिम तत्त्व है–आकाश। उसका बीजमंत्र है–'ह'। योग-विद्या के अनुसार अन्य वर्ण शरीर के नियत भाग को प्रभावित करते हैं परन्तु 'ह' का उच्चारण सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करता है। आकाश तत्त्व का स्थान कण्ठ है। वहीं चयापचय की क्रिया का स्थान है। जैसे चयापचय की क्रिया का पूरे शरीर से संबंध है, वैसे ही 'हकार' के उच्चारण का पूरे शरीर से संबंध है।[4]

शब्द का उच्चारण ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म और परम सूक्ष्म–इन छः प्रकारों से होता है। मंत्रविद् आचार्यों ने बताया है कि शब्द का ह्रस्व उच्चारण पाप का नाश करता है। दीर्घ उच्चारण लक्ष्मी की वृद्धि, स्त्री की प्राप्ति करता है। प्लुत उच्चारण ज्ञान की वृद्धि करता है। तीन उच्चारण और हैं–सूक्ष्म, अति सूक्ष्म और परम सूक्ष्म। ये समाप्ति करते हैं, ध्येय के साथ व्यक्ति का योग कर देते हैं।[5] 'अर्हं' के इन छः उच्चारणों में क्रमशः प्रगति करते हुए परम सूक्ष्म में आकर हमें लगता है कि हम पहुँच गये हैं। अर्हत् का अनुभव करने लगे हैं। इस प्रकार यह अर्हं मंत्र सब सिद्धियों को देने वाला अर्थात् सर्वसिद्धिदायक मंत्र है।

अर्हं शब्दोच्चारण की मीमांसा : सन्दर्भ प्रेक्षाध्यान

अर्हं प्रेक्षाध्यान का प्रमुख जप मंत्र अथवा प्रतीक मंत्र है। इससे ध्यान की शुद्धि होती है–'एतेनाद्भुत मंत्रेण ध्यान शुद्धिः परम भवेत्'। नासाग्र पर इसका ध्यान करना अत्यन्त उपयोगी है। आनन्द-केन्द्र पर ज्योतिर्मय अर्हं का ध्यान करने से शक्ति और शांति का जागरण होता है। आनन्द-केन्द्र पर सूर्य जैसे तेजस्वी अर्हं का ध्यान करने से स्थाई आनन्द का अनुभव तथा अर्हं की अभिव्यक्ति विकसित होती है। मेरुदण्ड पर इसका ध्यान करने से समस्त श्रुतार्थ का प्रवक्ता बनने की योग्यता जागृत होती है।[6] वज्रासन की मुद्रा में पांच मिनट दीर्घश्वास

कर बीस मिनट अर्हं का लयबद्ध उच्चारण करने से सब रोगों का शमन होता है।[7] नाभिगत स्वर्ण कमल के मध्य अर्हं की कल्पना करें। फिर वह अर्हं आकाश में सभी दिशाओं में संचरण कर रहा है, ऐसा चिंतन करें। अर्हं ध्यान का यह प्रयोग अहं विलय का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

''ॐ अर्हं'' संयुक्त रूप से भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसके उच्चारण में अत्यन्त ध्वनि नाभि के आस-पास से उठनी चाहिए। व्यक्त ध्वनि उच्चारण का स्थान निम्न रूप से रहे–

अ–कण्ठ	र–मूर्धा (सिर का अग्र भाग)
ह–कण्ठ	म–ओष्ठ।

प्रेक्षाध्यान के अभ्यास काल में सबसे पहले अंर्हं की मंगल ध्वनि उच्चारित की जाती है। इसके पीछे यही उद्देश्य है कि हम अपने समस्त आकर्षण को अर्हं के प्रति प्रवाहित कर दें। हम सर्वात्मना अर्हं के प्रति समर्पित हो जाये और अपनी सारी श्रद्धा उसमें अन्तर्निहित कर दें। सारा वातावरण उस ध्वनि से तरंगित होकर विद्युत्मय बन जाता है! अर्हं की यह ध्वनि वातावरण में विशिष्ट तरंगें उत्पन्न करती है, जिससे सहज ही बाह्य वातावरण के साथ-साथ अंतरंग शक्ति का अभूतपूर्व विकास होता है।

प्रेक्षाध्यान की परिसमाप्ति पर भी अर्हं के प्रति समर्पण व कृतज्ञता का भाव ज्ञापित करते हुए हम कहते हैं–अरहंते सरणं पवज्ञामि..........केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्ञामि। इसका तात्पर्य है–महान सत्य के प्रति समर्पण। क्योंकि अर्हत्, सिद्ध, धर्म कोई व्यक्ति नहीं आत्मा की पवित्र अवस्थाएं हैं। इस प्रकार जब महान के प्रति समर्पण हो जाता है तब पराजित होने का कोई कारण शेष नहीं बचता। इसकी मांगलिकता में कोई संदेहावकाश नहीं है। इस सत्य को सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण अथवा साक्षी की अपेक्षा नहीं यह तो पुष्प में पराग, सूर्य में प्रकाश और पयस में सफेदी की भांति स्वत:सिद्ध है।

इसके अतिरिक्त जब हम अर्हं के 'अ' का उच्चारण करते हैं, तो विद्युतीय-केन्द्र सक्रिय बनते हैं। अ वर्ण कण्ठस्थानी होने से इसका स्थान थाइराइड है, यह चयापचय के लिए उत्तरदायी है। इसका पाचन-तंत्र और स्वास्थ्य के साथ गहरा संबंध है। पाचन तंत्र का संबंध हमारी वृत्तियों के साथ जुड़ा हुआ है। पाचन की अस्वस्थता अपान वायु को दूषित करती है। जिसका अपान दूषित होता है, उसमें नकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक सोच, नकारात्मक कल्पना, अनिष्ट

भावना, आत्महत्या की भावना आदि दूषित भाव उत्पन्न होते हैं। दूषित अपान के कारण मस्तिष्क निर्मल नहीं रह सकता। इस प्रकार कण्ठ से होने वाले स्राव का प्रभाव शरीर, मन और मस्तिष्क पर होता है। कण्ठ के स्थान पर स्थित चैतन्यकेन्द्र विशुद्धि-केन्द्र कहलाता है। इस केन्द्र की जागृति का शारीरिक लाभ है–वृद्धत्व को रोकना और आध्यात्मिक लाभ है–वृत्तियों का परिमार्जन, वैराग्य, अनासक्त चेतना का विकास।

ज्योतिष शास्त्रानुसार भी कण्ठ चन्द्रमा का स्थान है। मन का स्थान है। अत: बहुत महत्त्वपूर्ण है मस्तिष्क को निर्मल रखना तथा इसकी शक्ति का विकास करना। अर्हं में अ का लयबद्ध उच्चारण कण्ठ की स्वस्थता के साथ-साथ पाचन-तंत्र, मन व मस्तिष्क को स्वस्थ व निर्मल बनाता है।

'ई' का प्रभाव मस्तिष्क के अगले भाग–शांति-केन्द्र पर होता है। शरीरशास्त्र की दृष्टि से यह हाइपोथेलेमस का स्थान है। यह महत्त्वपूर्ण चेतना-केन्द्र तथा भावनाओं का स्रोत है। यह सूक्ष्म और स्थूल शरीर का केन्द्र बिन्दु है।

बीजाक्षरों में अनुस्वार तथा अनुनासिक संकेत लगाये जाते हैं, उन्हें नाद कहते हैं। नाद के द्वारा अप्रकट शक्ति को प्रकट किया जाता है। म् (नाद) के उच्चारण से होठ प्रभावित होते हैं। होठ उदान प्राण का केन्द्र हैं। उदान एक प्राण शक्ति है। इसे सिद्धि शक्ति भी माना जाता है। उदान जागृत होने से सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

वर्ण की दृष्टि से समीक्षा करने पर अर्हं का प्रथमाक्षर 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ, अभय के विकास हेतु इसका ध्यान अत्यन्त उपयोगी है। दूसरा वर्ण 'र' है। इसका आश्रय स्थान मूर्धा है। तैजस विकास के लिए इसका ध्यान उपयोगी है। तीसरा वर्ण 'ह' है। यह विशुद्धि केन्द्र से संबंधित है। 'ह' महाप्राण वर्ण कहलाता है। वृत्ति परिष्कार हेतु इसका ध्यान किया जाता है। 'अर्हं' बिन्दु से संयुक्त है, इसका संबंध नासिका और मस्तिष्क दोनों से है। मस्तिष्कीय विकास के लिए यह उपयोगी है।

इस प्रकार अर्हं मंत्र की हमारी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक शक्तियों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

अर्हं योग का प्रयोग

अर्हं योग का प्रारम्भ करने के लिए तीन बार दीर्घ अर्हं ध्वनि से अर्हं को दोनों घुटनों के बल पर बैठकर बद्धांजली वंदना की जाती है।

अर्हं ध्वनि के प्रारंभ का दूसरा प्रकार सुखासन, पद्मासन में आँखें मूंद कर किया जाता है। अर्हं की दीर्घध्वनि के साथ शक्ति-केन्द्र की शक्ति को शक्ति-केन्द्र से ऊपर विशुद्धि-केन्द्र की ओर संकल्प से प्रेषित करना चाहिए। शक्ति-केन्द्र शरीर का आधार-केन्द्र है। इसकी जितनी सक्रियता होती है, उससे व्यक्ति अपने-आपको शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता। मैं शरीर हूँ, यही उसे प्रतिक्षण अनुभूति होती रहती है। विशुद्धि-केन्द्र कला का केन्द्र है। चातुर्य एवं विद्या का केन्द्र है। शक्ति-केन्द्र की शक्ति विशुद्धि-केन्द्र में रूपान्तरित हो व्यक्ति को कलावान बनाती है। प्रारम्भ में पांच बार अर्हं की ध्वनि करते हुए शक्ति-केन्द्र की शक्ति विशुद्धि-केन्द्र पर रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया जाता है।

दूसरी पारी में तैजस-केन्द्र पर अपना ध्यान केन्द्रित कर अर्हं की उसी प्रकार दीर्घ ध्वनि करते हुए शक्ति को आनन्द-केन्द्र पर रूपान्तरित किया जाता है, जिससे आवेग, करुणा आदि भावनाओं में रूपान्तरित हो जाता है।

तीसरी पारी में आनन्द-केन्द्र से पांच बार अर्हं की ध्वनि करते हुए दर्शन-केन्द्र में शक्ति को रूपान्तरित किया जाता है। आनन्द-केन्द्र की करुणा शक्ति को दर्शन-केन्द्र पर ले जाने से आज्ञा और आदेश से सहज करुणा स्फुरित हो जाती है।

चौथी पारी में दर्शन-केन्द्र से ज्ञान-केन्द्र पर अर्हं की ध्वनि से शक्ति को रूपान्तरित किया जाता है। दर्शन-केन्द्र की शक्ति ज्ञान-केन्द्र पर रूपान्तरित होने से पूर्ण आनन्द एवं समत्व का विकास होता है।

अन्त में नाभि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए शक्ति को ऊपर ज्ञान-केन्द्र की ओर प्रवाहित करते हुए अर्हं की ध्वनि की जाती है।*

अर्हं मंत्र की लय

मंत्र शास्त्र की दृष्टि से शब्द या अर्थ के साथ एक विशेष लय या ध्वनि महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखती है। जो साधक एक निश्चित लय के साथ मंत्र का उच्चारण करता है, वह निश्चित ही सफलता प्राप्त कर लेता है।

अर्हं का स्थूल प्रयोग दीर्घ ध्वनि से किया जाता है। मंत्रशास्त्र की दृष्टि से अर्हं ध्वनि के उच्चारण में सात मात्रा का समय लगना चाहिए। इसमें भी प्रत्येक अक्षर के साथ मात्रा की संयोजना इस प्रकार की जा सकती है–

अ र्	–	1 मात्रा	ह्रस्व उच्चारण
ह्	–	2 मात्रा	दीर्घ उच्चारण
म्	–	3 मात्रा	प्लुत उच्चारण
बिन्दु	–	$^1/_2$ (अर्द्ध) मात्रा	उच्चारण के बाद टंकार व झंकार जैसा उच्चारण।
नाद	–	$^1/_2$ (अर्द्ध) मात्रा	झंकार के बाद की सूक्ष्म ध्वनि।
कुल	–	7 मात्रा।	

सूक्ष्म उच्चारण में यही स्थितियां होती हैं। केवल उच्चारण की ध्वनि अन्तर में सूक्ष्म होती हुई अल्प-सी अभिव्यक्त होकर बाहर निकलती है।

अति सूक्ष्म ध्वनि केवल मानसिक व भावनात्मक होती है। वह अन्तर ग्रंथियों का भेदन करने में अत्यन्त शक्तिशाली होती है।

सुरक्षा कवच

तैजस-केन्द्र में सुनहले रंग के कमल के मध्य अर्हं की कल्पना करें। फिर अनुभव करें—उसकी रश्मियां शरीर के चारों ओर फैल रही हैं। पूरे शरीर के चारों ओर एक कवच बन रहा है। नौ बार उस कवच का अनुभव करें। अनुभव करें कोई भी अनिष्ट शक्ति इसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकेंगी। यह आध्यात्मिक कवच बाह्य दुष्प्रभावों से बचाने में बहुत सक्षम है। साधना का रहस्य है—अर्हं के प्रति प्रणति।[10]

अर्हं संपृक्त अर्हत् के एक हजार आठ नाम

णमोकार ग्रंथ में—णमो अरहंताणं, श्री अर्हत् भगवान को एक हजार आठ गुण निष्पन्न नामों से सविनय नमस्कार किया गया है, वहां प्रत्येक नमस्कार में ''ॐ ह्रीं अर्हं'' जो महामंत्र से निःसृत बीजमंत्र हैं, का प्रयोग किया गया है। जैसे—ॐ ह्रीं अर्हं शम्भुवे नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं अपुनर्भवाय नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंप्रभाय नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं अक्षराय नमः। ॐ ह्रीं अर्हं विश्वलोचनाय नमः। ॐ ह्रीं अर्हं सूक्ष्माय नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं शिवाय नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं परमेष्ठिने नमः ॥ ॐ ह्रीं अर्हं सनातनाय नमः ॥

इस प्रकार एक हजार आठ नामों का उल्लेख करते हुए इस ग्रंथ में लिखा गया है—

दश शत अष्टोत्तर, कहे सार्थक श्री जिन नाम।
पढ़े सुने जे भविक, जिन पावै सौख्य ललाम॥

जो पुरुष इन नामों का स्मरण करता है, उसकी स्मृति बहुत ही पवित्र हो जाती है।

अर्हं मंत्र : प्रयोगों के आइने में

1. शांति व सिद्धिदायक मंत्र – ॐ ह्रीं अर्हं नमः प्रतिदिन एक माला।[11]

2. वचन सिद्धि मंत्र – ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः।[12]

यह सप्ताक्षरी मंत्र बहुत प्राचीन और अत्यन्त चामत्कारिक मंत्र है। इस मंत्र की सुबह, संध्या विधिवत् छः महीने तक निरन्तर एक माला जपने से वचनसिद्धि होती है। इस मंत्र की साधना के समय समता व ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना आवश्यक है।

3. नवाक्षरी मंत्र – ॐ ह्रीं अर्हं नमः क्ष्वीं स्वाहा।[13]

इस मंत्र का जप करने से पूर्व नौ बार नमस्कार महामंत्र का जप करें। तत्पश्चात् इस मंत्र की नौ मालाएं फेरें। निरन्तर इक्कीस दिनों तक जप करने से घरेलू, अड़ोस-पड़ोस, व्यावसायिक व राज्य संबंधी अन्य कई प्रकार के संकट दूर हो जाते हैं।

दुष्ट मनुष्य एवं तस्कर का भय उत्पन्न होने पर इस मंत्र की एक माला फेरकर कार लगाने से भय समाप्त हो जाता है।

4. जहर उतारने का मंत्र – ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा क्लीं नमः।[14]

5. अचिन्त्य फल प्राप्ति – ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं ह्रीं नमः।[15]

प्रतिदिन एक माला उत्तरदिशाभिमुख होकर जपें।

6. सर्व शांतिदायक – ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं अर्हं नमः।[16]

प्रतिदिन प्रातः-सायं दो-दो माला जपने से अचिन्त्य फल की प्राप्ति।

7. अर्हत् की अर्हता जगाने के लिए[17] –

ॐ अर्हं अ सि आ उ सा णमो अरहंताणं नमः

इस मंत्र की आनन्द-केन्द्र पर प्रतिदिन एक माला फेरने से कल्याणकारी वातावरण का निर्माण होता है तथा मोक्ष साधना की सिद्धि प्राप्त होती है।

8. ऋद्धिवर्द्धक मंत्र[18]—

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं महावीराय नमः।

प्रतिदिन एक माला फेरने से आध्यात्मिक ऋद्धि का विकास होता है।

9. सद्‌बुद्धिदायक मंत्र[19]—

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सुमतिनाथाय नमः—प्रतिदिन एक माला।

10. आनन्द प्रदायक मंत्र[20]—

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अभिनंदननाथाय नमः—प्रतिदिन एक माला।

11. प्रभावशाली व्यक्तित्व[21]—

ॐ ह्रीं श्रीं चन्द्रप्रभवे नमः—प्रतिदिन एक माला।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि अर्हं अर्हत् बनने की सशक्त प्रक्रिया है, वीतराग चेतना को जगाने का मंत्र है। इसका गूढ़ार्थ इतना उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ है, जिसको साधारण बुद्धि से समझना अत्यन्त कठिन है। इसके लयबद्ध स्मरण से अन्तर्दृष्टि का जागरण होता है, जिसकी परिणति निम्न रूप से परिणाम लाती है—

* अन्तर्दृष्टि जागृत होने से सुख-दुःख की धारणाएं बदल जाती हैं।
* निमित्त पर टिकी आस्था उपादान पर चली जाती है।
* आग्रह टूटता है, अनेकान्त जीवनशैली का विकास होता है।
* विकल्प का स्थान संकल्प ले लेता है।
* पदार्थ केन्द्रित चेतना आत्मकेन्द्रित बनती है।
* अतीन्द्रिय चेतना का विश्वास जागता है।
* प्रवृत्ति से हटकर निवृत्ति में प्रस्थान होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जो णमो अरहंताणं की शरण में अपने आप को समर्पित करता है, उसमें अर्हं की धाराएं स्वतः चारों ओर प्रवाहित होने लगती हैं। इसलिए जप करते समय स्वयं को उस प्रवाह में प्रवाहित कर दें।

यह दक्षता और गहराई को बढ़ाने वाला महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। उचित संप्रयोग के साथ इसकी अमाप्य शक्ति को साक्षात् किया जा सकता है। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के शब्दों में—

अर्हं अर्हं की ध्वनि, ध्वनित रहे दिन-रात।
मन वाणी में कर्म में, चिंतन में साक्षात्॥

सन्दर्भ –

1. योगशास्त्र, 8/23-24
2. अर्हं, 1-1-2
3. प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा, पृ. 18
4. भीतर की ओर, पृ. 63
5. मन के जीते जीत, पृ. 206
6. मंत्र : एक समाधान, पृ. 67
7. तुम स्वस्थ रह सकते हो, पृ. 40
8. मंत्र : एक समाधान, पृ. 90
9. साधना प्रयोग और परिणाम, पृ. 8
10. अर्हं, पृ. 80
11. मंत्र : एक समाधान, पृ. 100
12. मंगलवाणी, पृ. 183
13. नमस्कार मंत्रोदधि, पृ. 37
14. वही, पृ. 34
15. मंत्र : एक समाधान, पृ. 127
16. वही, पृ. 67
17. वही, पृ. 49
18. वही, पृ. 50
19. वही, पृ. 53
20. वही, पृ. 85
21. वही, पृ. 20.

13. ह्रीं का रहस्य

अर्हं अर्हत् का बीज-मंत्र और ह्रीं अर्हत् व सिद्ध का बीजमंत्र है। बीजकोश के अनुसार 'ह्रीं' की उत्पत्ति नमस्कार महामंत्र के द्वितीय पद से, 'हं' की उत्पत्ति महामंत्र के प्रथम पद से और "ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः" ये पाँच बीजाक्षर नमस्कार महामंत्र के प्रथम पद से निष्पन्न माने गये हैं। मंत्रशास्त्र में ह्रीं को शक्ति-बीज, कल्याण-बीज, माया-बीज, त्रैलोक्य-बीज और परम तत्त्व-बीज माना गया है। मंत्रशास्त्र का अध्ययन करने से विदित होता है कि अनेक मंत्र ऐसे हैं, जिनमें 'ह्रीं' का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। ऋषि मण्डल स्तोत्र में ह्रीं में चौबीस तीर्थंकरों की स्थापना कर ध्यान करने का निर्देश दिया है। श्री वज्रपंजर स्तोत्र में नमस्कार महामंत्र का अंगन्यास करने से पूर्व दायें हाथ के अंगूठे सहित चारों अंगुलियों पर क्रमशः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः—इन पाँच बीजाक्षरों को तीन बार बोलकर स्थापित किया जाता है, यथा—दायें अंगूठे पर ह्रां, तर्जनी पर ह्रीं, मध्यमा पर ह्रूं, अनामिका पर ह्रौं, चिटली पर ह्रः मंत्र बीजों को स्थापित कर फिर हाथ का उपयोग श्री-वज्रपंजर स्तोत्र बोलते हुए अंगन्यास के लिए किया जाता है। ह्रीं महाशक्ति है। यह मंत्र हमारी सुप्त शक्तियों एवं सहिष्णुता को जागृत करने वाला मंत्र है।

ह्रीं का एक अर्थ है—लज्जा और दूसरा अर्थ है—आत्मानुशासन। यहां ह्रीं आत्मानुशासन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिस व्यक्ति के पास आत्मानुशासन की शक्ति होती है, वह आत्म-नियंत्रण कर सकता है, अपने विचारों तथा भावों पर नियंत्रण कर सकता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के समीप वैदिक और गायत्री मंत्रों के विशेषज्ञ आए। चर्चा के दौरान उन्होंने कहा—"जैन आचार्यों ने ह्रीं का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है।" वैदिक मंत्रों में क्लीं और जैन मंत्रों में ह्रीं का प्रयोग अधिक मिलता है। मंगल भावना में दूसरी भावना भी यही है "ह्रीसम्पन्नोऽहं स्याम्"—मैं आत्मानुशासन सम्पन्न बनूं। आत्मानुशासन और मंत्रशास्त्र—दोनों ही दृष्टियों से ह्रीं शक्तिशाली और समस्याओं का समाधान करने वाला मंत्र है। जब मनोबल घट जाये अथवा शरीर की ऊर्जा कम हो जाये तब 'ह्रीं ॐ ह्रीं' का जप संजीवनी बूंटी के पान का काम करता है।[1] 'ह्रीं हं ह्रीं' मंत्र का जप अकाल मृत्यु की संभावना को क्षीण या समाप्त करता है।[2] ह्रीं ह्रां ह्रीं से आकर्षण बदलता है। बहुत से आदमी ऐसे हैं, जिन्हें हर आदमी से उपेक्षा मिलती है। कोई उससे बात करना नहीं चाहता। किसी के पास बैठते हैं तो भी वह तुरन्त उठकर चला जाता है। परन्तु 'ह्रीं ह्रां ह्रीं' यह प्रकंपन ऐसा आकर्षण

पैदा करता है कि दूसरे स्वत: चलकर निकट आ जाते हैं। एक तरह से यह वशीकरण मंत्र का काम करता है।[3]

ह्रीं में सम्पूर्ण वर्णमाला

मंत्र शास्त्र में ॐ को प्रणव अक्षर और ह्रीं को माया बीज बताया है। बीज उसी का नाम है, जिसमें वृक्ष पैदा करने की शक्ति हो। गेहूं का बीज गेहूं पैदा करता है और चावल के बीज से चावल पैदा होते हैं। तदनुसार ह्रीं को शास्त्रकारों ने बीजाक्षर बताया है और साथ में माया नाम भी दिया है। इसलिए इसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। माया अर्थात् लीला या प्रताप कुछ भी कहा जा सकता है, जिसमें पैदा करने की शक्ति है, उसका नाम बीज और फैलाने का नाम है–माया। ह्रीं में भी ऐसी अनुपम शक्ति का समावेश है, जिसमें स्वर, व्यंजन के अक्षरों को उत्पन्न करने की शक्ति है। ह्रीं में ह र इ तीन वर्ण और चौथा (.) बिन्दु है। मूल शब्द 'ह' है। 'ह' माया बीज है। इसका पुष्ट प्रमाण है–'ह' के पांच विभाग, जिनसे सारे स्वर और व्यंजन बनते हैं। ह के पांच विभाग निम्न प्रकार से हैं–

बीजाक्षर मायाबीज

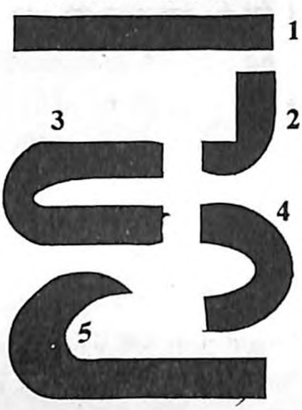

उपरोक्त पांच विभागों से स्वर, व्यंजन बनते हैं। अत: इस अक्षर में ज्ञान के प्रकाश का कितना समावेश है, यह बताने की अपेक्षा नहीं, पाठक स्वयं जान सकते हैं। शास्त्रों में 'ह्रीं' की महिमा का कोई पार नहीं है। यह शक्ति के साथ-साथ पवित्रता का प्रतीक मंत्र है। यह महाप्रभावक मंत्राक्षर है क्योंकि बीजमंत्रों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है।

ध्वनि-शक्ति (वर्ण-शास्त्रीय अर्थ)

आँखों देखा सच है कि पुंगी बजाने से सर्प आता है, हारमोनियम, सितार, सारंगी आदि वाद्य यंत्र बजाने से नहीं। मंत्रोच्चारण से देव वश में रहता है, पढ़ने या विद्वान बनने से नहीं। जिज्ञासा ने पँख फैलाये। आखिर इस विज्ञान का रहस्य क्या? समाधान मिला–ध्वनि शक्ति या ध्वनि सामर्थ्य।

वर्णों की दृष्टि से भी शब्दों, पदों से विशेष अर्थों की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय तंत्र और मंत्र परम्परा वर्ण शास्त्र या अक्षर शास्त्र को अधिक महत्त्व देती है। प्रस्तुत सन्दर्भ में ह्रीं शब्द विमर्शनीय है। ह्रीं में तीन वर्ण और चौथा चन्द्र बिन्दु है। ह् र् इ ँ सबका अलग-अलग अर्थ और महत्त्व है। ध्यान परम्परा में अलग-अलग केन्द्रों पर इन अक्षरों का ध्यान किया जाता है।

'ह'

1. यह शब्द शांति पौष्टिक और मांगलिक कार्यों का उत्पादक, साधना के लिए परमोपयोगी, स्वतंत्र और सहयोगपेक्षी, लक्ष्मी की उत्पत्ति में साधक, आकाश तत्त्व युक्त, कर्मनाशक तथा सभी प्रकार के बीजों का जनक माना गया है।[4]

2. मंत्र शास्त्र की दृष्टि से 'ह' का उच्चारण बहुत शक्तिशाली है। इसका कण्ठ पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह कण्ठ को शक्तिशाली बनाता है।

3. स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भी गले का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गला अस्वस्थ होने पर न केवल शरीर पर अपितु मन और भावना पर भी उसका दुष्प्रभाव पड़ता है। अत: गले की स्वस्थता मन, वचन, काया और भाव शुद्धि के लिए अत्यधिक उत्तरदायी है।

'र'

1. यह शब्द अग्निबीज, कार्य साधक, समस्त प्रधान बीजों का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक और वर्धक माना गया है। यह वर्ण ओज, शक्ति, सामर्थ्य, तेज, भूति आदि का वाचक है। इसे पंच देवात्मक एवं पंच प्राणात्मक माना गया है।[5]

2. यह शक्ति का वाचक है। वर्णोद्धार तंत्र में इसकी महिमा का उल्लेख करते हुए भगवान शिव पार्वती से कहते हैं–

त्रिशक्ति सहितं देवी, आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
सर्वतेजोमयं वर्ण सततं, प्रणमाम्यहम्॥

अर्थात् यह 'र' वर्ण सभी शक्तियों से युक्त है। आत्म तत्त्व रूप है और सर्व तेजोमय वर्ण है। यह भगवती दुर्गा का, शक्ति का, जगज्जननी का वाचक भी है। इसे महामोक्षदायक, अष्टसिद्धि दायक एवं ब्रह्मरूप भी कहा गया है।[6]

(3) र् तथा म् वर्ण सम्पूर्ण वर्णमाला में निराला महत्त्व रखते हैं। गोस्वामी तुलसी ने रामचरित्तमानस में लिखा है—

एक छत्र एक मुकुटमणि, सब वर्णन पर दोउ।
तुलसी रघुवर नाम पै, वर्ण विराजत दोउ॥

ये दो ही ऐसे वर्ण हैं, जो वर्णमाला में छत्र और मुकुटमणि के समान प्रयुक्त होते हैं। अन्य कोई वर्ण इस प्रकार नहीं लिखा जाता है, जैसे—धर्म, कर्म, मर्म, शर्म, गर्म तथा त्रिविधं, मुक्किट्टं, उद्योतकं आदि।

'ई'

यह वर्ण अमृत बीज का मूल, कार्य साधक, ज्ञानवर्धक, स्तम्भक, मोहक, जृंभक माना गया है। ई वर्ण कांति, गति, शक्ति, व्याप्ति, प्रजन-विस्तार आदि का वाचक है। इसके पर्याय नामों में स्त्री, मूर्ति, महामाया, लोलाक्षी, शिवा (पार्वती), तुष्टि, पुष्टि, कामकला, वैष्णवी और त्रिपुर सुन्दरी आदि प्रमुख हैं। मातृका न्यास में बायीं आँख पर इसका स्थान होता है। नवीन कर्म टीका में इसे लक्ष्मी का वाचक माना गया है–इ: लक्ष्मी।[7]

''अं'' (ॱ)

यह वर्ण स्वतंत्र शक्ति रहित, कर्माभाव के लिए प्रयुक्त, ध्यान मंत्रों में प्रमुख, शून्य या अभाव का सूचक, आकाश बीजों का जनक, अनेक मृदुल शक्तियों का उद्घाटक और लक्ष्मी बीजों का मूल माना गया है।[8]

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि 'ह' का स्थान कण्ठ होने के कारण यहां से निकलने वाली ध्वनि सबको प्रभावित करती है। 'रकार' मूर्धा को प्रभावित करने वाला वर्ण है। 'ई' हमारे होठों और तालु को प्रभावित करता है, जो हमारे शरीर का गुह्य-गुप्त भाग है। तालु हमारे शरीर में बहुत शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां से निःसृत होने वाला 'ह्रीं' बीजमंत्र अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

वर्ण और व्याकरण की दृष्टि से 'ह्रीं' के शब्दोच्चारण मात्र से शक्ति, विभूति और आत्मानुशासन की सम्पन्नता, प्राण शक्ति का संवर्धन और देवत्व की प्रतिष्ठा संभव है क्योंकि मंत्रों के रचियता महापुरुष अत्यधिक सामर्थ्यवान होते हैं। उनकी रचना में विशिष्ट प्रकार की सिद्धियां अन्तर्निहित होती हैं, जिसके प्रभाव से मंत्र के अधिष्ठाता-देव कार्य की पूर्ति में सहायक होते हैं।

ह्रीं प्रयोग विधि : ह्रींकार विद्या का ध्यान

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मंत्र की रचना मर्यादित अंक में, मर्यादित अक्षर में, विशिष्ट पद्धति के अनुसार मंत्रशास्त्र शक्ति के विशारद अनुभवी साधकों द्वारा रचित होती हैं, जिसका हेतु बहुत गहन होता है। मंत्रशास्त्र के नियमानुसार अक्षरों का मिलन, संयुक्ताक्षर, द्वाक्षरी, तृतीयाक्षरी, चतुराक्षरी, पंचाक्षरी, षष्ठाक्षरी, सप्ताक्षरी, अष्टाक्षरी, नवाक्षरी तक किया हुआ होता है। ऐसे महान् मंत्रों का जप पुनः-पुनः करने से वे मंत्र सिद्ध हो जाते हैं, जिनका फल अमोघ, महान लाभदायी बताया गया है। ऐसे महान् मंत्र का विशेष पद्धति सहित जप व ध्यान किया जाये तो विशेष फलदायी होता है। योगशास्त्र में इस मंत्र की विशेष विधि का उल्लेख निम्न प्रकार से उपलब्ध हैं–

साधक को मुख के अन्दर आठ पंखुड़ियों वाले श्वेत कमल का चिंतन करना और उन पंखुड़ियों में आठ वर्ण–अ क च ट त प य श–स्थापित करने चाहिए। उसके बाद "ॐ णमो अरहंताणं" इन आठ अक्षरों में से एक-एक अक्षर एक-एक पंखुड़ी पर स्थापित करें। उस कमल की केसरा के चारों तरफ के भागों में अ आ आदि सोलह अक्षर स्थापित करें और मध्य की कर्णिका को अमृत के बिन्दुओं से विभूषित करें। उन कर्णिकाओं में से चन्द्र-बिम्ब से गिरते हुए मुख-कमल से संचरित प्रभामंडल के मध्य में विराजित चन्द्र जैसे कांति वाले माया-बीज 'ह्रीं' का चिंतन करें।[9]

इस तरह चिंतन करने के बाद कमल के पुष्प के पत्तों में भ्रमण करते हुए आकाश तल से संचारित मन की मलीनता का नाश करते हुए अमृत रस से झरते और तालु रन्ध्र से निकलते हुए भृकुटि के मध्य में शोभायमान तीन लोक में अचिन्तनीय महात्म्य वाले तेजोमय की तरह अद्‌भुत ऐसे इस 'ह्रीं' का ध्यान किया जाये तो एकाग्रता पूर्वक लय लगाने वाले को वचन और मन की मलिनता दूर करने पर श्रुतज्ञान का प्रकाश होता है।[10]

छः महीने तक निरन्तर अभ्यास करने से जब साधक का चित्त स्थिर हो जाता है तो वह अपने मुख कमल से निकलती हुई धूमशिखा को देखता है। एक वर्ष के पश्चात् ज्योति देखने लगता है। उसके बाद संवेग की वृद्धि होने से साधक सर्वज्ञ के मुख-कमल को देखने में समर्थ हो जाता है। इससे भी आगे चलकर कल्याणमय माहात्म्य से देदीप्यमान, सर्वातिशय से सम्पन्न और प्रभामंडल में स्थित सर्वज्ञ को साक्षात् की तरह देखने लगता है। इतना सामर्थ्य प्राप्त होने पर साधक का चित्त एकदम स्थिर हो जाता है, उसे तत्त्व का निश्चय हो जाता है। वह संसार अटवी को लांघकर सिद्धि के मन्दिर-मोक्ष में विराजमान हो जाता है। वह अपने साध्य को सिद्ध कर लेता है।[11]

ह्रीं में चौबीस अर्हत्

ऋषि-मंडल स्तोत्र में 'ह्रीं' बीजाक्षर में ऋषभ आदि चौबीस अर्हतों की स्थापना अपने-अपने वर्णानुसार की गई है।

इस बीज अक्षर की नाद कला अर्द्धचन्द्राकार है। वह श्वेत वर्ण की होती है। उसमें जो बिन्दु है, उसका रंग काला है। 'हकार' पीले वर्ण वाला और 'ईकार' नील वर्ण वाला है। इस तरह ह्रीं में चौबीस अर्हतों की रंग के अनुसार स्थापना की गई है।[12]

चन्द्रप्रभौपुष्पदंतौ, नादस्थितिसमाश्रितौ।
बिंदुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिन सत्तमौ॥
पद्मप्रभवासुपुज्यौ कलापद मधिष्ठितौ।
शिरईस्थितिसंलीनौ पार्श्वमल्लिजिनोतमौ।
शेषास्तीर्थकृतः सर्वे, हरस्थाने-नियोजिताः।
माया बीजाक्षर प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हतां॥[13]

अर्थात् चन्द्रप्रभु और पुष्पदंत–इन दोनों तीर्थंकरों की स्थापना अर्द्धचन्द्राकार जो नाद कला है, उसमें की गई है। बिन्दु के मध्य में तीर्थंकर नेमिनाथ और तीर्थंकर मुनि सुव्रत की स्थापना की गई है। पार्श्व अर्हत् और अर्हत् मल्लि को ईकार में स्थापित किया गया है। शेष सोलह तीर्थंकरों को रकार, हकार के जो वर्ण हैं, उनके मध्य भाग में लिखा जाता है। इस प्रकार चौबीस ही अर्हत् ह्रींकार में स्थापित हो जाते हैं, जिनको निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

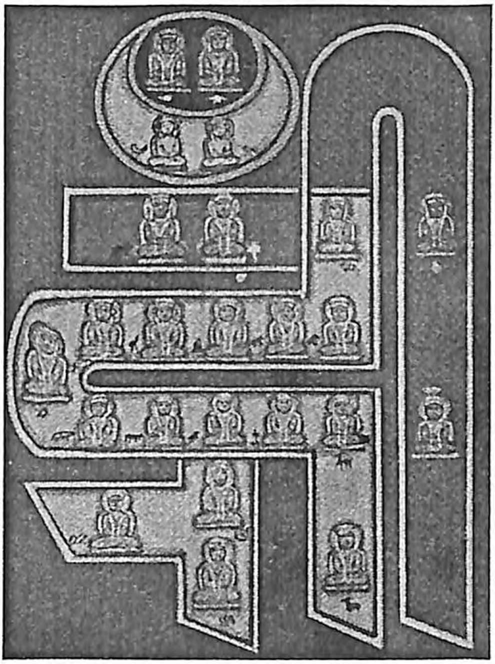

ह्रींकार के ऊपर जो अर्द्धचन्द्राकार चिह्न है, वह सफेद कला युक्त माना गया है, क्योंकि चन्द्रकला सफेद होती है, इसलिए इसमें श्वेत वर्ण वाले अर्हत् का नाम लिखा गया है। नाम–''चन्द्रप्रभपुष्पदन्तेभ्यो नमः''। चन्द्रकला के ऊपर 'बिन्दु' को श्याम वर्ण का बताया गया है अतः बिन्दु में श्याम वर्ण वाले अर्हत् का नाम लिखा गया है। नाम–''मुनि सुव्रत नेमिनाथेभ्यो नमः''। ह्रींकार के 'सिर' की लाइन जो मस्तक पर होती है, वह लाल वर्ण की बताई गई है, अतः लाल वर्ण वाले अर्हत् का नाम लिखा है–''पद्मप्रभ वासुपूज्येभ्यो नमः''। ह्रींकार का दीर्घ ईकार यानि ई की मात्रा जिसका हरा रंग बताया गया है, अतः हरे वर्ण वाले तीर्थंकर का नाम लिखा गया है। नाम ''मल्लिपार्श्वनाथेभ्यो नमः''। इस प्रकार लिखने के बाद बाकी रहा हुआ ह्रींकार का विभाग 'हकार' व 'रकार' पीले वर्ण का बताया गया है इसलिए स्वर्ण वर्ण वाले सोलह अर्हतों के नाम लिखे गये हैं। नाम–''ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति सुपार्श्व शीतल श्रेयांस विमल अनंत धर्म शांति कुंथु अर नमि वर्द्धमानेभ्यो नमः''। इस प्रकार सम्पूर्ण ह्रींकार में चौबीस अर्हतों की स्थापना होने के बाद 'ह्रींकार' के बीच में जो जगह रहती है, उसमें इस तरह बीज अक्षर लिखा जाता है–''ॐ ह्रीं अर्हं नमः।''

सत्ताईस अक्षरी मंत्र

पूर्ण प्रणवतः सांत सरेफो लब्धिपंचरवान्।
सप्ताष्टदशसूर्यकान् श्रितोबिंदुस्वरान् पृथक्॥
पूज्यनामाक्षरा आधाः पंचतोज्ञान दर्शनः।
चारित्रेभ्यो नमोमध्ये, ह्रीं सान्तः समलंकृतः॥ [14]

प्रथम प्रणव अक्षर ॐ को लिखकर बाद में सकारान्त–अन्त के अक्षर 'ह' को रेफ सहित लिखकर उस पर स्वराक्ष की मात्रा लगाने से (जैसे–आ इ उ ऊ ए ऐ औ की मात्रा को अनुस्वार सहित लिखने और अं की मात्रा लिखने से) ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः बन जाता है। बीजाक्षर के बाद पंच-परमेष्ठी नाम के प्रथम अक्षर अ सि आ उ सा और उनके आगे सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यो व नमः के बीच में ह्रीं लिखा जाता है। इस तरह लिखने से सत्ताईस अक्षर का मूल मंत्र बन जाता है। इस मंत्र के आद्य में 'ॐ' प्रणव अक्षर लगता है, क्योंकि प्रणव अक्षर शक्तिशाली है। यह मंत्र को बलवान बनाने वाला है। इसी कारण से सत्ताईस अक्षरों के पहले ॐ लगाया जाता है। मंत्र शास्त्र के नियमानुसार इस ॐ अक्षर की गिनती इस मंत्र के अक्षरों के साथ नहीं की गई है, ऐसा ऋषिमंडल स्तोत्र में उल्लेख किया गया है। पूरा मंत्र इस प्रकार बनता है–

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यो ह्रीं नमः।"

यह मंत्र महाप्रभावशाली माना गया है। भावों की शुद्धि में यह मंत्र बहुत बड़ा आलम्बन है। इस मंत्र की नियमित एक माला फेरने से शरीर स्थित विजातीय तत्त्वों का निष्कासन होता है।

सत्ताईस अक्षरी मंत्र से निष्पन्न विभिन्न मंत्रों के निम्न प्रकार हैं–

1. ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः
2. ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः
3. ॐ ह्रुं आचार्येभ्यो नमः
4. ॐ ह्रूं उपाध्यायेभ्यो नमः
5. ॐ ह्रें सर्व साधुभ्यो नमः
6. ॐ ह्रैं सम्यक् दर्शनेभ्यो नमः
7. ॐ ह्रौं सम्यक् ज्ञानेभ्यो नमः
8. ॐ ह्रः सम्यक् चारित्रेभ्यो नमः।

आत्म शुद्धि मंत्र

ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं

ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं।

इस आत्मशुद्धि मंत्र का एक सौ आठ बार जप करने से आत्मबल की वृद्धि होती है।

निष्कर्ष

कवि ने यथार्थ कहा है–

तुम पुण्य काम मत करो भले ही,
किन्तु मत करो पाप।
पुण्य के फल को पा लोगे,
तुम राम नाम मत रटो भले ही।
किन्तु करो राम के काम,
राम के बल को पा लोगे।।

राम के काम और राम के बल को प्राप्त करने के लिए ह्रीं मंत्र का जप उपयुक्त है क्योंकि यह महामंगल और पवित्रता का प्रतीक मंत्र है। यह मंत्र नमस्कार महामंत्र से निःसृत बीजमंत्र के रूप में प्रतिष्ठित है। यह परम आध्यात्मिक मंत्र है। आध्यात्मिक मंत्र की रचना का आधारभूत तत्त्व है–वीतरागता। जो वीतराग बन जाये या वीतराग के पदचिह्नों पर सम्पूर्णता से चले वह व्यक्ति मंत्र की तरह आदरास्पद बन जाता है। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जो आत्मा जिन-वाणी में रमण करे, वह आत्मा मंत्राई बन जाती है। जैन धर्म को सर्वाधिक इष्ट है–वीतरागता और वही मंत्राई बनने की आधारशिला है।

जैन साहित्य में मंत्र-जप, श्रुत-जप, इष्ट-जप–तीनों की सुव्यवस्थित पद्धति रही है। "जैन मंत्र मंत्रोदधि कल्प" में मंत्र-गत, रोग नाशन, मनः प्रसादन, कषाय शमन, देव-दर्शन आदि चामत्कारिक शक्तियों का कारण शब्दोच्चारण संबंधी विशिष्ट यौगिक क्रिया को माना है, किसी एकान्त अज्ञात शक्ति विशेष को नहीं माना।

मंत्र स्रष्टा आचार्यों ने ह्रीं मंत्र में चौबीस तीर्थंकरों की स्थापना कर ध्यान करने का विधान किया है। वीतराग भगवान के ध्यान का प्रतीक यह मंत्र भावविशुद्धि का अत्यधिक शक्तिशाली मंत्र है। मंत्र साधना की आत्मशोधन से बड़ी निष्पत्ति ओर क्या हो सकती है? आत्मशुद्धि से ही वीतरागता का पथ प्रशस्त होता है। ह्रीं आवर्त्त (कर माला) में भी नमस्कार महामंत्र व चौबीस तीर्थंकरों का जप किया जाता है। ह्रीं का ध्यान अध्यात्म पथ के पथिक के लिए राजमार्ग है।

सन्दर्भ –

1. महाप्रज्ञ ने कहा, भाग-21, पृ. 168
2. वही, पृ. 167
3. वही, पृ. 167
4. यंत्र-मंत्र-तंत्र विज्ञान, पृ. 46
5. कामधेनू तंत्र, पटल-6
6. शब्द कल्पद्रुम, भाग-4, पृ. 69
7. प्रेक्षाध्यान, अक्टूबर 2004, पृ. 22
8. यंत्र-मंत्र-तंत्र विज्ञान, पृ. 44
9. योगशास्त्र, प्रकरण-8, गाथा-47 से 49, पृ. 242, 243, ऋषिमंडल स्तोत्र, पृ. 2, 3
10. वही, प्रकरण-8, गाथा 50-52, पृ. 242, 243
11. वही, प्रकरण-8, गाथा 53-56, पृ. 242, 243
12. ऋषिमंडल स्तोत्र, गाथा 22, 23
13. वही, गाथा 24-26
14. वही, गाथा 9-10

विशेष – कुछ स्थानों पर वर्णभेद उपलब्ध होता है इसलिए एक पक्षीय निर्धारण कठिन है।

14. कर्मक्षय की अपूर्व शक्ति : महामंत्र

विश्व में एक ऐसी विचित्र शक्ति है, जो शुद्ध और स्वतंत्र आत्मा को विवश बनाकर नाना प्रकार से नृत्य कराती हुई चार गति एवं चौरासी लाख जीवयोनि में भटका कर परेशान कर रही है। वह शक्ति वेदान्त दर्शन में माया या अविद्या, सांख्य दर्शन में प्रकृति, वैशेषिक दर्शन में अदृष्ट और जैन दर्शन में कर्म के नाम से स्वीकार की गई है।

कर्मवाद जैनदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। शरीर रचना से लेकर आत्मा के अस्तित्व तक, बंधन से मुक्ति तक एक गहन चिंतन कर्मशास्त्र का अपना वैशिष्ट्य है। कर्मवाद का मंतव्य है कि आत्मा किसी रहस्यपूर्ण शक्तिशाली व्यक्ति (ईश्वर) की शक्ति और इच्छा के अधीन नहीं है। संसार की सभी आत्माएं एक जैसी हैं और सभी में एक जैसी शक्तियां हैं। चेतन जगत् में जो भेदभाव दिखाई देता है, वह शक्तियों के न्यूनाधिक विकास के कारण है। कर्मवाद के अनुसार विकास की चरम सीमा को प्राप्त व्यक्ति परमात्मा है। हमारी शक्तियां कर्मों से आवृत्त हैं, अविकसित हैं किन्तु आत्मबल द्वारा कर्मों के आवरण को दूर कर इन शक्तियों का विकास किया जा सकता है एवं परमात्मा बना जा सकता है।

जीव की इस विकास यात्रा के अनेक सोपान हैं—अहिंसा, संयम, सत्य, त्याग, अनासक्ति, प्रेम, करुणा, धैर्य, अनुशासन, नियंत्रण की क्षमता, सहिष्णुता, मंत्र-जप, स्वाध्याय, ध्यान, शुभयोगों की प्रवृत्ति, देव, गुरु व धर्म को नमस्कार आदि।

जिज्ञासा हो सकती है कि देव-गुरु-धर्म के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को जो नमस्कार किया जाता है, वह क्या है?

समाधान के स्वरों में कहा जा सकता है कि देव-गुरु-धर्म के सिवाय जहां नमस्कार किया जाता है, वहां कहीं कुल परम्परा है (जैसे विवाह आदि के बाद देवी-देवताओं को धोक मारना), कहीं सांसारिक कर्त्तव्य है (जैसे—माता-पिता, राजा, सेठ आदि को नमस्कार करना), कहीं प्रेम व्यवहार है (जैसे—स्वजन, बंधुजन एवं मित्रों को नमस्कार करना) तथा कहीं व्यावहारिक सभ्यता है (जैसे—सभा-सोसाइटियों में सबके सामने हाथ जोड़ना)।

यद्यपि इन्द्रादि देव, तीर्थंकरों की माताओं को नमस्कार करते हैं।[1] उत्पला श्राविका ने पोखली श्रावक को एवं पोखली श्रावक ने शंख श्रावक को

वंदना-नमस्कार किया है।[2] पाण्डु राजा एवं कुन्ती महारानी ने नारद को तीन प्रदक्षिणा देकर वंदना-नमस्कार किया है,[3] शिष्यों ने अपने गुरु अम्बड़ सन्यासी को नमस्कार किया है,[4] भरत चक्रवर्ती ने चक्ररत्न को नमस्कार किया है[5] तथा सूर्याभ देवता ने प्रतिमा को नमस्कार किया है,[6] लेकिन इन सबका किया हुआ वंदना-नमस्कार लौकिक व्यवहार, कर्त्तव्य एवं जीताचार है। इसमें धर्म-पुण्य का संबंध नहीं है।

पुण्य का मूल कारण है—शुभयोग। जब जीव मन-वचन-काया से शुभ कार्य-निरवद्य कार्य (अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का पालन एवं अनशन आदि तप की आराधना) करता है, तब कर्मों की निर्जरा होती है एवं उससे कर्मों का आश्रव होता है। आत्म-प्रदेशों में हलन-चलन के समय सहचर नाम कर्म का उदय होने से वह आश्रव पुण्यों का होता है। जहां पुण्य का बंध होगा, वहां निर्जरा अवश्य होगी। अकेली निर्जरा तो (चौदहवें गुणस्थान में) हो सकती है पर अकेला पुण्य नहीं हो सकता, क्योंकि निर्जरा और पुण्य का हेतु वही एक शुभ योग है।

यह एक शाश्वत सिद्धान्त है कि निर्जरा के साथ पुण्यों का बंध होता है एवं उसके सहारे कर्म क्षेत्र में राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, इन्द्रादि का पद तथा धर्म क्षेत्र में उपाध्याय, आचार्य यावत् तीर्थंकरों का पद प्राप्त कर लेता है और तेरहवें गुणस्थान तक उन्हें साथ लेकर विहरण करता है, फिर भी साधक पुण्यों को बंध रूप होने से हेय मानता है, क्योंकि आखिर उन्हें छोड़कर ही मोक्ष जाना है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि परमेष्ठी नमस्कार करने से कर्मों की महान् निर्जरा होती है। परमेष्ठी नमस्कार का अर्थ है—देव-गुरु व धर्म को नमस्कार। इसे मोक्ष प्राप्ति का एक बहुत बड़ा सोपान माना जा सकता है। परमेष्ठी नमस्कार से आठ कर्मों को किस प्रकार निर्जरित किया जा सकता है, इस विवेचन से पूर्व यह समझना जरूरी है कि कर्म का स्वरूप क्या है? कर्मों के क्रम का रहस्य क्या है? तथा कौन-सा कर्म आत्मा के किस गुण को आवृत्त करता है? एवं किस प्रकार उस आवरण का निवारण किया जा सकता है आदि? क्योंकि कर्मशास्त्र का अध्ययन एक दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता के लिए जितना जरूरी है, उतना ही एक ध्यान साधक के लिए भी जरूरी है क्योंकि नाड़ी संस्थान में उठने वाली कर्म विपाक की विभिन्न तरंगों को जाने बिना उन्हें शांत नहीं किया जा सकता। प्रेक्षाध्यान, मंत्र, जप एवं मंत्र के ध्यान से चित्त की जागरूकता बढ़ती है। जागरूक साधक नाड़ी संस्थान में उठने वाली उत्तेजना या वासना की प्रत्येक तरंग का अनुभव कर सकता है और दर्शन के द्वारा उसे निष्क्रिय बना सकता है।

कर्म का स्वरूप

प्रत्येक संसारी प्राणी का अस्तित्व यौगिक है। वह न केवल शरीर है और न केवल आत्मा, वह दोनों का मिश्रण है। शरीर संसारी आत्मा का अधिष्ठान है। जैन दर्शन में कर्म युक्त आत्मा को संसारी आत्मा कहते हैं। जीव और कर्म का संबंध अनादिकालीन है। जीव बद्ध कर्मों के हेतु को पाकर अनेक प्रकार के भवों में परिभ्रमण करता है। इस परिभ्रमण के दौरान उसे पुण्य और पाप कर्मों का बंधन होता रहता है। विषय-कषायों से रागी जीव के जीव-प्रदेशों में जो परमाणु लगते हैं, बंधते हैं, उन परमाणुओं के स्कन्धों को कर्म कहते हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने कर्म की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा है–शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट और संबंधित होकर जो पुद्गल आत्मा के स्वरूप को आवृत्त करते हैं, विकृत करते हैं और शुभाशुभ फल के कारण बनते हैं, आत्मा द्वारा गृहीत उन पुद्गलों का नाम है–कर्म।[7]

उत्तराध्ययन वृत्ति में कर्म को परिभाषित करते हुए शान्ताचार्य ने लिखा है–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग–इन आश्रवों से अनुगत आत्मा द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है।[8] उत्तराध्ययन सूत्र में राग और द्वेष–ये दो कर्म के हेतु विकसित किये गये हैं।

कर्म के परमाणु व्यक्ति के साथ अपने आप संबंध स्थापित नहीं करते। जीव अपनी प्रवृत्ति के द्वारा उन्हें आकर्षित करता है। आत्मा के साथ बंधने वाले ये कर्म सामान्य तौर पर सुख-दु:ख के कारण हैं। संगति से कर्म ही संसार बंधन करते हैं और बिछुड़ने पर ये ही मुक्ति प्रदान करते हैं। जीव जिन कर्मों से आबद्ध हो संसार-परिभ्रमण करता है, वे कर्म आठ प्रकार के हैं[9]–

1. ज्ञानावरणीय कर्म,
2. दर्शनावरणीय कर्म,
3. वेदनीय कर्म,
4. मोहनीय कर्म,
5. आयुष्य कर्म,
6. नाम कर्म,
7. गोत्र कर्म,
8. अन्तराय कर्म।

इनमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय–ये चार घाती कर्म कहलाते हैं एवं आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि मुख्य गुणों का घात करते हैं। इनका सर्वथा नाश किये बिना जीव कभी सर्वज्ञ भगवान नहीं बन सकता।[10] शेष चार अघाती कर्म हैं,[11] ये जीव के स्वाभाविक गुणों का नाश नहीं करते, इनका प्रभाव केवल शरीर, इन्द्रिय, आयु आदि पर पड़ता है। जब तक जीव शरीर धारण करता है, तब तक वे उसके साथ ही रहते हैं।

कर्मों के क्रम का रहस्य

प्रज्ञापना टीका में आठ कर्मों के क्रम के रहस्य का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है[12]–ज्ञान, दर्शन के बिना जीव का अस्तित्व ही नहीं रह सकता, क्योंकि जीव का लक्षण उपयोग है और उपयोग ज्ञान-दर्शन रूप है।

ज्ञान-दर्शन में भी ज्ञान प्रधान है। ज्ञान से ही सम्पूर्ण शास्त्रादि-विषयक प्रवृत्ति होती है। लब्धियां भी ज्ञानोपयोग वाले के ही होती हैं, दर्शनोपयोग वाले के नहीं होतीं। मुक्त होते समय भी जीव ज्ञानोपयोग वाला होता है, दर्शनोपयोग तो उसे दूसरे समय में प्राप्त होता है। इस प्रकार ज्ञान की ही प्रधानता होने से ज्ञान का आवारक ज्ञानावरणीय कर्म सबसे पहले कहा गया है। ज्ञानापयोग के बाद जीव दर्शनोपयोग में स्थित होता है। अत: ज्ञानावरणीय कर्म के बाद दर्शन का आवारक– दर्शनावरणीय कर्म रखा गया है। ये ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म अपना फल देते हुए यथायोग्य सुख-दु:ख रूप वेदनीय कर्म में निमित्त होते हैं। जैसे गाढ़ ज्ञानावरणीय कर्म को भोगता हुआ जीव सूक्ष्म वस्तुओं के विचार में अपने आपको असमर्थ पाता है और खिन्न होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की पटुता वाला जीव अपनी बुद्धि से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर वस्तुओं का विचार करता है एवं दूसरों से अपने को ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा देखकर हर्ष का अनुभव करता है। इसी प्रकार प्रगाढ़ दर्शनावरणीय कर्म का उदय होने पर जीव जन्मान्ध होकर महादु:ख भोगता है तथा उक्त कर्म के क्षयोपशम की पटुता होने पर जीव निर्मल स्वस्थ चक्षुओं के द्वारा वस्तुओं को यथार्थ रूप से देखता हुआ प्रसन्न होता है इसलिए ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के बाद वेदनीय कर्म कहा गया है।

वेदनीय इष्ट वस्तुओं के संयोग में सुख और अनिष्ट वस्तुओं के संयोग में दु:ख उत्पन्न करता है। इससे संसारी जीवों के राग-द्वेष का होना स्वाभाविक है और राग-द्वेष मोहनीय के कारण हैं इसलिए वेदनीय कर्म के बाद मोहनीय कर्म को स्थान दिया गया है।

मोहनीय कर्म से मूढ़ हुए प्राणी महाआरम्भ, महापरिग्रह आदि में आसक्त होकर नरकादि की आयु बाँधते है अत: मोहनीय कर्म के बाद आयुष्य कर्म का कथन किया गया है।

नाम कर्म का उदय होने पर जीव उच्च या नीच गोत्र में से किसी एक गोत्र का अवश्य ही भोग करता है, इसलिए नाम कर्म के बाद गोत्र कर्म कहा गया है।

गोत्र कर्म उदय होने पर उच्च कुल में उत्पन्न जीव के दान-लाभ आदि से संबंधित अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है। नीच कुल में उत्पन्न जीव के इन सबका उदय होता है अत: गोत्र कर्म के बाद अन्तराय कर्म का स्थान है।

इस प्रकार आठ कर्मों के क्रम के पीछे भी एक विशिष्ट रहस्य है जो समीचीन और उपयुक्त भी है। इस रहस्य को समझने वाला अपने आपको कर्मावरण से मुक्त कर सकता है।

कर्म क्षय की अपूर्व शक्ति : महामंत्र

प्रत्येक आत्मा में सत्ता रूप में आठ मुख्य गुण वर्तमान है, पर कर्मावरण से वे प्रकट नहीं हो पाते। वे आठ गुण निम्न प्रकार हैं–

1. अनंत ज्ञान,
2. अनंत दर्शन,
3. आत्मिक सुख,
4. क्षायिक सम्यक्त्व,
5. अटल अवगाहन,
6. अमूर्तिकत्व,
7. अगुरुलघुत्व,
8. अनंत वीर्य (निरन्तराय)।

ज्ञानावरणीय-कर्म जीव की अनंत-ज्ञान शक्ति के प्रादुर्भाव को रोकता है। दर्शनावरणीय-कर्म जीव की अनंत-दर्शन शक्ति को प्रकट नहीं होने देता। वेदनीय-कर्म अव्याबाध-सुख को रोकता है। मोहनीय कर्म आत्मा की सम्यक् श्रद्धा को रोकता है। आयुष्य-कर्म अटल-अवगाहन (शाश्वत-स्थिरता) को नहीं होने देता। नाम-कर्म अरूपी अवस्था नहीं होने देता। गोत्र-कर्म अगुरुलघु भाव को रोकता है। अन्तराय कर्म अनंत वीर्य को प्रकट नहीं होने देता।

उपरोक्त अष्ट कर्मों का सर्वथा क्षय करने पर आत्मा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होती है।

पंच परमेष्ठी में प्रतिष्ठित आत्माओं में से 'सिद्ध' कर्मों से सर्वथा मुक्त होते हैं। सघन साधना के द्वारा चार घनघाती कर्मों को क्षय करने वाले अर्हत् होते हैं। उनके अघाती कर्मों का बंधन भी उसी भव में मुक्तावस्था के पहले समय में क्षय को प्राप्त होता है। अत: वे चरम शरीरी होते हैं। शेष तीन परमेष्ठी अष्ट कर्म-युक्त होने के कारण कर्म क्षय की साधना में संलग्न है। साधना के विकास के साथ-साथ कर्मों का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय होता है। पंच-परमेष्ठी नमस्कार से आठ कर्मों का क्षय किस प्रकार होता है। इसको निम्नोक्त विवेचन से आसानी पूर्वक समझा जा सकता है–

1. ज्ञानावरणीय कर्म

पंच परमेष्ठी नमस्कार से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है, क्योंकि पांचों

परमेष्ठी ज्ञानी होते हैं। ज्ञानी जनों का विनय करने से विनय नामक आभ्यन्तर तप होता है और तप से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की निर्जरा होती है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से ज्ञान-गुण का प्रकाशन होता है। इस अपेक्षा से नमस्कार महामंत्र ज्ञान-गुण का प्रकाशक भी है। यह महामंत्र आत्मा के निज गुणों का प्रकाशक है इसलिए यह हृदय में प्रतिष्ठित होना चाहिए। हृदय में बसा हुआ मंत्र केवल-ज्ञान का प्रकाशक हो सकता है। एक-एक पद को किया गया नमस्कार भी ज्ञानावरणीय या सर्व पाप प्रणाशक हो सकता है।

ज्ञान ज्ञानी से अलग नहीं हो सकता अत: ज्ञान को कृत नमस्कार ज्ञानी के लिए कृत नमस्कार है। ज्ञान और ज्ञानी की आशातना से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है तथा उनका विनय एवं उनको किया गया नमस्कार ज्ञानावरणीय कर्म को क्षीण करने में निमित्त बनता है। जैसे इन्द्रभूति गौतम आदि विद्वद्जन ज्योंहि भगवान् महावीर के प्रति अपने अहं को त्याग कर विनत बने, उन्हें त्रिपदीमात्र से ही समस्त श्रुत अर्थात् चौदह पूर्वों का ज्ञान उपलब्ध हो गया। सभी उसी भव से कर्मों को क्षीण कर मोक्ष गये। बाहुबली ने अपने अहं का त्याग कर अपने भ्राता मुनियों को वंदन के लिए ज्योंही चरण गतिमान किये, उन्हें केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन की प्राप्ति हो गई। यह उपलब्धि उन्हें ज्ञानियों के प्रति विनत होने से प्राप्त हुई थी। इस प्रकार परमेष्ठी नमस्कार से अज्ञानान्धकार का विलय और ज्ञान का प्रकाश फैलता है।

2. दर्शनावरणीय कर्म

दर्शन गुण का आवारक दर्शनावरणीय कर्म है। इस कर्म के चक्षुदर्शनावरण आदि चार तथा निद्रा आदि पांच ऐसे कुल नव भेद हैं। दर्शन गुण के प्रति विपरीत भाव से दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है। दर्शनावरणीय कर्म एकान्त पाप है। नमस्कार महामंत्र सर्व पाप प्रणाशक है अत: वह इस कर्म के क्षय का भी हेतु है। पाप के हेतुओं से आत्मा में पाप का आश्रव होता है, जिससे पाप कर्मों का बंध होता है। नमस्कार महामंत्र में चित्त एकाग्र होने से उतने समय के लिए पाप बंध के हेतु निवृत्त हो जाते हैं। अत: पाप कर्म का स्थूल बंध रुक जाता है। इसके साथ परमेष्ठियों के गुणों में लयलीन होने से पूर्वबद्ध पाप कर्मों की निर्जरा होती है। जैसे मरुदेवा माता को भगवान ऋषभ के दर्शनों से निर्मल भाव प्राप्त हुए और वहीं हाथी के होदे पर बैठे-बैठे ही भाव-विशुद्धि की निर्मल परिणाम धारा में केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन की प्राप्ति हो गई और वह सब कर्मों के बंधन से मुक्त हो गई। भगवान ऋषभ ने तीर्थ स्थापना से पूर्व कहा—मरुदेवा भगवई सिद्धा।

3. वेदनीय कर्म

सुख-दु:ख का वेदन करने के कारण 'वेदना' संसारी जीव का लक्षण है। अनुकूल-प्रतिकूल वेदन को वेदना कहा जाता है। उसका निमित्त कारण है–वेदनीय कर्म। वेदनीय कर्म के दो प्रकार हैं–सात वेदनीय और असात वेदनीय। नमस्कार महामंत्र के स्मरण से असात वेदनीय कर्म का क्षय होता है क्योंकि परमेष्ठियों को नमस्कार करते हुए उनकी अहिंसा प्रधान आराधना और उसकी फल प्राप्ति के प्रति प्रमोद भावना व्यक्त होती है। जैन आगमों में पंच परमेष्ठी की अनुमोदना शुभ दीर्घ आयुष्य बंध का कारण मानी गई है। पंच परमेष्ठी को हृदय से नमन करने पर नमस्कर्त्ता के परिणामों में अनाशातना के भाव प्रवर्द्धमान रहने के कारण असाता वेदनीय कर्म की निर्जरा होती है। पंच परमेष्ठियों के प्रति गुणानुराग से सात वेदनीय कर्म तो पुष्ट होता ही है परन्तु इससे भी आगे वेदनीय कर्म के क्षय से प्राप्त अव्याबाध सुख उपलब्ध होता है। अत: पंच परमेष्ठी नमस्कार में वेदनीय कर्म को क्षीण करने की अद्‌भुत शक्ति है।

सिद्ध भगवान के अव्याबाध सुख को एक रूपक के द्वारा समझाया गया है। संसार में चक्रवर्ती के सुख से योग-भूमि स्थित जीवों का सुख अनंत गुणा, उससे धरणेन्द्र का सुख अनंत गुणा, उससे देवेन्द्र का सुख अनंत गुणा और इन सबके त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्ध भगवान का एक पल का सुख भी अनंत गुणा है।

इसी महामंत्र की आराधना से महासती सीता के अग्नि स्पर्श से होने वाला असाता वेदनीय, सेठ सुदर्शन के शूली के स्पर्श से होने वाला असाता वेदनीय और अमर कुमार की संसार में होने वाली समस्त असाता दूर हुई थी। एक नहीं ऐसे इतिहास के अनेक उज्ज्वल पृष्ठ हैं कि महामंत्र से असाता वेदनीय दूर हुई तथा अनंत सुखों की उपलब्धि हुई।

4. मोहनीय कर्म

आठ कर्मों में अशुभ कर्म बंध का हेतु एकमात्र मोह कर्म ही है इसलिए इसे सब कर्मों का राजा कहा जाता है। आत्म-भान की विस्मृति, आत्म-लीन नहीं होने देना, आत्म-हीनता को जन्म देना और जीव को बाहर ही बाहर भटकाना अर्थात् विषयों का आकर्षण–ये सब मोह कर्म के कार्य हैं। मोह कर्म के क्षीण होते ही सात वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सब कर्मों का बंधन रुक जाता है। मोह कर्म के दो भेद हैं–1. दर्शन मोह, 2. चारित्र मोह।

कषाय, नो कषाय, वेद–ये सब मोह कर्म की ही प्रकृतियां हैं। अरिहंत भगवान चार घनघाती कर्मों से तथा सिद्ध भगवान अष्टकर्मों से मुक्त हैं अत: नमस्कार महामंत्र के प्रथम दो पद मोहातीत हैं। आचार्य आदि परमेष्ठी-त्रय दर्शन

मोह का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय कर चारित्र मोह के उपशम, क्षय तथा क्षयोपशम के पथ पर आरूढ़ है अत: पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से नमस्कर्त्ता को मोह कर्म के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम योग्य परिणाम उत्पन्न होते हैं अर्थात् दृष्टि की निर्मलता, स्थिरता व पारदर्शिता के साथ-साथ वीतरागता की प्राप्ति भी होती है। वीतराग के अनुमोदन से वीतरागता का आवीर्भाव होता है अत: यह महामंत्र वीतरागता की प्राप्ति का सोपान है।

इतिहास साक्षी है स्कन्दक परिव्राजक ज्योंही तत्त्व पृच्छा के लिए भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धानत बने, उनका मिथ्यामोह तिरोहित हो गया। चण्डकौशिक सर्प का क्रोध, राजा दशार्णभद्र का मान, रोहिणेय चोर की माया, भगवान् महावीर की वाणी सुन उनके प्रति श्रद्धानत होते ही नष्ट हो गई।

यद्यपि महामंत्र का उद्भव गुणानुराग से होता है तदपि वह मोह का विनाशक है, क्योंकि गुणानुराग मोह की विशुद्धि (मोह के क्षयोपशम) से उत्पन्न होता है। जैसे 'विषस्य विषमौषधिम' अर्थात् विष की औषधि विष है, वैसे ही गुणानुराग भी मोह की दवा है।

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा है–चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति से दर्शन विशोद्धि होती है। संत तुलसीदास की वाणी में भी इस बात को समझा जा सकता है–

राम नाम मनि दीप धरूं, जीह–देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरउ, जो चाहसि उजियार॥

अर्थात् प्रभु का नाम जपोगे तो बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार का अंधकार नष्ट हो जायेगा।

इसी प्रकार सूरदासजी ने भी परमात्मा की शक्ति का संगान करते हुए कहा है–''सूर किशोर कृपा तें सब बल हारे को हरि नाम'' अर्थात् जब संसार के सब बल थक जाते हैं, शरीर का, धन का, तलवार का, बंदुक का या सेना का बल भी नाकामयाब हो जाता है तब 'हरि' के नाम का बल काम आता है। दुनिया की तमाम शक्तियां धोखा दे सकती हैं पर परमात्मा के नाम की शक्ति कभी भी धोखा नहीं दे सकती।

संत कबीर ने कहा–''कर का मनका छाड़ी के मन का मनका फेर''।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पंच परमेष्ठी के जप से सम्यक्त्व की विशुद्धि होती है, आत्मा की निर्मलता बढ़ती है।

5. आयुष्य कर्म

इस मंत्र के श्रद्धालु उपासक आराधना करते हुए शुभ आयु का बंध करते

हैं। शुभ आयुष्य बांधते हुए साधक आत्मा क्रमश: अनायु हो जाता है। भील, भील की रत्नवती नारी, श्रीपाल नरेश आदि ने इसके प्रभाव से शुभ आयुष्य का बंध किया था। इस महामंत्र की साधना के उत्कर्ष में एक दिन शुभ आयुष्य का बंध भी रुक जाता है, तब जीव सभी कर्मों का क्षय करके मुक्त हो जाता है। जैनदर्शन के अनुसार शुभ आयुष्य के बंधक परिणाम भी अप्रमत्त दशा में प्राप्त नहीं हो सकते। इसी कारण सदैव अप्रमत्त आत्मा के (7वें से 14वें गुणस्थान) तक आयुष्य का बंध नहीं होता है।

नमस्कार महामंत्र से परमेष्ठियों के अनायु-भाव और उनकी साधना का अनुमोदन होता है और नमस्कार साधक निश्चय नमस्कार में अधिष्ठित होकर, नित्य अप्रमत्त बन जाता है, इसलिए वह अनायु हो जाता है। इस अपेक्षा से यह महामंत्र मुक्ति सौख्य का प्रकाशक है।

6. नाम कर्म

नाम कर्म के उदय से जीव की शरीर, जाति, गति यश, अपयश आदि पर्यायें होती हैं। संक्षेप में नाम कर्म के दो प्रकार हैं– 1. शुभ नाम कर्म, 2. अशुभनाम कर्म। शुभ नाम कर्म से जीव शारीरिक एवं वाचिक उत्कर्ष पाता है इसके अनुभाव इष्ट शब्द, इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस, इष्ट स्पर्श, इष्ट गति, इष्ट स्थिति, इष्ट लावण्य, इष्ट यश: कीर्ति, इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम, इष्ट स्वरता, कान्त स्वरता, प्रिय स्वरता, मनोज्ञ स्वरता के रूप में प्रकट होते हैं।

अशुभ नाम कर्म के उदय से जीव शारीरिक एवं वाचिक अपकर्ष पाता है। इसके अनुभाव शुभ नाम कर्म के अनुभावों के विपरित अनिष्ट शब्द रूप आदि रूप में प्रकट होते हैं।

पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से अशुभ कर्म का नाश और शुभ कर्म का बंध होता है अशुभ कर्म का नाश होना निर्जरा और शुभ कर्म का बंध होना पुण्य है। इन पुण्य प्रकृतियों को जीव चौदहवें गुणस्थान तक भोगता है तत्पश्चात् नाम कर्म के क्षय से जीव शरीर मुक्त अर्थात् अमूर्त्त हो जाता है। अमूर्त्तत्व आत्मा का स्वभाव है। पंचपरमेष्ठी में तन्मय होने से अथवा शुभ भावपूर्वक महामंत्र के जप से आत्मा एक दिन इस उच्च अवस्था तक पहुंच जाता है अर्थात् अपने स्वरूप में उपस्थित हो जाता है।

7. गोत्र कर्म

गोत्र कर्म के भी दो भेद हैं–उच्च गोत्र और नीच गोत्र। पूजनीयता और अपूजनीयता उत्पन्न करने में हेतुभूत कर्म गोत्र कर्म है। जाति, कुल, बल, रूप

आदि की उच्चता से जीव पूजनीय और निम्नता से अपूजनीय होता है। उच्च गोत्र कर्म के उदय से जीव उच्च कुल, जाति आदि को प्राप्त होता है। जाति, गति आदि का मद करने से जीव के नीच गोत्र कर्म का तथा मद न करने से उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है।

महामंत्र की साधना मद के विपरीत भाव की साधना है। नमस्कार अर्थात् पूजनीयों के प्रति आदर की अभिव्यक्ति–मद का विसर्जन, अहं का निरोध। मद के विसर्जन से नीच-गोत्र के बंध का निरोध होता है। आदर की अभिव्यक्ति से नीच-गोत्र का क्षय और उच्च गोत्र का बंध होता है।

नीच गोत्र का उदय पांचवें गुणस्थान तक ही रहता है। उच्च गोत्र के वेदन के पश्चात् गोत्र कर्म का क्षय हो जाता है। गोत्र कर्म के क्षय से गुरुता-लघुता का अभाव हो जाता है। स्वभावत: आत्मा न गुरु है और न लघु। कर्माभाव से आत्मा स्व-स्वभाव में स्थित हो जाती है। महामंत्र की साधना स्वभाव में स्थित होने की प्रक्रिया का अंग है। इससे गोत्र कर्म का क्षय और अगुरुलघुत्व गुण की प्राप्ति होती है। हरिकेश बल मुनि ने पूर्व भव में जाति मद और धर्म के प्रति अनादर से नीच-गोत्र का बंध किया और सर्वत्र अनादर पाकर हरिकेश स्वपाक से हरिकेश बल मुनि बन गये। गुरु चरणों की उपासना के प्रभाव से वे देववंद्य होकर देहातीत हो गये।

8. अन्तराय कर्म

जिस कर्म के उदय से इष्ट कार्य में विघ्न या बाधा उपस्थित हो उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। अन्तराय कर्म आत्मगुणों का घातक है इसलिए यह कर्म पाप रूप ही है। अन्तराय कर्म के उदय से पांच गुण–दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में बाधा उपस्थित होती है। दान आदि में अन्तराय देने से अन्तराय कर्म का बंध होता है। इस प्रकार अन्तराय के पांच भेद होते हैं। बंध के भी पांच भेद और कर्म प्रकृति के भी पांच भेद।

महामंत्र की आराधना से पंच परमेष्ठियों के प्रशस्त दान आदि की अनुमोदना होती है, जिससे अन्तराय कर्म के बंध के हेतुओं का अभाव होता है। पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा होती है। वस्तुत: अन्तराय कर्म के क्षय के बिना अनंत ज्ञान आदि गुण भी संभव नहीं हैं। नमस्कार महामंत्र की साधना भी अन्तराय कर्म के अंशत: क्षयोपशम से संभव होती है। फिर वही नमस्कार साधना अन्तराय कर्म को पूर्णत: क्षीण करने में सहायक होती है।

इस प्रकार नमस्कार महामंत्र में सर्व कर्मक्षय की अपूर्व शक्ति है। यह साधना कर्म से अकर्म की यात्रा तय करती है। साधक को लक्षित मंजिल का वरण कराती है तथा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित करती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नमस्कार महामंत्र के स्मरण से वैराग्य, पापभीरूता, जीवादि तत्त्वों का ज्ञान, कर्मों की फलदान शक्ति का ज्ञान एवं वीतराग भाव का परिशीलन होता ही रहता है। पुनः-पुनः इसके चिंतन से अचिन्त्य शक्ति युक्त पंच-परमेष्ठी के गुणों से लाभान्वित होने का अवसर उपलब्ध होता है। साथ ही साथ मोक्ष मार्ग रूप रत्नत्रय की आराधना भी वृद्धिंगत होने लगती है। पंच-परमेष्ठी के स्मरण से पापों के प्रति मन में जुगुप्सा और धर्म के प्रति उत्साह का भाव बढ़ता है। संसार की निस्सारता और मोक्ष मार्ग की सारभूतता का चिंतन भी इस महामंत्र के साथ जुड़ा हुआ है। धर्म श्रवण, शास्त्र स्वाध्याय, अध्यात्म चिंतन आदि सद्गुण भी महामंत्र के स्मरण के साथ जुड़े हुए हैं। ये सब कर्म निर्जरा के निमित्त कारण हैं। इस प्रकार नमस्कार महामंत्र में कर्मक्षय की अपूर्व-शक्ति विद्यमान है। इस महामंत्र के प्रत्येक पद के अन्त में प्रयुक्त 'णं' शब्द में ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से कर्म विस्फोट की महान शक्ति विद्यमान है। यह मंत्र दर्शनशास्त्र, कर्मशास्त्र एवं ध्वनिशास्त्र–तीनों दृष्टियों से शक्तिशाली मंत्र है।

सन्दर्भ–

1. जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति
2. भगवती, 12/1
3. ज्ञाता, अध्ययन-16
4. औपपातिक प्रश्न-3
5. जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति
6. राजप्रश्नीय
7. जीव-अजीव, पृ. 45
8. उत्तराध्ययन, शा., पत्र-45
9. (क) उत्तराध्ययन, 33/1-3
   (ख) ठाणांग, 8, 3, 596
   (ग) प्रज्ञापना, 23.1
10. हारिभद्रीयाष्टक श्लोक-30
11. कर्मप्रकृति गाथा-1 टीका
12. प्रज्ञापना टीका, 23/1/288
13. नमोक्कार अणुप्पेहा

15. नैतिक संस्कारों की प्रारंभिक शिक्षा : मंत्र दीक्षा

मन में ऋजुता और मृदुता, वचन में मधुरता और सत्यता, भावना में भव्यता और सहृदयता, हृदय में स्नेह और सौहार्द, नयन में परीक्षा और समीक्षा, बुद्धि में पटुता और मुमुक्षा, चिन्तन में चेतनता और नवीनता, दृष्टि में निश्छलता और विशालता, व्यवहार में कुशलता और निरभिमानता, अन्त:करण में पवित्रता और परोपकारिता जैसे उच्च संस्कारों को पल्लवित व पुष्पित करने के अनेकों प्रयोगों में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—मंत्र-दीक्षा।

भारतीय संस्कृति में मंत्रों का बहुत महत्त्व माना गया है। प्राचीन काल में ऋषिमुनि मंत्रों की साधना करके दिव्य-शक्तियां प्राप्त किया करते थे। प्रत्येक धर्म में किसी-न-किसी प्रकार के मंत्रों का और उनके महत्त्व का वर्णन है। वैष्णव धर्म में गायत्री मंत्र का अत्यन्त महत्त्व है और प्रत्येक धार्मिक व आध्यात्मिक अनुष्ठान में इस मंत्र का जप व पूजा करने का विधान है। इसी प्रकार जैन धर्म में नमस्कार महामंत्र की महिमा का वर्णन भगवती आदि आगम ग्रंथों में तथा विशेषावश्यक भाष्य में विस्तार से किया गया है।

प्रत्येक जैन धर्मानुयायी इस महामंत्र पर आस्था रखता है और हृदय से यह मानता है कि यह मंत्र रोग, विघ्न, चिंता तथा भूत-प्रेतादि द्वारा होने वाले कष्टों का समूल नाश करके आनन्द प्रदान करता है तथा सभी दृष्टि से मंगलमय है। इस महामंत्र के साथ जुड़ी पांच महाशक्तियां सम्पूर्ण जैन वाङ्मय की आधारशिला हैं। यह महामंत्र आबालवृद्ध के लिए उपयोगी है। बालकों को विशेष संस्कार देने हेतु मंत्र-दीक्षा को एक संस्कार रूप में गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने प्रतिष्ठित किया।

जिस प्रकार नामकरण, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन इत्यादि सोलह संस्कार माने गये हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक विकास हेतु निश्चित संस्कारों में मंत्र-दीक्षा भी एक संस्कार है। इस दीक्षा को नैतिक संस्कारों की प्रारम्भिक दीक्षा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि मंत्र-दीक्षा के साथ नियमित मंत्र-जप जहां घनीभूत आस्था को सुदृढ़ करता है, वहां सुप्त शक्तियों को जागृत करने के लिए भी बहुत उपयोगी है। सामान्य मंत्र भी इष्ट कार्य की सिद्धि करने में समर्थ होता है और विपत्तियों से रक्षा करता है। नमस्कार मंत्र तो महामंत्र है, वह सब प्रकार का मंगल करे, दोषों व पापों का समूल उच्छेद करे, इसमें

आश्चर्य की बात क्या ? इसलिए केवल जैन धर्म के अनुयायी ही नहीं, मानव मात्र इसके पूज्यत्व के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित होकर आराधना करें, जो सहज संभव है।

मंत्र-दीक्षा क्यों ?

जीवन निर्माण और विकास के अनेकों माध्यमों में एक छोटा किन्तु सशक्त माध्यम है–मंत्र-दीक्षा। मंत्र के प्रयोग का उद्देश्य होता है मन के भीतर छिपी हुई अनंत-शक्तियों का विकास। मंत्र न कोई जादू है, न चमत्कार है और न ही अंधविश्वास है। इसका अपना पूरा विज्ञान है। मंत्र-जाप से जो ध्वनि-प्रवाह उत्पन्न होता है, वह आस-पास के वातावरण को विशेष रूप से स्पन्दित करता है।

मंत्र-दीक्षा का उद्देश्य है–बच्चों को महामंत्र से परिचित कराना और उसके प्रयोग से होने वाले लाभ का अनुभव करना। इस महामंत्र के एक-एक अक्षर में ऐसा दिव्य प्रभाव है कि इसका शुद्ध हृदय या विशुद्ध भक्ति-भावना से उच्चारण किया जाए तो आस-पास का सारा वायुमण्डल शांत व पवित्र हो जाता है। मंत्र-दीक्षा से बच्चों की आस्था का निर्माण होता है। जीवन की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है–आस्था या श्रद्धा। आस्था किसी भी प्रकार की हो सकती है–अपनी आत्मा के प्रति, अपने आराध्य के प्रति, अपनी मंजिल की प्राप्ति के प्रति। अलग-अलग स्थानों पर आस्था का स्वरूप बदल सकता है, हर पल सफलता के मूल में आस्था आवश्यक होती है। आचार्यश्री तुलसी ने मंत्र-दीक्षा के आयोजन के विषय में अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है–"श्रद्धा का संबंध ज्ञान और विश्वास से है, विश्वास के निर्माण का स्वर्णिम काल है–बचपन। आरम्भ के छ: वर्षों में बच्चे के विचार की नींव पड़ जाती है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, वह नींव और अधिक सुदृढ़ होती चली जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस अवस्था में ही बच्चे की आस्था का सुदृढ़ निर्माण किया जाये। कई वर्षों से यह प्रयत्न चल रहा है कि नौवें वर्ष में प्रवेश करने के साथ ही बच्चों को मंत्र-दीक्षा प्रदान की जाये। यद्यपि इसकी आवश्यकता तो पहले भी थी, परन्तु वर्तमान में बच्चों के लिए भटकाव के जितने अवसर हैं, उन्हें देखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस उम्र में ही उन्हें सुस्थिर होने का अवसर उपलब्ध करवाया जाये।

मंत्र-दीक्षा में बच्चों को जीवन की मूलभूत आस्थाओं के साथ-साथ नमस्कार महामंत्र का स्मरण कराया जाता है। यदि बालक प्रारम्भ से ही अपने आपको केन्द्रित कर ले, तो यह उसके अपने जीवन के लिए अति लाभदायक

सिद्ध होता है। इस दृष्टि से अभिभावकों का यह पहला कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों को मंत्र-दीक्षा में दीक्षित करें।[1]

मंत्र-दीक्षा के संकल्प

1. मैं प्रतिदिन कम से कम 27 बार नमस्कार महामंत्र का जप करूंगा/करूंगी।
2. मैं शराब, मांस, अण्डे का सेवन नहीं करूंगा/करूंगी।
3. मैं बीड़ी, सिगरेट, पान मसाला, जर्दा आदि का प्रयोग नहीं करूंगा/करूंगी।
4. मैं माता-पिता व गुरुजनों के प्रति विनम्र रहूंगा/रहूंगी।
5. मैं गाली या अपशब्द का प्रयाग नहीं करूंगा/करूंगी।[2]

इन नियमों के साथ कतिपय शिक्षासूत्र निम्न प्रकार से उल्लिखित हैं[3]–

* सूर्योदय से पूर्व उठना।
* प्रतिदिन संत-दर्शन करना।
* संस्कार-केन्द्र में प्रतिदिन आसन, प्राणायाम करना।
* बाजार की वस्तुएं न खाना।
* अच्छे साथियों की संगत करना।

कहा भी है–

खल की संगत मत करो, चाहे हो विद्वान।
मणि से भूषित सर्प भी, क्या करता नहीं नुकसान॥

उपर्युक्त मंत्र-दीक्षा संकल्प और शिक्षासूत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मंत्र-दीक्षा नैतिक संस्कारों की प्रारम्भिक शिक्षा है। साथ ही इसके कतिपय उद्देश्य निहित हैं, जो इस प्रकार से हैं–

1. विघ्न विनाशक, मंगलदायक महामंत्र के प्रति बच्चों की निष्ठा जागे।
2. जीवन नैतिक व सद्आचरणों से ओत-प्रोत हो।
3. जैनत्व के प्रति गहरी आस्था जागे।
4. इष्ट नमस्कार से बालकों में अद्भुत शक्ति का संचार हो।
5. इष्ट नमस्कार से बुद्धि की निर्मलता व भावों की पवित्रता का बालकों के जीवन में आविर्भाव हो।
6. महामंत्र के प्रति अद्भुत नम्रता व आदर का भाव प्रकट हो।

7. आत्मा में रही दिव्य शक्तियों का क्रमशः जागरण होता रहे।

8. बालकों के पास महामंत्र का सुरक्षा कवच रहे।

जिज्ञासा हो सकती है कि बालक नमस्कार महामंत्र को अपने माता-पिता से घर पर ही याद कर लेता है फिर मंत्र-दीक्षा की क्या जरूरत है? समाधान के रूप में कहा जा सकता है कि "यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा होती है, समर्पण होता है, वह हमारे चित्त का आकर्षण-केन्द्र बन जाता है। फलतः उसका ज्ञान-विज्ञान हमारा मार्गदर्शन करने लग जाता है। उसकी शक्ति हमारे साथ रहती है। अतः गुरु के द्वारा मंत्र ग्रहण करने से उस मंत्र ग्रहणकर्त्ता में पात्रता आ जाती है क्योंकि गुरु में दिव्य शक्ति होती है, जिससे वह अपात्र को पात्र और पात्र को समर्थ पात्र बना सकता है।

जप का फल

महामंत्र नवकार के जप से निम्नलिखित लाभों की उपलब्धि होती है—

* अशुभ कर्म क्षीण होते हैं।
* मन एकाग्र होता है।
* अनंत शक्ति का जागरण होता है।
* आभामंडल शक्तिशाली बनता है।
* आत्मशोधन के साथ मनोकामना पूर्ण होती है।
* असाध्य रोगों का शमन होता है।
* दिव्य शक्तियां अनुकूल बनती हैं।
* देवकृत उपद्रव प्रभावहीन हो जाते हैं।

मंत्र-दीक्षा : एक चमत्कार

तेरापंथ युवक परिषद् ईडवा के तत्त्वावधान में स्थानीय नौ वर्षों के बच्चों में साध्वीश्री मोहनकुमारीजी (डीडवाना) के सान्निध्य में मंत्र-दीक्षा का कार्यक्रम रखा गया। संस्कारक थे श्री सुभाष सुराणा—मंत्री अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्। श्री रामदेव शर्मा 'जैन' ने बच्चों को मंत्र-दीक्षा सामग्री प्रदान की। साध्वीश्री मोहनकुमारीजी ने सरल भाषा में नमस्कार महामंत्र की विशेषताओं पर मार्मिक उदाहरण दिये। भाई-बहिनों की अच्छी उपस्थिति थी।

उस समय एक चामत्कारिक घटना घटी। ईडवा निवासी श्री प्रसन्नचन्दजी कोठारी की धर्मपत्नी सामायिक कर रही थी। कार्यक्रम लगभग् सम्पूर्ण हो गया था। श्रीमती कोठारी दस वर्षों से कोई प्रेतात्मा की छाया से आतंकित थीं। वहां बैठे-बैठे ही अचानक धमाके के साथ गिर गई और सारे शरीर में कम्पन्न शुरू हो गया। साध्वी श्री जी ने उक्त बहिन को नजदीक जाकर नमस्कार महामंत्र सुनाया। इस पर उसी बहिन के मुँह से उसमें प्रविष्ट प्रेतात्मा ने अपना निम्न बयान किया –

''मैं दस वर्षों से इसके पीछे लगी हुई हूँ। इसके घरवालों ने मुझसे छुटकारा दिलाने के अनेक प्रयत्न किये पर कोई असर नहीं हुआ। आज तक मैंने अपना परिचय भी नहीं बताया। पर आज यहां नमस्कार महामंत्र की महत्ता का वर्णन सुनकर तथा यह दृश्य देखकर मेरा हृदय कांप उठा। अब इस धर्मस्थान पर मैं नहीं ठहर सकती। मैं इसे मुक्त कर रही हूँ, आज के बाद इसे कभी नहीं सताऊँगी। मैं अमुक जगह की अमुक जाति की थी आदि अपना पूर्व परिचय बताते हुए चली गई।''

उसके बाद साध्वी श्री जी ने मंगलपाठ, उपसर्ग स्तोत्र एवं लोगस्स की पाटी सुनाई और सुनकर वह बहिन उठकर दरवाजे के बाहर निकल गई। बाहर आते ही उसका शरीर शिथिल पड़ गया एवं पुन: होश में आ गई। यह था महामंत्र की कथा का प्रत्यक्ष प्रभाव।[4]

कहा भी है–

अशुभ कर्म के हरण को, मंत्र बड़ो नवकार।
वाणी द्वादश अंग में, देख लियो तत्त्व सार॥
उगणीस लाख तिरसठ हजार, दो सो बासठ पल।
अनहद सुख भोगवे, नवकार मंत्र नो फल॥

निष्कर्ष

जीवन अनंत रहस्यों का अथाह सागर है। इसकी अतल गहराई में असंख्य अमूल्य मणि मुक्ता छिपे हुए हैं। क्षुद्र पदार्थ में आसक्त बना मनुष्य उनकी उपेक्षा करता है। अपने से भिन्न नक्षत्र, सौरमण्डल व जड़ पदार्थों की खोज तथा उपलब्धि में वह अपना सारा जीवन दांव पर लगा देता है। लेकिन मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? मैं कहां से आया हूँ? कहां जाऊँगा? इस छोटे से रहस्य को जानने की दिशा में उत्कंठित नहीं बनता।

"मोक्ष सिद्धये"–मुक्ति के लिए ऋषिजन कहते हैं–"तुम स्वयं को जानो।" यह स्व का अवबोध कठिन ही नहीं कठिनतम है। स्व को जाने बिना मुक्ति संभव नहीं है। मुक्ति का आधार है–विवेक। विवेकवान व्यक्ति ही आत्म-जिज्ञासु हो सकता है। बहुत सुन्दर कहा गया है–

कल्पवृक्ष है चेतना, जो चाहे सो देत।
इससे अशुभ न मांगिये, कर्म–मुक्ति के हेत॥

बालक का मन कोरे कागज के समान होता है, जिस पर जैसा चित्र चाहे उकेरा जा सकता है। वैज्ञानिक तथ्यों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि पांच से नौ वर्ष तक की उम्र बच्चों के मानसिक विकास एवं आन्तरिक आस्था के जागरण का समय है। इस उम्र में बच्चों को जो ठोस आधार मिलता है, वह जीवन भर उसे शक्ति प्रदान करता है। इस अवस्था में प्रदान की गई मंत्र-दीक्षा एवं उसकी प्रभावक चामत्कारिक घटनाओं का श्रवण बालक की विवेक चेतना को जागृत करता है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में भौतिकता की चकाचौंध के वातावरण में हमारी संस्कृति का मूल तत्त्व धुंधला होता जा रहा है। टी.वी., वीडियो की संस्कृति से बालकों में निषेधात्मक चिंतन, उत्तेजना और तिरस्कार के भाव उग्र होते जा रहे हैं, संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं। ऐसे समय में आवश्यकता है एक ऐसे सूत्र की जो बचपन में मार्गदर्शन, यौवन में साहस और आत्मविश्वास तथा बुढ़ापे में शांतिमय सहारा दे सकें। वह सूत्र है–नमस्कार महामंत्र (मंत्र-दीक्षा)। जिसकी अन्तर ध्वनि है–

सहजे सहजे सहजानंद,
अन्तरदृष्टि परमानन्द।
जहां देखूं तहा आत्मानन्द,
छूटे सहजे विषयानन्द॥

सन्दर्भ–

1. मंत्र-दीक्षा, पृ. 5, 6
2. वही, पृ. 9
3. वही, पृ. 9
4. युवादृष्टि, अक्टूबर, 1984 से उद्धृत, पृ. 71

16. ग्रह शांति और नमस्कार महामंत्र जप

नमस्कार महामंत्र श्रेष्ठ मंगल और सर्व हित साधक है। जब इसके ध्यान से आत्मा निर्वाण पद को प्राप्त कर सकता है, तब तुच्छ सांसारिक कार्यों की क्या गणना? ये तो आनुषंगिक रूप में स्वत: सिद्ध हो जाते हैं। तिलोयपण्णत्ति के प्रथम अधिकार में पंच-परमेष्ठी नमस्कार को समस्त विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाला एवं समस्त पाप विनाशक होने के कारण ईष्ट साधक एवं अनिष्ट विनाशक कहा है क्योंकि तीव्र पापोदय से ही कार्य में विघ्न उत्पन्न होते हैं अत: पाप विनाशक एवं मंगलकारी होने से यह इष्ट साधक है। प्राचीन एवं आधुनिक अनेक उद्धरण इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं।

यह महामंत्र समस्त प्रकार की ग्रह-बाधाओं एवं भूत-पिशाच आदि व्यन्तरों की पीड़ाओं को दूर करने वाला है। इसके प्रभाव से आधि, व्याधि का निरसन होकर सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। बड़ी से बड़ी विपत्तियां भी इसके प्रभाव के सामने प्रभावहीन पाई गई हैं। द्रौपदी का चीर बढ़ना, अंजन चोर के कष्ट का निवारण, सीता के लिए अग्निकुण्ड का जलकुण्ड बनना, अंजना-सती के सतीत्व की रक्षा का होना, रानी प्रभावती के शील की रक्षा आदि कार्यों की सफलता में इसी महाप्रभावक महामंत्र की पृष्ठभूमि रही है।

शक्ति का विकास : साधक की क्रिया शक्ति

बहुत यथार्थ कहा गया है—

मोती जैसे सीप में, खुशबू जैसे फूल।
तेरा साहिब तुझ में बसे, तू ही गया भूल॥

उपर्युक्त पंक्तियों में प्राणी की अनंत शक्ति का दिग्दर्शन देते हुए यह प्रेरणा दी गई है कि आत्म-शक्ति का विकास साधक की क्रिया और शक्ति पर निर्भर करता है। वह शक्ति स्वयं अपने ही भीतर है। उसकी खोज के लिए अन्तर्मुखता की अपेक्षा है।

मंत्र साधना में मंत्र की शक्ति के साथ साधक की शक्ति भी कार्यरत रहती है। एक ही मंत्र का फल विभिन्न साधकों को उनकी योग्यता, परिणाम, स्थिरता आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न मिलता है। अत: मंत्र के साथ साधक का भी महत्त्वपूर्ण संबंध है। वास्तविकता यह है कि मंत्र ध्वनि-रूप है और भिन्न-भिन्न

ध्वनियां 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक भिन्न शक्ति स्वरूप है।* प्रत्येक अक्षर में स्वतंत्र शक्ति निहित है, भिन्न-भिन्न अक्षरों के संयोग से भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियां उत्पन्न की जाती हैं। जो व्यक्ति उन ध्वनियों का मिश्रण करना जानता है, वह उन मिश्रित ध्वनियों के प्रयोग से उसी प्रकार के शक्तिशाली कार्य को सिद्ध कर लेता है। नमस्कार महामंत्र का ध्वनि समूह इस प्रकार का है कि इसके प्रयोग से भिन्न-भिन्न कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।

ध्वनियों के घर्षण से दो प्रकार की विद्युत् पैदा होती है—

1. धन विद्युत्—इस विद्युत् शक्ति के द्वारा बाह्य पदार्थों पर प्रभाव पड़ता है।

2. ऋण विद्युत्—यह विद्युत् शक्ति अंतरंग की रक्षा करती है।

आज का विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक पदार्थ में दोनों प्रकार की शक्तियां निहित होती हैं। मंत्र का उच्चारण और मनन इन शक्तियों का विकास करता है। जिस प्रकार जल में छिपी विद्युत्-शक्ति जल के मंथन से उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मंत्र के पुनः-पुनः उच्चारण से मंत्र के ध्वनि-समूह में छिपी शक्तियां विकसित हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न मंत्रों में यह शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है तथा शक्ति का विकास भी साधक की क्षमता पर निर्भर करता है। अतः नमस्कार महामंत्र की साधना सभी प्रकार की अभीष्ट-सिद्धि करने वाली एवं अनिष्टों को दूर करने वाली है।

ज्योतिष और ग्रह

शकुनशास्त्री शकुन के आधार पर, स्वरशास्त्री स्वर के आधार पर और ज्योतिषी ग्रहों की गति के आधार पर लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण का निर्णय करते हैं। ज्योतिष में नौ ग्रह माने गये हैं—

1. सूर्य,	2. चन्द्र,	3. मंगल,
4. बुध,	5. गुरु,	6. शुक्र,
7. शनि,	8. केतु,	9. राहु।

ज्योतिष-शास्त्र में ग्रहों को बहुत प्रभावशाली माना जाता है। ग्रह मानव तन पर सीधा प्रभाव नहीं डालते। उनकी एक प्रक्रिया है। ग्रहों से आने वाले विकिरण हमारे भावों पर प्रभाव डालते हैं, भाव मन पर प्रभाव डालते हैं और मन शरीर पर प्रभाव डालता है। इस प्रकार सौर-मण्डल से आने वाले विकिरण हमारे प्रत्येक कार्य को प्रभावित करते हैं।

---
* देखें परिशिष्ट-1

ज्योतिष ग्रन्थानुसार विजयादशमी का दिन विजय-काल कहलाता है। एक श्लोक में इसकी महत्ता का वर्णन उपलब्ध है–

आश्विनस्य सिते पक्षे, दशम्यां तारकोदयो।
स कालो विजया जेयः, सर्व कार्यार्थ सिद्धये॥

अर्थात् आश्विन शुक्ला दशमी के सायंकाल अगस्त्य नामक तारे के उदय होने के समय यह काल रहता है, जो चिंतामणि ग्रंथानुसार समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाला होता है। यह विजय नक्षत्र वर्षाकालीन पंकिल जल को निर्मल करता है। इस काल में श्रेष्ठ कार्य आरम्भ किये जाते हैं। प्राचीन काल में विजयेच्छुक नरेश अपने अस्त्र-शस्त्रों की पूजा कर विजयार्थ गमन करने में इस काल का बहुत उपयोग करते थे।

नवरात्रा के संबंध में मार्मिक वर्णन मिलता है कि एक वर्ष में 40 नवरात्र (360) दिन होते हैं। नौ-नौ विभागों में वर्ष विभाजित करने के पीछे भावना है कि काल अखण्ड है, नव की संख्या सबसे बड़ी इकाई होने के साथ अविनाशी है, किसी भी संख्या से गुणा कर गुणनफल जोड़े, योग नव ही आयेगा, जैसे– 18, 1+8=9, 27, 2+7=9 आदि। चैत्र आश्विन के नवरात्र के दिनों में दिन-रात सम होने से दिननायक–सूर्य की ऊर्जा अपेक्षाकृत अधिक समभाव से वितरित होती है, जिससे पृथ्वी पर कॉस्मिक एनर्जी का विशेष शक्तिपात होता है।

विक्रम पंचांगानुसार चैत्र व आश्विन में सौर मण्डल के नायक–सूर्य की गति अपनी दिशा बदलती है। ज्योतिष में इसको भुवन भास्कर का अयन परिवर्तन कहते हैं। चैत्र, आश्विन शुक्ल पक्ष की नव रात्रियां इस ब्रह्माण्डीय परिवर्तन का प्रारम्भ काल है। इन्हें क्रमशः बासंतिक व शारदीय नवरात्र कहा जाता है। बासंतिक नवरात्र में सूर्य की गति उत्तरायण और शारदीय नवरात्र में दक्षिणायन होती है।

नवरात्रों के ये दो कालखण्ड सौर विकिरणों की दृष्टि से साधना के लिए महत्त्वपूर्ण है। शक्ति के उपासक शक्ति की, देवी के उपासक देवी की तथा कर्म निर्जरार्थी जैन लोग आयंबिल (बिना नमक, मिर्च, घी, तेल के एक धान्य व पानी) तप के साथ नवपद (नवकार के पांच पद तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप) की आराधना करते हैं। संसार के शक्तिशाली मंत्रों में एक है–नमस्कार महामंत्र।

देवी के उपासक भी निराहार, स्वल्पाहार, फलाहार या रसाहार पर रहकर साधना करते हैं। कहा जाता है–श्रीराम ने नव दिन साधना-आराधना कर दिव्य धनुष बाण को प्राप्त किया था। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यह समय शारीरिक स्वास्थ्य, मन व भाव शुद्धि करने का अनुकूल समय है। इन दिनों

में एकाग्रता पूर्वक कृत जप से एक विशिष्ट प्रकार का ऊर्जावलय बनता है, रक्षा कवच निर्मित होता है।

सन् 2005 का घटना प्रसंग है। पीथास निवासी बाबूलालजी काल्या दो वर्षों तक काफी अस्वस्थ रहे। कभी हाथ-पैर का दुखना, कभी सिरदर्द तो कभी श्वास का प्रकोप। कोई इलाज कामयाब नहीं हो पा रहा था। नवसारी, सूरत, बीलीमोरा आदि अनेकों स्थानों से डॉक्टरों का इलाज चला। सब रिपोर्ट नॉर्मल रहती। प्रतिमाह लगभग 5,000 से 10,000 रुपयों की दवा पेट में जा रही थी पर कोई फायदे वाली बात नहीं बन रही थी।

एक दिन बाबूलालजी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के साहित्य का स्वाध्याय करते हुए निम्नोक्त पंक्तियां पढ़ीं– ''नवाह्निक (नवरात्रि) अनुष्ठान शक्ति-जागरण एवं शक्ति-संरक्षण के लिए उपयुक्त है। इन दिनों में किया गया मंत्र-अनुष्ठान शीघ्र फलदायी होता है। जीवन में शक्ति का विकास बहुत आवश्यक है। कोई आदमी कायर बने, कमजोर बने, अच्छा नहीं है। अनुष्ठान के नौ दिनों में मंगल-भावना के साथ शक्तियों का विकास करना चाहिए। वर्ष के 360 या 365 दिनों में कुछ दिन विकिरणों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं, उनमें साधना के विशेष प्रयोग किये जाते हैं। आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने के लिए कुछ प्रयोग बड़े लाभदायी होते हैं आदि-आदि।''

उपरोक्त स्वाध्याय करते-करते उनके मन में संकल्प जगा। मंत्र-चेतना के प्रति आस्था का जागरण हुआ। सन् 2005, आसोज महिने में नवरात्रि के समय उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ सब दवाओं का परित्याग कर दिया। नौ दिनों तक अपने खेत में जाकर एकान्त स्थान में तन्मयता और श्रद्धा के साथ प्रतिदिन एक-एक घंटा नमस्कार महामंत्र का जप किया। उन्हें एक-दो दिन में ही गहरी शांति और स्वस्थता का अनुभव होने लगा। इस तात्कालिक चमत्कार से उनकी श्रद्धा को और अधिक बल मिला। वे जप की गहराई में जाने लगे। नौ दिनों के जप-अनुष्ठान के पश्चात् उन्होंने पूर्ण स्वस्थता का अनुभव किया। तब से अब तक वे स्वस्थता एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

उपरोक्त घटना के निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि नमस्कार महामंत्र अचिंत्य चिंतामणि है। श्रद्धा पूर्वक इसका जप करने से जपकर्त्ता के चारों ओर प्राणशक्ति के विशिष्ट प्रकंपनों का जाल बिछ जाता है। नई ऊर्जा के साथ-साथ आरोग्य तथा बोधि लाभ भी उसे स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं। सब ग्रह उसके मित्र तुल्य बन जाते हैं।

जैसे ज्योतिष का सौर मंडल है, वैसे ही अध्यात्म का भी सौर-मंडल है। ज्योतिष में नौ ग्रह माने जाते हैं, अध्यात्म में भी नौ ग्रह सम्मत हैं। सारा सौरमंडल हमारे शरीर के भीतर है।[1] दोनों का तुलनात्मक अध्ययन इस निष्कर्ष पर निकलता है–

अध्यात्म के नौ ग्रह	ज्योतिष के नो ग्रह
ज्योति-केन्द्र (दायां मस्तिष्क)	गुरु का क्षेत्र
दर्शन-केन्द्र (लघु मस्तिष्क)	बुध का क्षेत्र
शक्ति-केन्द्र	राहु, बुध का क्षेत्र
आनन्द-केन्द्र	मंगल का क्षेत्र
विशुद्धि-केन्द्र	चन्द्रमा का क्षेत्र
स्वास्थ्य-केन्द्र	शुक्र का क्षेत्र
तैजस-केन्द्र	सूर्य का क्षेत्र
ज्ञान-केन्द्र	शनि का क्षेत्र
शांति-केन्द्र	केतु का क्षेत्र

ग्रह और रंग

आधुनिक विज्ञान के अनुसार रंगों का सारा खेल परमाणु (प्रकाश) और विकिरणों की तरंगों की न्यूनाधिकता, लंबाई के कारण उपजता है। प्रत्येक परमाणु नाभिक के बाहर चक्कर लगाते हैं। इलेक्ट्रॉन विशिष्ट लम्बाई की रेडियो तरंगों को सोखने की क्षमता रखते हैं। ये बाहरी कक्षाओं में कूद जाते हैं। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब वे पराबैंगानी प्रकाश किरणों को अवशोषित करते हैं। यह उत्तेजना की स्थिति थोड़ी देर बनी रहती है। वापस सामान्य स्थिति होती रहती है। इस मध्यावधि में परिवर्तित प्रक्रिया से एक निश्चित तरंग लम्बाई के कीटोन-कण उत्सर्जित होते हैं। इस प्रकार के उत्सर्जित विकिरण की तरंग लम्बाई ही सात रंगों में से किसी एक रंग का निर्धारण करती है, जिन्हें मस्तिष्क का विजुअल कॉन्टेक्स पहचानता है व मस्तिष्क को यह बताता है कि यह कौन-सा रंग है। सौर किरणों एवं प्रकृति में विद्यमान रंगों की शोध करने वाले वैज्ञानिकों का मत है कि भिन्न-भिन्न रंग व्यक्ति विशेष की मन:स्थिति के आधार पर अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। रंगों का असर विशेष के अनुरूप किस प्रकार चुना जाये, इसका आधार उनसे उत्पन्न संवेदन प्रक्रिया ही है।

ज्योतिष शास्त्र में भी सभी ग्रहों के अपने-अपने रंगों का उल्लेख है। ज्योतिष शास्त्र में बताया गया हे कि किसी भी व्यक्ति की जन्मकुंडली का विश्लेषण करके यह जाना जा सकता है कि कौन-सा ग्रह अत्यधिक निर्बल है। निर्बल ग्रह से संबंधित रंग का प्रयोग करके उसकी अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

सूर्य–ग्रह राज सूर्य का रंग लाल है। कुंडली में यदि सूर्य निर्बल हो तो लाल रंग का प्रयोग करके हम उसे बलशाली बना सकते हैं।

मंगल–मंगल का रंग केसरिया लाल है। इस रंग का प्रयोग कर मंगल ग्रह की अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

चन्द्र–चन्द्रमा का रंग सफेद है। सफेद रंग का प्रयोग करके हम इसकी अनुकूलता प्राप्त कर सकते हैं।

बुध–बुध का रंग हरा है। हरे रंग का प्रयोग करके बुध की अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

गुरु–बृहस्पति का रंग पीला है। पीले रंग का प्रयोग करके गुरु की अनुकूलता प्राप्त की जा सकती है।

शुक्र–शुक्र का रंग आसमानी सफेद है। इसकी अनुकूलता के लिए सफेद रंग का प्रयोग किया जाता है।

शनि, राहु, केतु–इन तीनों ग्रहों का रंग नीला है। नीले रंग का प्रयोग कर इनकी अनुकूलताएं प्राप्त की जा सकती हैं।

ग्रहशांति और नमस्कार जप (रंगों और अध्यात्म ग्रहों के साथ)

सूर्य

सौरमण्डल में सबसे ज्यादा तैजस शक्ति सम्पन्न है–सूर्य। कुछ लोग मानते हैं कि सूर्य से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसी सूर्य की साधना कविराज गोपीनाथ के गुरु विशुद्धानंदजी ने की थी। कुछ अन्य लोग भी इसके रहस्य को जानते हैं। सूर्य की रश्मियों का समुचित योग करने पर पदार्थ का निर्माण किया जा सकता है। इसके अनेक प्रयोग सिद्ध हो चुके हैं।

जैन आगमों में वर्णित भावितात्मा अनगार के लिए भी ऐसा उल्लेख मिलता है, वह एक घड़े में से हजारों घड़ों का निर्माण कर सकता है। सूर्य में वह शक्ति है, वह हमारी प्राण शक्ति का आधार है। तैजस शक्ति के विकास का एक साधन है–आकाश मंडल में रहने वाला सूर्य। एक सूर्य हमारे शरीर के भीतर रहता है। हमारा तैजस-केन्द्र सूर्य का स्थान है। इन दोनों सूर्यों की उपासना और साधना

के द्वारा तैजस शक्ति का विकास होता है। बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं – मनोबल, संकल्प बल, सहनशक्ति – इन सबका विकास तैजस शक्ति के बिना कहां? तेजोलेश्या का विकास नहीं होगा तो विनम्रता कहां से आयेगी? इसी तथ्य की पुष्टि में उत्तराध्ययन की निम्नोक्त पंक्तियां साक्ष्य हैं–

नीयावित्ती अचपले, अमाई अकुऊहले।
विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं॥[2]
पियधम्मे दढ धम्मे, वज्जभीरु हिएसए।
एयजोगसमाउतो, तेउलेसं तु॥[3]

अर्थात् जो मनुष्य नम्रता से बर्ताव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने में निपुण है, दांत है, समाधियुक्त है, उपधान (श्रुत अध्ययन करते समय तप) करने वाला है।

जो धर्म में प्रेम रखता है, धर्म में दृढ़ है, पापभीरू है, हित चाहने वाला है, जो उपरोक्त सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह तेजोलेश्या में परिणत होता है।

श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहु तथा अन्य आचार्यों द्वारा रचित ग्रह शांति स्तोत्रों के अनुसार नमस्कार महामंत्र के नियमित जप से तथा तीर्थंकरों के मंत्र जप से अमुक-अमुक ग्रहों का दोष शांत होता है। रंगों के अनुसार नमस्कार महामंत्र के पांच पदों के मंत्र नव ग्रहों के रंगों के अनुसार योजित किये गये हैं– शरीरस्थ ग्रहों के स्थानों के साथ। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने मंत्र : एक समाधान में इनकी सारी प्रक्रिया प्रस्तुत की है। यथा–

सूर्य ग्रह

1. **समस्या**–सूर्य ग्रह जनित।
2. **समाधान**–चैतन्य केन्द्र पर रंग के साथ मंत्र-जप।
3. **चैतन्य केन्द्र**–तैजस केन्द्र।
4. **मंत्र**–ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं।
5. **मंत्र संख्या**–प्रतिदिन एक-एक माला।
6. **रंग**–अरुण रंग।
7. **प्रयोग विधि**– (1) तैजस केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें।
   (2) अरुण रंग का ध्यान करें।
8. **परिणाम**–सूर्य ग्रह जनित समस्या का निवारण।[4]

प्रारम्भ में इक्कीस दिन तक अपने रंग की माला के साथ प्रतिदिन दस-दस माला फेरने के पश्चात् प्रतिदिन एक माला फेरने का विधान मिलता है।

इसी प्रकार चन्द्र ग्रह शांति के लिए विशुद्धि-केन्द्र पर श्वेत रंग में ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं का जप, मंगल ग्रह शांति के लिए आनन्द-केन्द्र पर अरुण रंग में ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं का जप, बुध ग्रह शांति के लिए शक्ति-केन्द्र पर हरे रंग में ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं का जप, गुरु ग्रह शांति के लिए दर्शन-केन्द्र पर पीले रंग में ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं का जप, शुक्र ग्रह शांति के लिए स्वास्थ्य-केन्द्र पर श्वेत रंग में ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं का जप, शनि ग्रह शांति के लिए ज्ञान-केन्द्र पर नीले रंग में ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं का जप उपरोक्त विधि से अपने रंग की माला के साथ करने से ग्रहों की अनुकूलता बनी रहने के कारण बाह्य और आभ्यन्तर गुणों को विकसित किया जा सकता है।

ग्रह शांति	तीर्थंकर जप
सूर्य	ॐ ह्रीं पद्मप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। लाल रंग की माला से 7,000 जप।
चन्द्र	ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभो! नमस्तुभ्यं मम् शांतिः शांतिः। श्वेत रंग की माला से 6,000 जप।
मंगल	ॐ ह्रीं वासुपूज्यप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। लाल रंग की माला से 8,000 जप।
बुध	ॐ ह्रीं शांतिनाथ प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। पीले रंग की माला से 12,000 जप।
शुक्र	ॐ ह्रीं सुविधि नाथप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांति। श्वेत रंग की माला से 11,000 जप।
शनि	ॐ ह्रीं मुनि सुव्रत प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से 32,000 जप।
केतु	ॐ ह्रीं पार्श्वप्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से 21,000 जप।
राहु	ॐ ह्रीं नेमिनाथ प्रभो! नमस्तुभ्यं मम शांतिः शांतिः। नीले रंग की माला से 21,000 जप।[5]

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ग्रह, उपग्रह से जो रश्मियां निकलती हैं, उनका भी शारीरिक वर्गणाओं के अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव होता है। विभिन्न रंगों के शीशों द्वारा सूर्य रश्मियों को एकत्रित कर शरीर पर डाला जाये तो स्वास्थ्य या मन पर उनकी विभिन्न प्रतिक्रियाएं होती हैं। संगठित दशा में हमें तत्काल उनका असर मालूम पड़ता है। असंगठित दशा और सूक्ष्म रूप में उनका जो असर हमारे ऊपर होता है, उसे हम पकड़ नहीं सकते। इसी प्रकार ज्योतिर्विद्या में उल्का की ओर योग-विद्या में विविध रंगों की प्रतिक्रिया भी उनकी रश्मियों के प्रभाव से होती है।

यह सारा बाहरी प्रभाव है। अपनी आन्तरिक वृत्तियों का भी अपने पर प्रभाव पड़ता है। ध्यान, जप अथवा मानसिक एकाग्रता से चंचलता की कमी होने से आत्मशक्ति का विकास होता है। मानसिक अनिष्ट चिंतन में वे प्रतिकूल वर्गणाएं अनुकूल प्रभाव डालती हैं।

जप की मुख्यतः तीन निष्पत्तियां हैं—आत्म विकास, आत्मशांति और आनन्द की प्राप्ति। मुख्यतः मंत्र जप से होने वाले लाभ तथा चमत्कार के चार कारण सुझाये जा सकते हैं—

1. मंत्र स्रष्टा का आध्यात्मिक बल।
2. शब्दों का अपना सामर्थ्य।
3. ध्वनि प्रकंपन।
4. शब्दाकृतियों के नायक अधिदेवता।

नमस्कार महामंत्र का जप समता, संतोष, शांति, संबल, सफलता, सबलता और स्वास्थ्य देता है। सबका हित साधक होने के कारण इसके जप से सब ग्रह अपना अनुकूल प्रभाव दिखाते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि आचार्यश्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियों में खोजी जा सकती है।

अशुभानि प्रलयन्त्वखिलानी।
तत् स्मर्णार्जित-सुकृत भरैः॥

अर्थात् पंच परमेष्ठी के स्मरण से अर्जित सुकृत समूह से सारे अशुभ कर्म प्रलयता को प्राप्त हो जाते हैं।

सन्दर्भ –

1. मैं कुछ होना चाहता हूँ, पृ. 96, णमो अरहंताणं, पृ. 209
2. उत्तराध्ययन, अध्ययन-34, गाथा-27
3. उत्तराध्ययन, अध्ययन-34, गाथा-28
4. मंत्र : एक समाधान, पृ. 161
5. उपासना कक्ष, पृ. 30-31

17. राशि और महामंत्र जप

भारत के प्राचीन ऋषियों एवं दिव्य द्रष्टाओं ने अपनी अद्भुत ज्ञान क्षमता के बल पर नभमंडल का अध्ययन किया और उसका संबंध मनुष्य से जोड़कर जो विधान बनाया, वह ज्योतिष के नाम से स्थापित हो गया। ज्योतिष-विज्ञान, दर्शन-शास्त्र का एक अंग है, जिसका अध्ययन बहुत सूक्ष्म एवं गहन हैं।

ज्योतिष के संबंध में जन धारणा कुछ भी रही हो लेकिन इनके मूल तथ्यों की सच्चाई को कोई इन्कार नहीं कर सकता। यह सर्व विदित तथ्य है कि सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रहों की रश्मियां पृथ्वी पर पड़ती हैं। यही कारण है कि पुष्प प्रात: खिलते हैं, सायं सिमट जाते हैं। बिल्ली की नेत्र-पुतलियां चन्द्रकला के अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं। मनुष्य की राशि उसके मनोमस्तिष्क, व्यवहार और सम्पूर्ण स्वभाव का एक्स-रे है।

प्राचीन आचार्यों ने अपनी नाम राशि के अनुसार नमस्कार महामंत्र के मंत्रों का नियोजन किया है, जिसके द्वारा अपने गुणात्मक पक्ष को उजागर रखा जा सकता है।

प्रत्येक राशि का अपना शुभ बार, शुभ तारीख, शुभ संख्या, शुभ रंग और शुभ दिशा होती हैं। इस तालिका को निम्नोक्त रूप से समझा जा सकता है[1]—

1. मेष राशि—

नामाक्षर—चू, चे, चो, ला, ली, लू, ले, लो, आ

शुभ बार—मंगलवार, रविवार

शुभ तारीख—9, 18, 27

शुभ संख्या—9

शुभ रंग—लाल, केसरिया, गुलाबी

शुभ दिशा—पूर्व

मंत्र जप—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं

2. वृष राशि—

नामाक्षर—इ, उ, ए, ओ, वा, वी, वू, वे, वो

शुभ बार—शुक्रवार, शनिवार

शुभ तारीख—6, 15, 24

शुभ संख्या—6

शुभ रंग—आसमानी, सफेद एवं हल्का क्रीम

शुभ दिशा—उत्तर

मंत्र जप—ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं

3. मिथुन राशि

नामाक्षर—का, की, कू, घ, ङ, छ, के, को, हा

शुभ वार—बुधवार, शुक्रवार

शुभ तारीख—5, 14, 23

शुभ संख्या—5

शुभ रंग—तोतिया हरा

शुभ दिशा—उत्तर

मंत्र जप—ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं

4. कर्क राशि

नामाक्षर—ही, हू, हे, हो, ड़ा, ड़ी, डू, ड़े, ड़ो

शुभ वार—सोमवार, रविवार, मंगलवार

शुभ तारीख—2, 20, 29

शुभ संख्या—2

शुभ रंग—सफेद, क्रीम, ऑफ व्हाईट

शुभ दिशा—ईशान

मंत्र जप—ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं

5. सिंह राशि

नामाक्षर—मा, नी, मू, मे, मो, टा, टी, टू, टे

शुभ वार—सोमवार, रविवार

शुभ तारीख—1, 10, 19, 28

शुभ संख्या—1

शुभ रंग–पीला, सुनहरी और लाल

शुभ दिशा–पूर्व

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं

6. कन्या राशि

नामाक्षर–टो, पा, पी, पू, षा, णा, ठा, पे, पो

शुभ वार–बुधवार, रविवार

शुभ तारीख–5, 14, 23

शुभ संख्या–5

शुभ रंग–अंगूरी, हरा

शुभ दिशा–उत्तर

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं

7. तुला राशि

नामाक्षर–रा, री, रू, रे, रो, ता, ती, तू, ते

शुभ वार–शुक्रवार, शनिवार

शुभ तारीख–6, 15, 24

शुभ संख्या–6

शुभ रंग–आसमानी, सफेद, हल्का क्रीम

शुभ दिशा–आग्नेय

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं

8. वृश्चिक राशि

नामाक्षर–तो, ना, नी, नू, ने, नो, या, यी, यू

शुभ वार–मंगलवार, रविवार

शुभ तारीख–9, 18, 27

शुभ रंग–लाल, केसरिया, गुलाबी

शुभ दिशा–दक्षिण, पूर्व

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं

9. धनु राशि

नामाक्षर–ये, यो, भा, भी, भू, धा, फा, ढा, भे

शुभ वार–गुरुवार, सोमवार

शुभ तारीख–3, 12, 21

शुभ संख्या–3

शुभ रंग–पीला, सुनहरी, क्रीम

शुभ दिशा–ईशान

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं

10. मकर राशि

नामाक्षर–भो, जा, जी, खी, खू, खे, खो, गा, गी

शुभ वार–शनिवार

शुभ तारीख–8, 17, 26

शुभ संख्या–8

शुभ रंग–नीला, काला, बैंगनी

शुभ दिशा–पश्चिम

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं

11. कुंभ राशि

नामाक्षर–गू, गे, गो, सा, सी, सू, से, सो, दा

शुभ वार–शनिवार

शुभ तारीख–8, 17, 26

शुभ संख्या–8

शुभ रंग–नीला, काला, बैंगनी

शुभ दिशा–पश्चिम

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं

12. मीन राशि

नामाक्षर–दी, दू, झा, ञा, था, दे, दो, पा, ची

शुभ वार–गुरुवार

शुभ तारीख–3, 12, 21, 30

शुभ संख्या–3

शुभ रंग–पीला, सुनहरी

शुभ दिशा–ईशान, उत्तर

मंत्र जप–ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं।

उपरोक्त विवरण के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ऐसी कोई भी व्याधि नहीं है, जिसके उपशम के लिए कोई-न-कोई मंत्र निर्दिष्ट न किया गया हो, फिर चाहे वह व्याधि शारीरिक हो या मानसिक। प्रभु भक्ति और भावों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना की शक्ति की अभिव्यक्ति में एक प्राचीन पद है–

भजन बराबर औषध नाहिं, सब रोगों को दूर करें।
तन व्याधि का क्या कहना, वह मन व्याधि निर्मूल करें॥

निःसंदेह मंत्र का एक अनूठा विज्ञान है। उसके द्वारा चिकित्सा की जा सकती है। शक्ति और धन प्राप्त किया जा सकता है। अनिष्ट निवारण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख–इन सबमें मंत्र प्रयोग की असंदिग्धता निर्विवाद सिद्ध है। सचमुच नमस्कार महामंत्र में उपरोक्त सर्वक्षमताएं विद्यमान हैं। इस महामंत्र को निःस्वार्थ भाव से जपने से शत्रु मित्र रूप, विष अमृत रूप, विपत्ति सम्पत्ति रूप और दुःख सुख रूप में परिणत हो जाता है। यह महाप्रभावशाली, महाविघ्न विदारक और महामंगलकारी महामंत्र है। आचार्यश्री तुलसी ने पंच परमेष्ठी की स्तुति में कहा है[2]–

सर्वेर्हन्तः केवलज्ञानवन्तः,
सर्वे सिद्धाः सिद्धि-सौध-प्रसिद्धाः।
धर्माचार्या ये ह्युपाध्याय वर्या,
सर्वे सन्तो वन्दनीया महान्तः॥

सन्दर्भ–

1. आपकी राशि आपका समाधान
2. चतुर्विंशति-गुण-गेय-गीतिः, गाथा-37

18. नमस्कार महामंत्र और सामुदायिक चेतना

मनुष्य और समाज का रिश्ता आहार, सुरक्षा, ज्ञान-पिपासा और संग्रह वृत्तियों की पूर्ति हेतु होता है। जीवन की इन आवश्यकताओं की पूर्ति में यदि संयम को नहीं अपनाया जाता है तो उस समूह के व्यक्ति वाणी, विचार अथवा व्यवहार से आपस में टकराते हैं। वर्तमान प्रगति ने भौतिक समृद्धि की अभिनव दिशाओं का उद्घाटन किया है। जो सुविधाएं विश्व के सत्ताधीशों और धन-कुबरों के लिए सुलभ नहीं थीं, वे आज जन-मानस के लिए सुलभ हैं किन्तु दूसरी ओर मानव समाज में मानसिक तनाव और टकराव बढ़ रहा है, जिसका प्रमुख कारण है—असंयम।

जीवन का सौन्दर्य संयम और सात्विकता में ही है। कुछ समय पूर्व अमेरिका में सामाजिक परिस्थितियों का एक सर्वेक्षण हुआ, जिसके अनुसार यह विदित हुआ कि शांति और समन्वय का विकास अपेक्षाकृत उन परिवारों में अधिक था जिन परिवारों में संयम और अध्यात्म के संस्कार थे। संयम के अनेक प्रकार हैं—आहार-संयम, इच्छा-संयम, इन्द्रिय-संयम, वाणी-संयम, काय-संयम, मन का संयम आदि। जिस परिवार, समाज, संघ के सदस्य अथवा देश के नागरिक इच्छाओं का संयम करके चलते हैं, वह परिवार, समाज, संघ अथवा देश ऊर्जा एवं भौतिक सम्पदा से सम्पन्न तो बनता ही है, साथ-साथ में वहां द्वन्द्व और संघर्ष के प्रसंग भी समाप्त हो जाते हैं। उनकी एकता और संगठन भी सुदृढ़ बनता है।

भारत की स्वतंत्रता यहां के लोगों के त्याग और संयम के बल पर ही हुई थी। प्रत्येक देश में सामाजिक जीवन की स्थिरता तथा अच्छे संस्कारों के सृजन हेतु अच्छी शिक्षा, व्यवस्था, स्वास्थ्य, परिवेश, अच्छी पत्र-प्रत्रिकाएं और टी.वी., रेडियो आदि के अलावा अच्छी अर्थ-व्यवस्था भी की जाती है। मनुष्य का सामाजिक आचार कुछ जीवन मूल्यों पर आधारित होता है। ये मूल्य उनके संस्कारों से ही निकलते हैं। इसलिए संस्कारों का मनुष्य के आचरण में बहुत महत्त्व है। गुरुदेव श्री तुलसी की वाणी में यही प्रतिध्वनि ध्वनित हो रही है—

संस्कारों का जागरण, होता जहां प्रकाम।
खुलते रहते हैं वहां, नये-नये आयाम॥ [1]

जो त्याग, सेवा या परोपकार को मूल्यवान समझते हैं, उनमें देशभक्ति, सेवावृत्ति, मानवता और प्रेम के संस्कार भी देखे जा सकते हैं। इन सम्यक् संस्कारों के जागरण से भावनात्मक एकता का विकास होता है।

हमारा प्रतिरोधक तंत्र मस्तिष्क से जुड़ा है इसलिए वह भावनाओं से प्रभावित होता है। पवित्र एवं संयममय भावों के सृजन में नमस्कार महामंत्र की अहं भूमिका है। इसकी अद्वितीय एवं अलौकिक शक्ति को निरन्तर एकाग्रता पूर्वक विभिन्न प्रयोगों अर्थात् अभ्यास पद्धतियों के द्वारा प्रस्फुटित किया जाये तो सामाजिक अभ्युदय के हेतुभूत आत्मिक एवं व्यावहारिक गुणों का प्रभुत्व सिद्ध हो सकता है, यथा–

- ❊ आत्मबल का आविर्भाव।
- ❊ निरन्तर विशुद्धि की ओर प्रगतिशील आत्म-परिणाम।
- ❊ पदार्थवादी चेतना तथा असंयम की प्रवृत्ति के आकर्षण में न्यूनता।
- ❊ मन:कायिक रोगों से मुक्ति।
- ❊ तनाव विसर्जन।
- ❊ संवेग नियंत्रण।
- ❊ अपराधी तथा आक्रामक वृत्तियों पर अनुशासन।
- ❊ बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास।
- ❊ प्रसन्नता, उल्लास, शक्ति और आनंद का प्रस्फुटन।

व्यवहार के धरातल पर नमस्कार महामंत्र का प्रयोजन है–व्यक्तित्व का समग्र विकास। इस महामंत्र की ध्वनियों में अन्तर्भेदी नाद है, जिससे शरीर स्थित चेतना-केन्द्र गतिमान बनते हैं। इसके वर्ण ध्यान से शरीर के रोग दूर होते हैं। जपाकार तरंगों से मानसिक शक्तियां जागृत होने लगती हैं। अत: नमस्कार महामंत्र की साधना से सामुदायिक चेतना अर्थात् परस्परता, सहिष्णुता, उदारता, प्रामाणिकता, नैतिकता, विनम्रता आदि गुणों का सुखद साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है।

लौकिक लोकोत्तर सिद्धि का सेतु

नमस्कार महामंत्र एक लोकोत्तर मंत्र है। लौकिक मंत्रों के द्वारा केवल लौकिक कार्य ही सिद्ध होते हैं परन्तु नमस्कार महामंत्र से लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार के कार्यों की सिद्धि होती है। जीवन में आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याएं, जो अधिकतर मानसिक दुर्बलता के कारण उत्पन्न होती हैं, उनको सुलझाने में नमस्कार महामंत्र का चामत्कारिक प्रभाव निर्विवाद सिद्ध है। उदाहरण स्वरूप आत्मरक्षा कवच को ही लें। जीवन

में आत्मरक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। मंत्र शास्त्रानुसार कोई भी साधक मंत्र-साधना करने से पूर्व आत्म-रक्षा कवच धारण करता है, जिसका उद्देश्य है– साधना में किसी भी प्रकार का भय तथा विघ्न बाधाएं न आए। सामान्यत: प्रतिदिन प्रात:काल घर से बाहर निकलने से पूर्व नमस्कार महामंत्र का आत्मरक्षा कवच धारण कर लेने से बाहरी भय, उपद्रव, दुर्घटना आदि से रक्षा होती है। दुष्ट शक्तियों का प्रभाव तथा प्रहार नहीं चल सकता।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अपनी जान-माल की रक्षा-सुरक्षा वर्तमान जीवनशैली का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हर व्यक्ति अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित है। नमस्कार महामंत्र युक्त आत्मरक्षा कवच* इस समस्या का एक सुन्दर और चामत्कारिक समाधान हो सकता है। इस कवच से आत्मिक शक्ति बढ़ती है। मनोबल दृढ़ होता है तथा बाहरी आघात दुर्घटनाएं स्वयं टल जाती हैं। नमस्कार महामंत्र से लोगों के रोग, भय, दरिद्रता, विपत्तियां दूर होने की अनुभव सिद्ध घटनाएं विश्रुत हैं। शुद्ध मन से इसका ध्यान करने पर भय, विपत्ति, उपसर्ग से रक्षा होती है। यह महामंत्र कवच की भांति रक्षा करता है। अशुभ ग्रहों की पीड़ा, भूत, प्रेत एवं हिंसक जीवों का उपद्रव दूर करता है। आरोग्य, सुख, समृद्धि की श्रीवृद्धि करता है।

साध्वीश्री दीपांजी विहार करती हुई किसी जंगल से गुजर रही थीं। मार्ग में कुछ लुटेरे मिले। कंधों पर सामान देखकर लेने के लिए मचल पड़े। साध्वियों ने समझाया–हमें मत छूओ, तुम्हें सामान ही चाहिए हम दूर रख देती हैं, तुम जानो; और तत्काल ही सामान का ढेर लगा दिया। कुछ दूरी पर साध्वी दीपांजी ने सब साध्वियों को गोल घेरे में बिठला दिया। स्वयं घेरे के बीच में बैठ गईं। उदात्त स्वर से सब साध्वियां नमस्कार महामंत्र का जप करने लगीं।

यह क्या गुनगुनाहट कर रही हो? लुटेरे चमके, कहीं हमारे हाथ-पैर न चिपका दें।

साध्वी दीपांजी–हम हमारा मंत्र स्मरण कर रही हैं।

'यह मत करो।'

साध्वी दीपांजी–करें क्यों नहीं, जरूर करेंगी। तुम्हें तो सामान चाहिए सो तो यह है ही।

देखें परिशिष्ट–1

लुटेरे घबराए और बोले—लो छोड़ते हैं, हमें नहीं चाहिए और वे सामान ज्यों का त्यों छोड़कर चलते बने।

सचमुच नमस्कार महामंत्र जीवन की समस्याओं, कठिनाइयों, चिंताओं, बाधाओं से पार पहुँचाने में सबसे बड़ा आत्म सहायक है। परन्तु सिर्फ भौतिक लाभ के लिए नमस्कार महामंत्र न जपे। जीवन में सदैव महान् ध्येय रखने से छोटे-मोटे भौतिक लाभ तो स्वत: सुलभ हो जाते हैं।

सामुदायिक चेतना के विकास में महामंत्र की मूल्यवत्ता

सामाजिक प्राणी के लिए सामाजिकता, आर्थिकता, राजनैतिकता और आध्यात्मिकता—इन सबकी आवश्यकता रहती है। इन सबके सन्दर्भ में ही जीवन संतुलित रहता है। सामुदायिक चेतना के विकास हेतु गुरुदेव श्री तुलसी की निम्नोक्त पंक्तियां पठनीय हैं—

मानवीय संबंध का, होता तभी विकास।
क्रोध आदि कृत विघ्न का, हो जाता व्यपनाश॥

सामुदायिक चेतना को जागृत रखने का एक उपाय है—मानवीय संबंधों का विस्तार। मानवीय संबंधों के विस्तार के लिए कषाय को उपशांत करना आवश्यक है। जब तक क्रोध, मान, माया, लोभ जनित बाधाएं पार नहीं होती, व्यक्ति का स्वार्थी मनोभाव कम नहीं होता तब तक संबंधों का विकास नहीं हो सकता। इसलिए कषाय उपशांति की बात महत्त्वपूर्ण है। सामुदायिक चेतना के विषय में नमस्कार महामंत्र की मूल्यवत्ता इसलिए बढ़ जाती है कि इस महामंत्र के जप से कषाय क्षीण होते हैं। 'णमो अरहंताणं', 'ॐ अर्हम्' ये कषाय उपशांति के मंत्र हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने अनुभव के आधार पर कहा है कि अन्तर्यात्रा के रहस्य को समझ लेने पर ही यह संभावना की जा सकती है कि 'णमो अरहंताणं' से कषाय क्षीण हो सकते हैं। शुद्ध चेतना की भूमिका में हमारा आरोहण हो सकता है।[2] इस यात्रा में 'णमो अरहंताणं' को शक्ति-केन्द्र पर जपते हुए सुषुम्ना मार्ग से क्रमश: तैजस-केन्द्र, आनन्द-केन्द्र, विशुद्धि-केन्द्र, तालु तथा दर्शन-केन्द्र पर मन को केन्द्रित करने से आत्म-साक्षात्कार की स्थिति बनती है।

शरीर शास्त्रीय भाषा में इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि आवेग के रसायन मस्तिष्क के इमोशनल एरिया में उत्पन्न होते हैं और वे अभिव्यक्त होते हैं—नाभि के पास, एड्रीनल ग्लैण्ड (तैजस-केन्द्र) के पास। यदि एड्रीनल ग्लैण्ड

पर नियंत्रण कर दिया जाये तो आवेग के रसायन नाभि तक जायेंगे पर अभिव्यक्त नहीं होंगे। हमारे शरीर में आवेग के उत्पन्न और अभिव्यक्त होने के अलग-अलग स्थान हैं।

चंचलता के कम होने पर आवेग उत्पन्न तो हो सकते हैं पर प्रकट नहीं हो सकते। जब आवेग प्रकट नहीं होते तब ज्ञान तंतु अपना कार्य बंद कर देते हैं। उस स्थिति में प्रमाद भी कम होने लगता है, इच्छा भी कम हो जाती है और दृष्टिकोण भी बदल जाता है। जब जीवन के प्रति, दूसरे व्यक्ति के प्रति, समाज के प्रति दृष्टिकोण बदलता है तो संवेदनशीलता का विकास होने पर व्यक्ति दूसरे के प्रति बुरा आचरण नहीं कर सकता और किसी का शोषण नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में ही नैतिकता पूर्ण एवं चारित्र निष्ठ समाज रचना की कल्पना की जा सकती है तथा भौतिक संपदा से सम्पन्न समाज संरचना का स्वप्न संजोया जा सकता है।

'णमो अरहंताणं' का जप कषाय उपशांति का मंत्र है तो 'णमो आयरियाणं' विधेयात्मक भावों को विकसित करने का मंत्र है। पारिवारिक सामंजस्य और मैत्री भावना के विकास के लिए आनन्द-केन्द्र पर हरे रंग की धारणा के साथ 'ॐ' का जप किया जा सकता है। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने ''मंत्र : एक समाधान'' में लिखा है, ''ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः'' मंत्र की प्रतिदिन एक माला फेरने से मानसिक शांति, कर्म विपाक का मंदीकरण तथा इष्ट सिद्धि होती है।[3] ''ॐ ह्रीं यैं णमो अरहंताणं'' मंत्र की प्रतिदिन एक माला सर्वतोमुखी विकास में सहायक होती है।[4] ''ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रं ह्रों ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा'' मंत्र की एक माला सूर्योदय से पहले जपने से सर्व प्रकार से शांति रहती है।

कर्म सिद्धान्त और सामाजिक संतुलन

महामना आचार्य श्री भिक्षु ने व्रताव्रत की चौपाई में लिखा है—विधिपूर्वक एक नमस्कार महामंत्र का जप करने वाला करोड़ों भवों के संचित कर्मों को क्षीण कर देता है। कर्मशास्त्र के अनुसार कर्मबंधन के अलग-अलग कारण हैं। ज्ञान या ज्ञानी की आशातना, ज्ञान प्राप्ति में विघ्न डालना, ज्ञानी से द्वेष रखना—ये प्रवृत्तियां मुख्यतः ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करती है, साथ-साथ में अन्य सात कर्मों का भी बंध होता है। जैसा-जैसा व्यक्ति का आचरण होता है, उससे संबंधित कर्म का बड़ा बंध होता है और शेष कर्मों का थोड़ा बंध होता है। शास्त्रों में जो कर्म बंध के कारण बताये हैं, उनके अनुकूल उपायों से उन-उन कर्मों के बंधन

को तोड़ा जा सकता है। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म को क्षीण करने के लिए ज्ञानी के प्रति मन में आदर के भाव, उनकी ज्ञान प्राप्ति में सहयोग, ज्ञानी की प्रशंसा आदि। इसी परिप्रेक्ष्य में नमस्कार महामंत्र के स्मरण को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. पढ़ने से पूर्व नमस्कार महामंत्र का स्मरण करने से बुद्धि बढ़ती है। बौद्धिक क्षमता के विकास का संबंध ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के साथ जुड़ा है।

2. सोने से पूर्व नवकार गिनने से नींद अच्छी आती है, नींद का संबंध दर्शनावरणीय कर्म के साथ जुड़ा है।

3. भोजन करने से पूर्व नवकार गिनने से आरोग्य बढ़ता है। आरोग्य का संबंध सात वेदनीय कर्म के साथ जुड़ा हुआ है।

4. क्लेश के समय नवकार गिनने से शांति, समाधि का अनुभव होता है। शांति का संबंध मोह कर्म के क्षयोपशम के साथ जुड़ा हुआ है।

5. वाहन में बैठते समय नवकार गिनने से अकस्मात् मृत्यु से बच सकते हैं। मृत्यु का संबंध आयुष्य कर्म के साथ जुड़ा हुआ है।

6. तन्मयता पूर्वक नमस्कार महामंत्र का स्मरण करने से कीर्ति, यश, प्रशंसा आदि की वृद्धि होती है, जिनका संबंध शुभ नाम कर्म के साथ जुड़ा हुआ है।

7. पूज्य बुद्धि से अहोभाव पूर्वक नवकार गिनने वाला पूजनीय बन जाता है, जिसका संबंध गोत्र कर्म के साथ जुड़ा हुआ है।

8. हर घड़ी हर पल अर्थात् बार-बार नवकार गिनने से प्रत्येक कार्य की अन्तराय दूर होती है।

जैन दर्शन के इस कर्म सिद्धान्त से यह तथ्य सामने आता है कि अशुभ प्रवृत्तियों से कर्मों का बंधन और शुभ प्रवृत्तियों से कर्मों की निर्जरा होती है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अनिष्ट चिंतन और अनैतिक आचरण जैसे विकृत विचार प्रभावशाली व्यक्तित्व के बाधक तत्त्व हैं। जीवन मूल्य और सांस्कृतिक मौलिक तत्त्वों को उपेक्षित कर चलने वाला समाज स्वस्थ और तेजस्वी नहीं बन सकता। समाज का निर्माण विश्वास से होता है और आचरण के नियमों के आधार पर उसका संचालन होता है। उस समूह के सदस्यों की स्वत: संचालित पारस्परिक समझ होती है कि हम किसी का अहित नहीं करेंगे। जब इस आचरण में कमी आने

लगती है तब वह समाज कमजोर होने लगता है। दूसरों के अभ्युदय को देखकर यदि ईर्ष्या का भाव पैदा होता है, तो उस समाज के लिए एक दु:खद स्थिति है। किसी की योग्यता पर, सफलता पर समाज के अन्य सदस्यों को प्रोत्साहित नहीं करते हैं, उसकी योग्यता का सम्मान नहीं करते हैं तो वे अपने समूह को कमजोर बनाते हैं। साथ-साथ में अपने स्वास्थ्य को भी कमजोर बनाते हैं। आज का मनोवैज्ञानिक भी इस बात को बहुत अच्छी तरह से मानता है कि मन में ईर्ष्या, घृणा, जलन, कुढ़न के रहने से अल्सर रोग, ऐश्वर्य, ठाट-बाट, उच्च पद को देखकर जलने से गठिया रोग, आलोचना, चुगली, बुराई करने से जोड़ों का दर्द, अत्याचार करने से रक्त विकार, सिर्फ अपनी भलाई और दूसरों की बुराई की बात सोचने से हृदय रोग होने की संभावनाएं बढ़ती हैं।

जहां समूह है, वहां कोई बुद्धिमान, कोई अच्छा व्यापारी, कोई अच्छा वक्ता, कोई अच्छा लोकप्रिय होता है। संतुलित जीवन विकास के लिए धैर्य, सहिष्णुता, सामंजस्य और प्रोत्साहन की अत्यन्त अपेक्षा होती है। सामाजिक संतुलन में महामंत्र नवकार की उपयोगिता इसलिए वरदान बनती है कि इससे कर्म निर्जरा के साथ-साथ दर्शन (दृष्टि) की शुद्धि होती है। चित्त की निर्मलता के साथ-साथ अहं का विसर्जन होता है। प्रतिभा विकास के साथ-साथ चरित्रनिष्ठ व्यक्तित्व का निर्माण होता है। आचारशुद्धि और व्यवहारशुद्धि–ये दोनों सूत्र सुखद भविष्य के मंत्र हैं। आचार शुद्धि का तात्पर्य व्यक्ति गृहस्थ के आवश्यक कार्यों को करता हुआ भी अपने जीवन व्यवहार में प्रामाणिक और नीतिनिष्ठ रहे।

समाज में कोई व्यक्ति खेती करता है, कोई व्यापार करता है, कोई अध्यापन का कार्य करता है, कोई पुलिस और सेवा में सेवारत हैं, किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति का विवेक कितना जागृत है। वह अपने आचरण व्यवहार से किसी को धोखा तो नहीं दे रहा है, किसी की बुराई तो नहीं करता है। अन्त:करण की यही पवित्रता सामाजिक संतुलन का ठोस आधार बनती है। कर्म सिद्धान्त को समझने वाला इसको बरकरार रख सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नमस्कार महामंत्र की विधिवत् आराधना व सम्यक् श्रद्धा से शरीर बल, मनोबल, चारित्र बल और बुद्धि बल का विकास होता है। ये चारों प्रकार के विकास समाज संरचना के लिए परम आवश्यक हैं। इन चारों के विकास से आर्थिक नैतिक विकास की संभावनाएं स्वत: बढ़ जाती हैं अर्थात् सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र को ग्रहण करने मात्र से

मनुष्य संसार के सर्वोच्च सुख प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। इसमें आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक, पारिवारिक, मानसिक एवं आत्मिक सभी सुख स्वतः प्राप्त होते चले जाते हैं।

सन्दर्भ –

1. संस्कार बोध, श्लोक-4
2. एसो पंच णमोक्कारो, पृ. 39
3. मंत्र : एक समाधान, पृ. 79
4. वही, पृ. 82

19. सामाजिक अभ्युदय का मंत्र

नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास हेतु समाज में अनेकों प्रकार के प्रयोग, प्रविधियां अपनाई जाती हैं। इस दिशा में कुछ आध्यात्मिक प्रयोग अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग, ध्यान, जप, कायोत्सर्ग, सम्यक् चिन्तन, शिविर आदि के माध्यम से नैतिक जागरण का शंखनाद किया जाता है। मंत्र आराधना का आध्यात्मिक लक्ष्य भी यही है। इसी परिप्रेक्ष्य में नमस्कार महामंत्र की सम्यक् आराधना से बौद्धिक क्षमता एवं कार्यक्षमता विकसित होती है। जीवन में व्यवहार कुशलता एवं निपुणता का समावेश होता है। आवेश आदि कषायों के शमन से सामुदायिक चेतना को बल मिलता है और समाज में स्वस्थ चेतना का जागरण होता है। इसकी तरंगों से वैचारिक संघर्ष का निराकरण होता है। वैचारिक सहिष्णुता और वैचारिक समन्वय वृद्धिंगत होता है। अत: इसे सामाजिक अभ्युदय का महामंत्र कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

आज जो कार्य औषधि, यंत्र (मशीन) से किये जाते हैं। प्राचीन मंत्रशास्त्री वे सभी कार्य मंत्रों से सिद्ध कर लेते थे। चेतना की शुद्धि के लिए ध्यान और जप दोनों की मूल्यवत्ता है।

सामाजिक प्रतिष्ठा का प्राणतत्त्व – करुणा

मनुष्य की यह दुर्बलता है कि वह अपने साथ अच्छा व्यवहार चाहता है और दूसरों के साथ अन्यथा व्यवहार कर लेता है। यहीं से क्रूरता का अंकुर अंकुरित होने लगता है। मैं सुखी रहूं। मेरे सुख के लिए दूसरों का अहित होता है तो हो, लेकिन व्यक्ति स्वयं की शक्ति और सत्ता का इस तरह से ही उपयोग करना चाहेगा कि उसका अहंकार सुरक्षित रहे। मनुष्य के पास सत्ता और शस्त्र का अधिकार आते ही वह कमजोर को डराता है, बराबर के लोगों से संघर्ष करता है परिणामत: क्रूरता का विस्तार होता है।

दहेज, हत्याएं, लूट, धोखाधड़ी, खाद्य पदार्थों में दूषित पदार्थों की मिलावट, रिश्वत आदि क्रूरता की ही उपज है। संगठन को तेजस्वी बनाने के लिए जीवन में क्रूरता की जगह करुणा का विस्तार अपेक्षित है। अणुव्रत आन्दोलन करुणा की दिशा में उठा एक क्रान्तिकारी उपक्रम है। वास्तव में करुणा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्राण तत्त्व है। करुणाशील व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट नहीं कर सकता। वह हिंसा, मिलावट, चोरी तथा अति संग्रह कैसे कर सकेगा? जब करुणा का

विस्तार हो जाता है तब व्यक्ति समस्त जगत् में अपना तादात्म्य अनुभव करने लगता है। फिर उसके लिए कोई पराया नहीं रहता। वह स्वयं से भिन्न जगत् का अनुभव ही नहीं करता अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत हो जाती है।

करुणा का मंत्र

नमस्कार महामंत्र करुणा और विनम्रता को विकसित करने का मंत्र है। मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना इस महामंत्र की आराधना से विकसित होती है। मैत्री भावना के विकास हेतु–णमो लोए सव्व साहूणं, प्रमोद भावना के विकास हेतु–णमो उवज्झायाणं, कारुण्य भावना के विकास हेतु–णमो अरहंताणं और माध्यस्थ भावना के विकास हेतु–णमो सिद्धाणं का जप वरदान स्वरूप है।

अन्त:करण का अमृत–मैत्री

मैत्री की बात सामाजिक जीवन के सभी स्तरों पर आवश्यक है। व्यक्ति जहां व्यवहार के धरातल पर जीता है, वहां पारस्परिक संबधों में जब तब तनाव पैदा होता रहता है, कटुता और मन-मुटाव की ग्रंथियां बनती रहती हैं। इसका सुन्दर समाधान है मैत्री-भावना का विकास। मैत्री की भावना से समता पुष्ट होती है। संसार में जितने भी संघर्ष है, उनके ऊपरी कारण चाहे कुछ भी क्यों न हो पर मूलभूत कारण विषमता है। समता की प्रतिष्ठा के बिना संघर्ष को दबाया जा सकता है, पर जड़ मूल से समाप्त नहीं किया जा सकता। कालान्तर में वे उसी रूप में या रूपान्तरित अवस्था में पुन: उभर जाते हैं। इसलिए स्वस्थ समाज की संरचना में मैत्री व समता फलित हो यह अत्यन्त अपेक्षित है। मैत्री का साधक समाज में अभय और समता को प्रतिष्ठित करता है।

पैंतालीस वर्षीय एक किसान ने बताया–मैं जब नौ वर्ष का था तब शाम को जंगल से होकर अपने घर जाया करता था। उस जंगल में एक चित्ते का भय था। जब मैं उस भयप्रद स्थान से गुजरता तब मेरा शरीर बुरी तरह से अकड़ जाया करता था। एक सप्ताह के इस भयजनित मानसिक तनाव ने मुझे रुग्ण बना दिया। एक-एक करके क्रमश: बीसों अंगुलियां मुड़ गईं और कुछ ही दिनों के बाद मैं गठिया का रोगी घोषित कर दिया गया। सामान्यतया ऐसे कुछ प्रसंग प्रत्येक आदमी के जीवन में घटित हो जाते हैं। मुकदमे की सुनवाई के पहले दिन मन पर एक अजीब-सा भारीपन होता है। भारीपन का मूल हेतु कुछ अंशों से भय है।

अहं, भय, काम, क्रोध के समय हम स्वंय से, शांति से बहुत दूर चले जाते हैं। इस मानसिक असंतुलन की स्थिति में श्लेष्मीय ग्रंथि, मल ग्रंथि और एड्रीनल जैसी ग्रंथियों को शरीर के लिए आवश्यक रस पैदा करने के लिए अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार बढ़ता हुआ ग्रंथि दौर्बल्य शरीर और मन को निष्क्रिय, असंतुलित कर देता है। उपरोक्त दुर्बलताओं से अपने आपको बचाने के लिए मैत्री की भावना बहुत बड़ा आलंबन बन सकती है। प्रमोद भावना (गुण प्रकाशन, मूल्यांकन) समाज में व्याप्त कुसंस्कारों को दूर कर सुसंस्कारों को प्रतिष्ठित करती है। वर्तमान में बढ़ रही क्रूरता, करुणा-पूरित चित्त के प्रकंपनों से (वायब्रेशन से) बदली जा सकती है। माध्यस्थ भाव से समाज में समता व समानता के संस्कार पल्लवित होते हैं।

प्रमाद, आलस्य व मानसिक चंचलता के समय महामंत्र नवकार के जप से आत्मबल व पौरुष जागरूक प्रहरी की तरह सजग हो जाते हैं। महामंत्र के पांच पदों का जप अपने-अपने चैतन्य-केन्द्र पर जपने से वे चैतन्य-केन्द्र जागृत होने लगते हैं। ज्ञान-केन्द्र जागृत होने से ज्ञान शक्ति, विवेक बुद्धि का विकास तथा विकारों की शुद्धि होती है। दर्शन-केन्द्र जागृत होने से स्फूर्ति और उल्लास प्रकट होता है। विशुद्धि केन्द्र जागृत होने से तेज, ओज, प्रभाव, इच्छा-शक्ति प्रबल होती है। आनन्द केन्द्र जागृत होने से शांति, एकाग्रता और आनन्द की वृद्धि होती है। शक्ति-केन्द्र जागृत होने से सहिष्णुता की क्षमता का विकास होता है।

1. ॐ ऐं क्लीं [1]

इस मंत्र की प्रतिदिन एक माला जपने से कर्म निर्जरा के साथ-साथ स्मृति विकास, संघर्ष, विवाद और झगड़े में विजय तथा विरोधी भी आकृष्ट हो जाता है। अर्थात् इस मंत्र से मैत्री भावना का विकास होता है।

2. ॐ णमो अरहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ णमो आयरियाणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो लोए सव्व साहूणं, ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रौं ह्रौं ह्रं ह्रः नमः स्वाहा।

यह मंत्र सवा लाख जप से सिद्ध होता है। उपरोक्त मंत्र की ध्वनि-तरंगों के द्वारा भावों की पवित्रता के साथ-साथ यश और आरोग्य भी हस्तगत होता है। यश और आरोग्य एक सामाजिक व्यक्ति की मानसिक प्रसन्नता और विकास का बहुत बड़ा निमित्त कारण है।

3. सूर्योदय के समय एक श्वास में 21 बार अथवा 31 बार 'सिद्धा' मंत्र का उच्चारण मंगल वातावरण व इष्ट सिद्धि देने वाला होता है।[3]

जिस प्रकार स्थिर व निर्मल जल के सरोवर में झांकने से मुख का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है और जो कुछ सरोवर की तह में हो वह ठीक-ठीक दृष्टि में आ जाता है और वायुमंडल के शांत होते ही रेडियो में आवाज स्पष्ट सुनाई देती है ठीक उसी प्रकार मन और बुद्धि की स्थिति है। यदि मन और बुद्धि दोनों पवित्र हैं तो नये-नये रहस्य बुद्धि में खुलने लगते हैं। स्थिरता में बुद्धि रेडियो की तरह सूक्ष्म प्रेरणाओं को पकड़ने लग जाती है। इसलिए एक सामाजिक प्राणी में पवित्रता, एकाग्रता, करुणा होनी बहुत जरूरी है। इन सब तत्त्वों से चित्त स्थिर रहता है, व्यक्तित्व का विकास होता है। करुणा, मैत्री, सहिष्णुता, समन्वय आदि की अनुप्रेक्षाओं द्वारा भी मैत्री, सहिष्णुता, करुणा व समन्वय के भावों को विकसित किया जा कसता है।

करुणा की अनुप्रेक्षा[4]

1. महाप्राण ध्वनि 2 मिनट

2. कायोत्सर्ग 2 मिनट

3. अनुभव करें—अपने चारों ओर गुलाबी रंग के परमाणु फैले हुए हैं। (गुलाब के फूल की भांति चमकता हुआ गुलाबी रंग) गुलाबी रंग का श्वास लें। वे गुलाबी रंग के परमाणु श्वास के साथ भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (5 मिनट)

4. आनन्द-केन्द्र पर गुलाबी रंग का ध्यान करें।

5. आनन्द-केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें—

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण कर फिर नौ बार मानसिक जप करें।

अनुचिंतन करें—

✻ क्रोध, अहंकार और लोभ के आवेग मनुष्य को क्रूर बनाते हैं। क्रूर मनुष्य दूसरों को सताता है, ठगता है, अप्रिय व्यवहार करता है।

✻ कोई नहीं चाहता मेरे साथ अप्रिय व्यवहार हो, फिर मुझे दूसरों के प्रति अप्रिय व्यवहार क्यों करना चाहिए? मुझे अच्छा जीवन जीने और सामुदायिक जीवन को शान्तमय बनाने के लिए करुणा का विकास करना है। मैं संकल्प करता हूँ कि मुझमें करुणा का भाव पुष्ट होगा।

6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करें।

निष्कर्ष

वासुदेव श्री कृष्ण अरिहंत अरिष्टनेमि के समवसरण से लौट रहे थे।

राजपथ के राजमहलों की ओर ज्यों ही उनके चरण बढ़े, एक पुरुष को देख उनके पांव ठहर गये। एक वृद्ध पुरुष बुढ़ापे के कारण अपने शरीर को झुकाकर एक-एक ईंट को उठाता उसे कंधे पर रखकर बड़ी मुश्किल से ऊपर छत पर रखकर लौटता। यह बूढ़ा कब तक ईंटों को ऊपर ले जायेगा, उसकी पीड़ा को देखकर श्रीकृष्ण द्रवित हो गये। वासुदेव श्रीकृष्ण की करुणा फूट पड़ी। वे सहजता से आगे बढ़े और एक ईंट उठाकर ऊपर रख दी। उनके पीछे हजारों लोग आ रहे थे। उन सभी ने एक-एक ईंट उठाई और छत पर पहुँचा दी। वृद्ध की समस्या का समाधान हो गया। समस्या छोटी हो या बड़ी, सवाल इसका नहीं है, अहम् बात यह है कि जहां क्रूरता है, वहां समस्या फैलती है, जहां करुणा है, वहां समस्या का समाधान हो जाता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता हे कि मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भाव–ये चार स्वस्थ समाज संरचना एवं सामाजिक अभ्युदय के चार स्तम्भ हैं। इनका विकास महामंत्र के उपर्युक्त प्रयोगों के द्वारा सुगमता पूर्वक किया जा सकता है।

सन्दर्भ–

1. मंत्र : एक समाधान, पृ. 62
2. वही, पृ. 32
3. वही, पृ. 24
4. जीवन-विज्ञान, भाग 9-10

20. नमस्कार महामंत्र और अध्यात्म चेतना

आत्मा की खोज भारतीय दार्शनिकों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोज है, जिसने दर्शन के क्षेत्र में एक बड़ी क्रांति की है। चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव–यह जीवन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण खोज है–कर्म। कर्म की खोज ने बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन किया है। आत्मा और कर्म–इन दो उपलब्धियों ने अध्यात्म के क्षेत्र को बहुत विस्तार दिया है। आत्मा और कर्म अध्यात्म के बिना आधार शून्य हो जाते हैं। अध्यात्म की समूची योजना, समूची परिकल्पना और व्यवस्था इस आधार पर ही है कि आत्मा को कर्म से मुक्त करना है। आत्मा और मुक्तात्मा दोनों के बीच कर्म का एक सूत्र है, जो समूचा विस्तार करता है।

1. बद्ध आत्मा–कर्म युक्त आत्मा।

2. मुक्त आत्मा–कर्म मुक्त आत्मा।

बद्ध आत्मा से मुक्त आत्मा बनने की सारी परिक्रमा है, वह है–अध्यात्म। आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने बहुत सुन्दर कहा है–

जह रोगासण समणं विसोसण विरेयणोसहविहीहिं।
तह कम्मामयसमणं झाणाण सणाइ जोगेहि॥ [1]

अर्थात् जैसे रोग के निदान की चिकित्सा-विशोषण, विरेचन, औषधि-पान आदि विधियों से की जाती है, वैसे ही कर्म रूपी रोग का शमन ध्यान, अनशन आदि योगों से किया जाता है। ध्यान को मोक्ष का हेतु बताते हुए कहा गया है–

संवरविणिज्झराओ मोक्खस्स पहो तवो पहो तासिं।
झाणं च पहाणंगं तवस्स तो मोक्खहेऊयं॥ [2]

संवर और निर्जरा–दोनों मोक्ष के मार्ग हैं और उनका पथ है–तप। तप का प्रधान अंग है–ध्यान, इसलिए ध्यान मोक्ष का हेतु है।

मंत्र जप ध्यान की प्रथम भूमिका है। हमारी आत्मा से संपृक्त आवारक, विकारक और अवरोधक कर्मों के निवारण के प्रमुख तीन हेतु हैं–प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और मंत्र। [3] प्रेक्षा से आवरण मिटता है, अनुप्रेक्षा से मोह-विकार नष्ट होते हैं तथा मंत्र की आराधना से अन्तराय कर्म का अपनयन होता है।

ये तीनों प्रकार की आराधनाएं हम एक साथ अध्यात्मचेता, प्रेक्षाध्यान के महान् साधक व प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी में निहार सकते हैं। उन्होंने अपने ज्ञान की उपासना से ज्ञानावरणीय कर्म का निर्मलीकरण किया है, आनन्द की उपासना से मोहनीय कर्म का निर्मलीकरण किया है। जिस व्यक्ति में ज्ञान की निर्मलता, दृष्टि की निर्मलता, चारित्र की निर्मलता और वैराग्य या अनासक्ति होती है, वह सहज ही ध्यानारूढ़ हो सकता है। जिनमत में क्षमा, मृदुता, ऋजुता, निर्लोभता आदि गुणों की प्रधानता है। इन आलम्बनों से मुनि शुक्ल ध्यानारूढ़ होता है।[4]

नमस्कार महामंत्र के पांच पद हमारा आलम्बन हैं। उन तक पहुँचना हमारा आध्यात्मिक ध्येय है। आचार्य जयसेन नमस्कार महामंत्र पर विवेचन करते हुए उसके दो भेद बतलाते हैं। एक द्वैत नमस्कार और दूसरा अद्वैत। जहां उपास्य और उपासक में भेद की प्रतीति रहती है, "मैं उपासना करने वाला हूँ और अरिहंत आदि मेरे उपास्य हैं"—यह द्वैत बना रहता है, वह द्वैत नमस्कार है। राग-द्वेष के विकल्प नष्ट हो जाने पर चित्त की इतनी अधिक स्थिरता हो जाती है कि आत्मा अपने-आपको ही उपास्य अरिहंत आदि रूप समझता है और केवल स्वरूप पर ही ध्यान करता है, वह अद्वैत नमस्कार है। पहले साधक भेद-प्रधान साधना करता है और बाद में ज्यों-ज्यों आगे प्रगति करता है, त्यों-त्यों अभेद प्रधान साधक बनता है, पूर्ण अभेद साधना अरिहंत दशा में प्राप्त होती है। अत: नमस्कार महामंत्र का जप अथवा ध्यान करते समय नमस्कार के पांच महान पदों के साथ अपने आपको सर्वथा अभिन्न अनुभव करना चाहिए।

अध्यात्म साधना का सारा विकास भी "शरीर और चैतन्य भिन्न है" इसी विचारधारा के आधार पर हुआ है अत: निश्चयनय की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र और अध्यात्म, नमस्कार महामंत्र और आत्मा को अलग-अलग नहीं किया जा सकता।

रूपान्तरण की सजीव प्रक्रिया—अध्यात्म

"अध्यात्म केवल मुक्ति का मार्ग ही नहीं है, वह शांति का मार्ग भी है, जीवन जीने की कला है, जागरण की दिशा है और रूपान्तरण की सजीव प्रक्रिया है।" उक्त विचार व्यक्त करते हुए गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने कहा— "निश्चय में मैं एक हूँ ज्ञानदर्शनाकार"[5] निश्चय नय की दृष्टि से मैं एक हूँ, मेरा स्वरूप, ज्ञान और दर्शन है। इससे आगे व्यवहार नय की व्याख्या में उन्होंने कहा—

मैं आत्मा मैं चेतना, मैं हूँ सत् चिद् रूप।
गणाधिपति गुरु साधु हूँ, अनुशास्ता अनुरूप॥[6]

मैं आत्मा हूँ, मैं चेतना हूँ, मैं सत् हूँ, मैं चित्त-ज्ञान हूँ, मैं गणाधिपति हूँ, मैं गुरु हूँ, मैं साधु हूँ, मैं अनुशास्ता हूँ, इसी तरह और भी बहुत कुछ हूँ। यह सब व्यवहार है।

अध्यात्म की उपरोक्त व्याख्या के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां अध्यात्म है वहां अहंकार-ममकार नहीं रह सकते। सामान्यत: वृत्त के व्यास से उसकी परिधि तिगुनी होती है पर ममकार की परिधि तिगुनी ही नहीं तीन करोड़ गुणा अधिक है। नि:संदेह अध्यात्म की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि उसमें अहंकार व ममकार के विलय की साधना है। जैसे-जैसे अध्यात्म की चेतना जागती है अर्थात् नमस्कार महामंत्र की गहराई में जाते हैं, अध्यात्म चेतना व्यक्ति को भीतर से बल प्रदान करती है। तनाव, अवसाद आदि से जूझने की क्षमता पैदा करती है। आध्यात्मिकता एक ऐसा रसायन है, जो प्रतिकूल परिस्थिति को भी आनन्दमय बना देता है। नमस्कार महामंत्र शुद्ध आध्यात्मिक मंत्र है। इस महामंत्र के द्वारा व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूपान्तरण किया जा सकता है। अपने भीतर प्रवाहमान आनन्द के सागर का साक्षात्कार किया जा सकता है। अपेक्षा है मंत्र को अवचेतन मन तक पहुँचाया जाये।

अवचेतन मन तक पहुँचाकर यह नमस्कार महामंत्र अहंकार व ममकार का निरोध करता है। विनम्रता के भावों को पल्लवित करता है। शक्ति संवर्धन के साथ प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करता है। प्रात:काल प्रतिदिन जागरण के बाद श्वासोच्छ्वास के साथ नमस्कार महामंत्र का जप शुद्ध आध्यात्मिक भावना से करें। इस आराधना से अध्यात्म का समूचा मार्ग आलोकित होता है, आध्यात्मिक यात्रा निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होती है। अर्हत्, सिद्ध आदि के ध्यान से हमारी चेतना का कण-कण, मन का कण-कण भावित होता है जो साधक से सिद्ध बनने की अर्हता देता है। गुरुदेव श्री तुलसी ने अध्यात्म पदावली में लिखा है–

आध्यात्मिक उन्नयन ही, तुलसी है आदेय।
हो लक्ष्योन्मुख चेतना, सधे सहज ही श्रेय॥[7]

आध्यात्मिक विकास हमारे लिए उपादेय है। अन्यान्य विकासों को गौण नहीं किया जा सकता, पर वे सब परिधि में रहें। हमारा केन्द्रित लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है। यह लक्ष्य निरन्तर सामने रहे तो सहज ही श्रेयस् की सिद्धि हो सकती है।

जीवन मूल्य और नमस्कार महामंत्र

अर्हता, सिद्धि, आचार, ज्ञान और साधना–जीवन के ये पांच आयाम हैं। महामंत्र नवकार इनके विकास का सर्वोत्तम साधन है। इन पांचों आयामों का विकास करके नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन्त रखा जा सकता है। आनन्द और अन्तर्दृष्टि को उपलब्ध किया जा सकता है। अन्तर्दृष्टि का जागरण अध्यात्म विकास की प्रथम अवस्था है।

अध्यात्म जीवन जीने की अनिवार्य शर्त है शांति व समता का जीवन में अवतरण। शांति जीवन का स्वर्ग और समता उस स्वर्ग तक पहुँचाने का मार्ग है। दोनों अन्योन्याश्रय है। शांति से समता फलित होती है और समता से शांति। समता के वृक्ष पर ही शांति के फूल लगते हैं। समता का चरम शिखर है–वीतरागता। समत्वभाव का प्रारम्भ संतुलन से और चरम परिणति वीतरागता में होती है।

नमस्कार महामंत्र वीतराग मंत्र है। यह वीतरागता को प्राप्त कराने वाला मंत्र है। जिस प्रकार ग्रामोफोन रिकॉर्ड में दबी लकीरों के कारण कितनी ही बार उसे घुमा दें, वह वही गाना बजाता रहेगा, उसी प्रकार हमारे जन्म-जन्मान्तर निशान (कर्म) मिट जाने चाहिए। यह हमारी प्राणवान तैजस शक्ति की सहायता से ही हो सकता है। महामंत्र तैजस शक्ति को प्राणवान बनाने का मंत्र है। यह जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों को शिथिल करने का तथा समाप्त करने का मंत्र है। घनीभूत श्रद्धा से तन्मयता पूर्वक इसका जप किया जाये तो जीवन की जटिल पहेलियां भी सुलझ जाती हैं।

एक बार साध्वीश्री दीपांजी अपनी सहयोगिनी चार साध्वियों के साथ एक किसान के झोंपड़े में ठहरी। साध्वियों को झोंपड़ी में रात्रि विश्राम करना था। जाट ने खेत से घर लौटते समय साध्वियों से कहा–मैं पहले से आपको सावधान कर देता हूँ। इस सन्ध्याकालीन ऊष्मा के कारण कुछ जहरीले जीव-जन्तु यहां निकल आया करते हैं। इसी कारण मैं स्वयं यहां रात्रि विश्राम नहीं करता। आप अपना प्रबंध कर लें। अगर कुछ हो गया तो मैं उसका जिम्मेदार नहीं हूँ। अस्तु हुआ वही जो संभावना थी। अनेक छोटे-बड़े जीवों से झोंपड़ी का आंगन भर गया। एक सर्प ऊपर से नीचे की ओर उतर रहा था तो एक सर्प सामान पर चढ़ने को आतुर था। कुछ बिच्छु और सर्प जहां साध्विंयां प्रतिक्रमण कर रही थीं, उस ओर तेजी से बढ़ रहे थे।

साध्वी दीपांजी ने सब साध्वियों की दृढ़ता की जाँच करते हुए कहा–यदि तुम्हारे मन में तनिक भी घबराहट हो तो तुम सामने वाले वृक्ष के नीचे जाकर प्रतिक्रमण कर लो। अन्यथा मेरा ख्याल यह है कि हम पांचों मंडलाकार बैठकर पांचों रजोहरणों का एक घेरा बना लें और महामंत्र के पांचों पदों से क्रमश: स्थान को मंत्रित कर लें। सबकी सहमति से यह व्यवस्था की गई। जो सर्प सामने की ओर बढ़ रहा था, वह भरसक प्रयास करने के बाद भी साध्वियों के चारों ओर बिछे रजोहरणों को पार नहीं कर सका। इस प्रकार उस झोंपड़े में स्थित सभी जीव-जन्तु नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से शांत होकर चले गये। महामंत्र ने सुरक्षा कवच का निर्माण किया तथा साध्वीश्री दीपांजी की दृढ़ आस्था के साथ-साथ इस घटना ने सहगामी साध्वियों की आस्था को भी मजबूत बनाया। उन्हें अभय और स्थिर बनाया।

मनोबल, दृढ़ इच्छा शक्ति, एकाग्रता, निर्लोभता, क्षमा, आत्मानुशासन, निर्विकारता, संयम, अतीन्द्रिय चेतना, प्रसन्नता–ये अध्यात्म की शक्तियां हैं। तैजस शक्ति से प्रस्फुटित होने वाली शक्तियां हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही–साधारण व्यक्ति और एक महान् व्यक्ति में यही अन्तर है कि महान् व्यक्ति का चित्त एकाग्र होता है और साधारण व्यक्ति का चित्त चंचल होता है। नमस्कार महामंत्र संकल्प शक्ति, चित्त की निर्मलता, जागरूकता और पवित्रता देने वाला मंत्र है।

एकाग्रता के विकास हेतु 'अ सि आ उ सा' मंत्र, जो नमस्कार महामंत्र का संक्षिप्त रूप है, पर अत्यन्त प्रभावशाली मंत्र है। एकाग्रता की सिद्धि और विघ्न निवारण हेतु 'अ' का उच्चारण नाभि पर, 'सि' का मस्तिष्क पर, 'आ' का कण्ठ पर, 'उ' का हृदय पर और 'सा' का उच्चारण मुख पर ध्यान लगाते हुए करना चाहिए।[8] इसी प्रकार संकल्प शक्ति के विकास हेतु 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' का जप दर्शन-केन्द्र पर दीर्घश्वास के साथ मानसिक स्तर पर आधा घंटा करना चाहिए।[9] आनन्द की अनुभूति तथा अन्तर्दृष्टि जागरण के लिए भी यही जप विधि अत्यन्त लाभप्रद है।

एक प्राचीन किंवदंति के अनुसार 'अ सि आ उ सा' मंत्र का निर्माण भगवान श्री पार्श्व के द्वारा हुआ था।[10] कमठ तपस्वी की धूनी में जब नाग-नागिन जल रहे थे, तब भगवान पार्श्वनाथ ने 'अ सि आ उ सा' मंत्र सुनाकर ही उनका उद्धार किया था। इस मंत्र के प्रभाव से दोनों ही नाग-नागिन नागकुमार देवताओं के अधिपति इन्द्र और इन्द्राणी बने थे। भगवान पार्श्व के मुख से कहा हुआ होने

के कारण यह अतीव पवित्र एवं प्रभावशाली मंत्र माना जाता है। यह अनेक सिद्धियों को देने वाला महाप्रभावी मंत्र है।

यह सर्व कामद मंत्र है। यह कल्प वृक्ष की तरह मनुष्य की सब कामनाओं को पूरा करने वाला मंत्र है।[11] इसे ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं से संपृक्त कर भी जपा जाता है। केवल ॐ के साथ भी जपा जाता है।

यह सर्व सिद्धि मंत्र नित्य सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख हो एक सौ आठ बार जपने से महा गृह कलह का शमन, शांति तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। ऐसा नमस्कार मंत्रोदधि में उल्लिखित है।

''ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहत विजये अर्हं नमः' इस मंत्र को सवा लाख सिद्ध कर दीपावली के दिन एक सौ आठ बार जपने से साधक को जीवन पर्यन्त सर्प का भय नहीं रहता।[12]

इस शक्तिशाली मंत्र के अनेकों प्रयोग एसो पंच णमोक्कारो, पृ. 132, 133 पर, मंत्र : एक समाधान में तथा नमस्कार मंत्रोदधि में उपलब्ध है। यह मंत्र मनोबल, आत्मबल, नैतिक बल, बुद्धि बल, अध्यात्म बल और चारित्र बल को पुष्ट करने वाला है। अध्यात्म किसी भी समाज की अमूल्य धरोहर होती है। वैज्ञानिक प्रगति भी अध्यात्म के अभाव में विध्वंसक बन जाती है। किसी भी संस्कृति से यदि अध्यात्म को निकाल दिया जाये तो वह दरिद्र और मूल्यहीन बन जाती है। कवि ने बहुत ही यथार्थ कहा है–

तन बल धन बल स्वजन बल विद्या बल च्यार।
एक मनोबल के बिना, चारों ही बेकार॥

जिस साधक को मनोबल लब्धि प्राप्त होती है, वह अन्तमुहूर्त्त में चौदह पूर्वों का परावर्तन करने में सक्षम होता है। जिसे वचन लब्धि प्राप्त है, वह पूर्व की ज्ञान राशि का उच्चारण अन्तमुहूर्त्त में कर सकता है। यह बात बुद्धिगम्य नहीं होती पर कम्प्यूटर के आविष्कार ने इस तथ्य को बुद्धिगम्य बना डाला। कम्प्यूटर एक सैकेण्ड में एक लाख छियासी हजार गणित के भागों (विकल्पों) का गणित कर लेता है। विद्युत् की जितनी गति है, उसके अनुसार वह कार्य कर लेता है। विद्युत् की गति से चलने वाला कम्प्यूटर एक सैकेण्ड में इतना बड़ा काम कर सकता है तो चतुर्दश पूर्वी अन्तर्मुहूर्त्त में सारे ज्ञान का पारायण क्यों नहीं कर सकता? कम्प्यूटर के पास विद्युत् की शक्ति है तो चतुर्दशपूर्वी के पास तैजस की शक्ति है।[13]

इस सारे विश्लेषण के आधार पर यह तथ्य निकलता है कि अध्यात्म के नये-नये पर्यायों को उद्‌घाटित करने के लिए तैजस शरीर को जागृत एवं कार्मण शरीर को प्रभावित करना आवश्यक है। इन दोनों शरीरों की जागृति हेतु तप का आलम्बन आवश्यक है। जब तप के द्वारा मनोयोग के परमाणु, वचन योग के परमाणु, काययोग के परमाणु, सूक्ष्म शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर के परमाणु उतप्त होते हैं तब वे अपने मलिन परमाणुओं को छोड़कर निर्मल बनते हैं और उस स्थिति में साधना की सफलता प्रारम्भ होती है।

इस तप की प्रक्रिया में अशुद्ध परमाणुओं को उतप्त कर पिघलाने की प्रक्रिया में मंत्र साधना का बहुत बड़ा योगदान है। कर्म सारे जगत् पर साम्राज्य करते हैं किन्तु पंच परमेष्ठी से डरते हैं अतः उनके प्रति अनुराग जुड़ते ही कर्म ढीले पड़ जाते हैं। नमस्कार महामंत्र के जप से व्यक्ति अशुभ भावों से ऊपर उठकर शुभ भावों में ठहरता है। उसके बाद जप की उच्च स्थिति में शुभ भावों से भी मुक्त होकर स्वभाव में स्थित हो जाता है। यह निर्गुणावस्था शुभ और अशुभ भावों से मुक्त अवस्था है। अर्थात् वहां वे जीव त्रिरत्नविनियोगमय एकान्तिक, निराबाध, स्वाभाविक, निरूपम और अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं।

निष्कर्ष

निश्चय नय की उच्च भूमिका पर पहुँच कर जैन दर्शन का तत्त्व-चिंतन अपनी चरम सीमा पर अवस्थित हो जाता है। अपनी आत्मा को नमस्कार करने की भावना के द्वारा अपनी आत्मा की पूज्यता, उच्चता, पवित्रता और अन्ततोगत्वा परमात्मरूपता ध्वनित होती है। जैन धर्म का गंभीर घोष है—अपनी आत्मा ही अपने भाग्य का निर्माता है। अखण्ड भाव-शांति का भण्डार और शुद्ध परमात्मरूप है—"अप्पा सो परमप्पा"। यह बाह्य नमस्कार आदि की भूमिका तो मात्र प्रारम्भ का मार्ग है। इसकी सफलता पूर्ण निश्चय भाव पर पहुँचाने में ही है, अन्यत्र नहीं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शरीर शक्ति से हजार गुनी प्रखर बुद्धि शक्ति है, लाख गुनी प्रज्ञा शक्ति है, उससे अनंत गुनी प्रचण्ड आत्म शक्ति अर्थात् अध्यात्म शक्ति है। साधारण मानव जिस कार्यशक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता वे कार्य अध्यात्म शक्ति के जागरण से सहज ही सम्पन्न हो जाते हैं। इसलिए वे कल्पनातीत कार्य, सिद्धियां मनुष्य को चमत्कार-सी लगती हैं। नमस्कार महामंत्र अध्यात्म शक्ति का अक्षय स्रोत है।

सन्दर्भ –

1. ध्यान शतक, श्लोक-100
2. वही, श्लोक-96
3. एसो पंच णमोक्कारो, पृ. 64
4. ध्यान शतक, श्लोक-69, पृ. 36
5. अर्हत वाणी, श्लोक-29
6. वही, श्लोक-30
7. अध्यात्म पदावली, श्लोक-91
8. मंत्र : एक समाधान, पृ. 28
9. वही, पृ. 27
10. महामंत्र नवकार, पृ. 13
11. नमस्कार मंत्रोदधि, पृ. 34
12. वही, पृ. 34
13. जैन योग, पृ. 52

21. महामंत्र और संगीत

※ संगीत मस्तिष्क व स्नायुओं को शांति प्रदान करता है।

※ संगीत मस्तिष्कीय प्रणाली को प्रेरणा, ऊर्जा, शक्ति, उत्तेजना व ओज प्रदान करता है।

※ संगीत भावनाओं को प्रभावित एवं क्रियाओं को प्रेरित करता है अत: सभी क्रियाकलाप उससे प्रभावित होते हैं।

※ संगीत से मानव तो क्या, प्राणी मात्र की वृत्तियों में परिवर्तन आता है।

※ संगीत में तनाव के स्तर को कम करने की, शांति और सौहार्द को वृद्धिंगत करने की एवं स्थिरता को पुष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता है।

भारत में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग परस्पर मैत्रीभाव से जीवन यापन कर रहे हैं। जितने सम्प्रदाय होंगे उतनी ही मान्यताएं भी होंगी। यही कारण है कि भारत में सांस्कृतिक आध्यात्मिक विविधता देखने में आती है। इन सब धर्म-सम्प्रदायों में यदि किसी धारणा पर सहमति है, तो वह है—संगीत की आध्यात्मिक उपयोगिता। किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के अनुयायियों में इस विषय पर कोई मतभेद नहीं है कि संगीत भगवान के निकट जाने का, उससे साक्षात्कार करने का और आध्यात्मिक उपलब्धि को प्राप्त करने का सहज मार्ग है। इसके अतिरिक्त बात ध्यान की हो या योग की, शारीरिक मानसिक विकास की हो या आध्यात्मिक विकास की—इन सभी में संगीत अन्तर्निहित हैं।

प्रत्येक युग के दार्शनिकों, धार्मिकों व विद्वानों ने ध्वनि की महत्ता को स्वीकार किया है। संगीत का स्थान आधुनिक तथा आदिम सभ्यताओं—दोनों में ही काफी सम्माननीय है। सृजन के पीछे भी शक्ति ध्वनि को ही माना जाता है, जिसमें हमारे अच्छे या बुरे रूपान्तरण की अद्‌भुत क्षमता है। पर सम्पूर्ण विश्व में संगीत का प्रकार व गुण भिन्न है। शायद ही कोई ऐसी आदिम जाति भी हो, जिसका कोई संगीत नहीं है। निश्चित रूप से जीवन की प्रत्येक क्रिया संगीत के साथ चलती है। संगीत मानव की सार्वभौम भाषा है। संगीत का महत्त्व किसी प्रेरक औषधि या शांति प्रदाता तत्त्वों से कहीं अधिक है। इसका महत्त्व सार्वभौमिक और सार्वकालिक है।

संगीत ध्वनि के कुछ रूप, यथा—पॉप संगीत व रॉक संगीत जैसे रूपों का मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह तथ्य भी सिद्ध हो चुका है। दूसरी ओर

शास्त्रीय संगीत को उपचार, सुधार व विकास का माध्यम भी प्रमाणित रूप से माना जाता है। संगीत के इन सब रूपों के मध्य आध्यात्मिक संगीत का प्रभाव हमारे ऊपर सर्वाधिक पड़ता है, चाहे वह वैदिक श्लोक हो, बौद्ध संगीत हो, गुरुवाणी या संकीर्तन हो अथवा जैन संगीत हो या गायत्री, ॐ, अर्हम्, नमस्कार महामंत्र के नाद की ध्वनि या लय हो।

भारतीय इतिहास में पढ़ा है, जब तानसेन मल्हार राग गाता तब उसके संगीत की ध्वनि से प्रभावित होकर हिरण तक चले आते। जब दीपक राग गाता तो उस प्रभाव से महलों के शिखर पर स्थित दीपक भी जल जाया करते थे। जैन आचार्य मानतुंग ने बसंततिलका राग में आदिनाथ भगवान की स्तुति की, जिसके प्रभाव से उनके 48 ताले व जंजीरों के बंधन टूट गये। आचार्य सिद्धसेन पर लगने वाले कोड़े मंत्र ध्वनि के प्रभाव से राजा विक्रमादित्य के अन्तःपुर स्थित रानियों के पीठ पर पड़ने लगे। इन्हीं आचार्य द्वारा बसंत तिलका राग में भगवान पार्श्व की स्तुति करने से शिवलिंग की जगह पार्श्वप्रतिमा प्रकट हुई। यह स्तवना कल्याण मंदिर के नाम से विश्रुत हुई। इसी प्रकार नमस्कार महामंत्र की ध्वनि तरंगों के प्रभाव से श्रीमती के गले में डाला सर्प पुष्पमाला बन गया, ग्वाल बाल सेठ सुदर्शन बना आदि अनेकों उद्धरण उपलब्ध हैं। प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप में महामंत्र की ध्वनि का अनेक व्याधियों पर प्रभाव पड़ता है, जैसे–तनाव, उदासीनता, उच्च रक्तचाप, घबराहट, अनिद्रा आदि। इन सबसे मुक्ति दिलाने वाली क्षमता इस महामंत्र की मंगलध्वनि में अन्तर्निहित है।

ध्वनि के भौतिक प्रभाव

ध्वनि-विज्ञान से संगीत की उत्पत्ति हुई। संगीत शास्त्र के अनुसार सात स्वरों से अनेक राग-रागिनियों का निर्माण हुआ है। कई रागों में सातों स्वर लगते हैं और कई केवल पांच स्वर में ही गाई जाती हैं। मालकोश राग केवल पांच स्वर में ही गाई जाती है। इस राग का प्रभाव स्नेह की जागृति एवं वैर का विसर्जन बताया गया है। जैन ग्रंथों में लिखा है–भगवान महावीर का प्रवचन मालकोश राग में होता था और उनके समवसरण में समागत प्राणी, मनुष्य, पशु सभी अपने जातिगत वैर को भूल जाते थे। सिंह और बकरी में भी एक-दूसरे के पास बैठने पर भी वैर नहीं जागता था। संगीत शास्त्रानुसार राग भैरवी से कफ जनित बीमारियों का शमन होता है, जैसे–दमा, खाँसी आदि। राग आसावरी से रक्त विकार का शमन होता है। राग मल्हार से क्रोध व मानसिक अस्थिरता का शमन होता है। राग सौरत व जैंजेवती मानसिक रोग से मुक्ति दिलाने में समर्थ है। राग

हिण्डोल से मेधावृद्धि के साथ-साथ यकृत और प्लीहा की स्वस्थता बढ़ती है। बर्निल विश्वविद्यालय में अनुसंधान के दौरान जाना गया है कि शंख ध्वनि से बैक्टीरिया और दूसरे रोग जीवाणु नष्ट होते हैं। 27 घन फीट शक्ति से शंख ध्वनि 22 सौ फीट बैक्टीरिया को नष्ट और 26 सौ फीट बैक्टीरिया को निष्क्रिय बनाती है। इस ध्वनि के प्रभाव से मलेरिया, मिरगी एवं कोढ़ रोग से पीड़ित व्यक्ति को राहत मिलती है तथा हजारों बहरे व्यक्तियों को सुनाई देने लगा ऐसा प्रयोगों से जाना गया है। भारतीय संगीत की रचना स्वर, चक्रों से संबंधित है इसलिए डॉक्टर हेकन ने कहा है–''म्यूजिक थेरेपी में पाश्चात्य पूर्वी संगीत से भी भारतीय संगीत अधिक प्रभावी है।''

योग साधना की दृष्टि से तो चक्रों का महत्त्व है ही पर भारतीय संगीत की दृष्टि में अनाहत, विशुद्धि और ललना चक्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके कुछ भागों पर एकाग्रता द्वारा संगीत में पूर्ण दक्षता प्राप्त की जा सकती है। सात स्वर सात चक्रों से संबंधित है। जैसे–मूलाधार का 'सा' से, सहस्रार का 'नि' से एवं सामान्यत: नाद की उत्पत्ति हृदय, कण्ठ और मूर्धन्य से संबंधित है। यही कारण है शास्त्रीय संगीत चिकित्सा की दृष्टि से अधिक प्रभावशाली रहा है। इटली के तानाशाह मुसोलिनी अनिद्रा रोग से पीड़ित थे। पाश्चात्य संगीत से निदान नहीं हुआ। ओंकारनाथ ने उन्हें राग पुरिया सुनाई, आधा घंटा में उन्हें नींद आ गई। इस प्रभाव से डॉक्टर और वैज्ञानिक भी प्रभावित हुए।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपना अनुभव लिखा है–''संगीत मन को शांति प्रदान करता है। सन् 1907 में जब दक्षिण अफ्रिका में मुझ पर कातिलाना हमला हुआ, तब मैं अशांत था, लेकिन जब मेरे कहने पर क्लाईव डीक ने बड़ी मधुर आवाज में यह गाया–'लीड काइन्डली लाइट' (हे करुणागर! मार्ग दर्शा दो) तो मेरे घावों की पीड़ा शान्त हो गई।

फ्रांस व अमेरिका की स्वास्थ्य औषध प्रयोगशालाओं में अब तो सैकड़ों विज्ञान वेत्ता संगीत की भावी उपयोगिता को लेकर अनेक प्रकार से अनुसंधान कर रहे हैं। एक जर्मन औषध विशेषज्ञ ने सुप्रसिद्ध अंग्रेजी औषध अनुसंधान पत्र 'लेसेट' में स्पष्ट लिखा है–संगीत में इतनी बड़ी संभावनाएं दिखाई पड़ती है कि वह समय आने में बहुत देर नहीं जब रोगियों को देखने के लिए स्टेथॉस्कोप और दवाइयों के बक्स के साथ-साथ डॉक्टरों को कुछ मधुर संगीत के रिकॉर्ड भी अपने पास रखने पड़ेंगे।

संगीत का प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं पशुओं पर भी पड़ता है। स्वीडन तथा रूस के कुछ डेयरी फार्मों में प्रयोग करके देखा गया कि संगीत से

गायें अधिक दूध देने लगती है। आज तो यह भी खोज की जा चुकी है कि संगीत से पेड़-पौधे भी प्रभावित होते हैं। मंत्रों के प्रभाव से पौधे जल्दी फलते-फूलते हैं। नागपुर के पास खाकरी नामक गाँव में कृषि में भी मंत्रों के प्रभाव पर प्रयोग हो रहे हैं। उनके कुछ परिणाम सामने आये हैं। रासायनिक खाद वाले क्षेत्रों में जहां सोलह किलो ककड़ी और पैंतीस किलो बैंगन पैदा हुए, वहां अभिमंत्रित जल से सींचे जाने वाले खेत में चालीस किलो ककड़ी और सत्तर किलो बैंगन पैदा हुए।

इस प्रकार संगीत में चिकित्सीय प्रभाव भी होता है, संवेदनाएं तथा मस्तिष्क इसके द्वारा नियंत्रित होते हैं। इससे भौतिक अभिसिद्धियों के द्वार भी खुलते हैं और अध्यात्म का मार्ग भी प्रशस्त बनता है।

भक्ति व मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग संगीत

युगों-युगों से संगीत ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध की है। निःसंदेह संगीत भक्ति और मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग माना जाता है। यह तथ्य निर्विवाद है कि हमारा समूचा संगीत सत्-चित्-आनन्द रूप परम सत्ता की आत्मानुभूति के साधन रूप में प्रयुक्त हुआ है। नाद ब्रह्मवाद की अवधारणा संगीतात्मक स्वरों का मूल उद्गम ढूंढने की चेष्टा, उच्च सौन्दर्यात्मक अनुभूतियों का स्वरूप विश्लेषण आदि इस बात के प्रमाण हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में भी उद्गीथोपासना का उल्लेख मिलता है। उद्गीथ द्वारा परम तत्त्व की आत्मानुभूति होती है।[1] याज्ञवल्क्य ने भी स्वीकार किया है कि संगीत द्वारा परम मोक्ष की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

एकत्ववादी शिव बिम्ब प्रतिबिम्ब वादी के रूप में नाद, परानाद, परावाक को नाद का मूल स्रोत स्वीकार करते हैं। यह सूक्ष्मतम ध्वनियों का पूर्ण एकत्व है, जिससे सभी स्थूल ध्वनियां और विचार उत्पन्न होते हैं। उदात्त सांगेतिक अनुभव में इसी परानाद के साथ तादात्म्य स्थापित होता है। सांगेतिक स्वर परानाद के सर्वाधिक निकट है क्योंकि वे पश्यन्ति का भाग हैं, जो परानाद का निकटतम है, अतः स्वर साधना जीवात्मा को अतीन्द्रिय स्तर पर ले जाती है। यह शुद्ध आनन्द की स्थिति है और यह आनन्द सच्चिदानंद रूप परम सत्ता का ही एक आयाम है। सर्वोच्च संगीत की उपलब्धि ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्राणवायु या जीभ पर एकाग्र ध्यान करने से होती है।[2] आचार्य पार्श्वदेव के अनुसार नाभि में जो ब्रह्म का स्थान है, जिसे ब्रह्मग्रंथि कहा गया है, प्राण उसके मध्य में रहता है। प्राण से अग्नि की उत्पत्ति होती है, नाद से ही बिन्दु और समस्त वाङ्मय उत्पन्न होता है। नाद के नकार का अर्थ प्राण और दकार का अर्थ है–अग्नि।

जैन साहित्य में नाद-कला का आधार आधे चन्द्रमा के समान है, वह सफेद रंग वाली है, बिन्दु काले रंग वाला है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन परम्परा में भी संगीत की एक मौलिक और गहरी अन्वेषणात्मक दृष्टि रही है और इसे साधना का आवश्यक और सहज रूप माना गया है। जैन आगम ठाणं, रायपसेणीय, अनुयोगद्वार इत्यादि आगम ग्रंथों में संगीत की प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। सामान्यत: नाद दो प्रकार का माना जाता है–आहत और अनाहत।

1. आहत–आहत वह है, जो टकराव से उत्पन्न होता है।
2. अनाहत–अनाहत वह है, जो बिना किसी टकराव के अस्तित्ववान है।

हम कई बार अनुभव करते हैं कि अत्यन्त पीड़ा से तड़प रहे व्यक्ति को भजन, कीर्तन अथवा इष्ट मंत्र एक लय में सुनाने से वह कुछ क्षणों के लिए पीड़ा से मुक्त हो उस भजन के साथ झूमने लगता है, ऐसा क्यों होता है? इसका आध्यात्मिक रहस्य तो वर्षों से सिद्ध है ही, क्योंकि आराध्य के साथ, अनाहद (आत्मा) के साथ तन्मयता वेदना मुक्ति का साधन है और आज विज्ञान भी इस रहस्य को स्वीकार कर चुका है।

वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार ऐसे क्षणों में अपने आराध्य के साथ एकाग्र होने से हमारे भीतर एन्डोर्फिन नामक स्राव स्रावित होता है, जो व्यक्ति को आनन्द से सराबोर कर देता है। पिट्सवर्ग के एक फिल्म डाइरेक्टर जो पति-पत्नी दोनों ही संगीत प्रेमी थे, उनकी एक सखी ब्लड-सरकूलेशन की बीमारी से ग्रसित थी। इलाज असफल रहे। डॉक्टरों ने असाध्य बीमारी घोषित कर दी। दोनों पति-पत्नी सखी के घर गये और उसे धार्मिक संगीत सुनाया। कुछ ही समय में देखा गया कि जो कमरा कुछ समय पूर्व चिल्लाहटमय था वही कमरा संगीतमय बन गया। रोगी को ऐसा लगने लगा मेरे शरीर पर मालिश हो रही है, उसे शांति की अनुभूति होने लगी। कई दिनों के इस क्रम से सखी स्वस्थ हो गई। इस सफलता के पश्चात् दोनों पति-पत्नी ने संगीत चिकित्सा-केन्द्र की स्थापना की और इस क्षेत्र में आश्चर्यकारी सफलताएं हासिल की। ग्रीस के महान् दार्शनिक व सिद्धान्तवादी पाइथोगोरस के मतानुसार कुछ निश्चित सुर मनोविकारों को नियंत्रित करते हैं। शुद्ध संगीत से भक्तिरस, वीररस आदि अनेक प्रकार के रस भी उत्पन्न होते हैं। शास्त्रीय एवं भक्ति प्रधान संगीत के कतिपय लाभ निम्नलिखित हैं–

1. तनाव मुक्ति व मानसिक शांति।
2. उदान आदि पांच प्राणों पर सीधा प्रभाव।

3. प्राण ऊर्जा में वृद्धि।
4. डिप्रेशन, माइग्रेन व हाई ब्लड प्रेशर में लाभकारी प्रभाव।
5. पवित्र भावधारा में वृद्धि।
6. ज्ञानवाही व क्रियावाही तंतुओं में परिस्पन्दन।
7. चैतन्य केन्द्रों की सक्रियता एवं स्राव परिवर्तन।
8. चित्त का निर्मलीकरण।

तुकाराम, एकनाथ, रामदास, बिट्ठलदास, जगत् प्रसिद्ध सन्त हुए हैं, जिनके अभंगू (मराठी का संगीतमय छंद) स्वत: उनके बारे में बताते हैं। नाम संकीर्तन के सभी संस्थापकों का यही विचार रहा है कि ईश्वर के नाम की प्रस्तुति के लिए संगीत सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, अत्यन्त प्रसिद्ध कवि-सन्त हुए और उनके संगीतमय छंद निश्चित रूप से अद्वितीय हैं। अपने साधारण पदों की सहायता से कबीर ने अपनी निर्गुण उपासना पद्धति का विकास किया। तुलसीदासजी रामचरित मानस के साथ-साथ कई भजनों के रचियता हैं। सूरदास ने कृष्ण तथा उनकी बाल लीला के साथ कई भजन लिखे। आचार्य भिक्षु ने 38,000 पद्यों की रचना के साथ-साथ अनेक भजन लिखे। श्री मज्ञयाचार्य ने $3^1/_2$ लाख पद्यों की रचना के साथ-साथ अनेकों आध्यात्मिक भजनों की रचना की। आचार्यश्री तुलसी का कालूयशोविलास, अग्नि परीक्षा आदि खण्ड-काव्य संगीतमय ध्वनि तरंगों से तरंगित हैं तो आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी का ऋषभायण, अश्रुवीणा आदि काव्य अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जैन आगमों की अनेकों गाथाएं प्राकृत भाषा में संगीतमय हैं, इससे तीर्थंकरों की संगीत ध्वनि का स्पष्ट निदर्शन मिलता है।

नमस्कार महामंत्र भी अनादि काल से असंख्य साधकों द्वारा भक्ति के स्वर संगीतमय ध्वनि से ओत-प्रोत हैं, जिसमें एक विशेष प्रकार का चुम्बकीय आकर्षण है। वे मानव को अन्तर्चेतना की अनुभूति तक पहुँचाने के सशक्त सोपान हैं।

यहां तक कि वर्तमान सेटेलाइट युग में भी अधिकांश जन-चेतना संगीत के प्रति आसक्त है और दैविक शक्तियों के निकट ले जाने की इसकी शक्ति के प्रति समर्पित भी है। विश्व में भारत एकमात्र ऐसा देश कहा जा सकता है, जहां संगीत और मानवीय जीवन का संबंध बहुत हद तक आध्यात्मिक है। आध्यात्मिकता के पथ पर संगीत-भक्ति और मुक्ति के रास्ते अपनी यात्रा तय करता हुआ

शारीरिक और मानसिक चिकित्सा के रूप में भी सहायक हो रहा है। यदि ऐसा कहा जाये कि संगीत काया, अन्तर्मन और अध्यात्म की सफल कुंजी है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

महामंत्र और संगीत

शब्द शक्ति के दो चामत्कारिक रूप हैं–एक काव्य और दूसरा मंत्र। काव्य में स्तुतियां-स्तोत्र आदि आते हैं। मंत्र जप का ही एक रूप हे। वह आत्म-शक्ति, प्राण-शक्ति, चैतन्य शक्ति को जगाने का विज्ञान है। इसके दो विभाग हैं–

1. भक्ति मार्ग,
2. तंत्र मार्ग।

जो लोग सरल, श्रद्धावान होते हैं, उनके लिए भक्ति मार्ग है तथा बौद्धिक लोगों के लिए तंत्र का मार्ग है।

एक लय एक गति से निरन्तर किये जाने वाले सूक्ष्म आघात का चमत्कार आज वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में देखा जा सकता है। इस प्रयोग की पुष्टि हो चुकी है कि एक टन भारी लोहे का गर्डर किसी छत के मध्य लटका दिया जाए और उस पर पांच ग्राम के वजन वाले कर्क का निरन्तर आघात एक गति एक क्रम से कराया जाए तो कुछ ही समय बाद गर्डर कांपने लगेगा।

पुलों पर से होकर गुजरती सेना को पैर मिलाकर चलने से रोक दिया जाता है। कारण यह है कि लेफ्ट राइट के ठीक क्रम से तालबद्ध पैर पड़ने से जो एकीभूत शक्ति उत्पन्न होती है, उसकी सामर्थ्य इतनी अद्‌भुत एवं प्रचण्ड होती है कि उसके प्रहार से मजबूत पुलों के भी टूट गिरने की संभावना बन जाती है। इसी प्रकार मंत्र-जप के क्रमबद्ध उच्चारण से भी एक तापमान उत्पन्न होता है, जिसके परिणाम स्वरूप शरीर के अन्तःस्रावी संस्थानों में विशिष्ट प्रकार की हलचलें प्रारम्भ हो जाती हैं, जो आन्तरिक मूर्च्छा को दूर करने एवं सुषुप्त क्षमताओं को जागृत करने में सक्षम रहते हैं।

नमस्कार महामंत्र स्वयं शक्तिशाली मंत्र है। इसका वर्ण-विन्यास, अक्षर संरचना अत्यन्त प्रभावशाली है। यह परम मंत्र है, परम रहस्य है, परम से भी परम तत्त्व है, परम ज्ञान है, परम ज्ञेय है, शुद्ध ध्यान है, शुद्ध ध्येय है। जैसा कि कहा गया है–

एसो परमो मंतो, परम रहस्यं परं परं तत्तं।
नाणं परमं नयं, सुद्धं झाणं परं झेयं॥

इस महामंत्र में स्थित नाद के द्वारा अप्रकट शक्ति को प्रकट किया जाता है। इस महामंत्र में ऋद्धियां-सिद्धियां विद्यमान हैं। ऐंकार, ह्रींकार अथवा अर्हं ये सभी नवकार महामंत्र से प्रस्फुटित हुए हैं। प्रेक्षा प्रणेता आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने गहरी प्रेक्षा के दौरान अनुभव की लेखनी से लिखा है–

''दो कान, दो आँखें, नाक के दो छिद्र और एक मुँह–इन सात छिद्रों को सात अंगुलियों से ढ़क कर 'णमो अरहंताणं का जप करने से दिव्य नाद, दिव्य घंटारव, दिव्य संगीत, दिव्य रूप, दिव्य गंध, दिव्य रस का अनुभव होता है।''[4]

प्रसिद्ध बांसुरी वादक पशुपतिनाथ आर्य की मान्यतानुसार बांसुरी का आकार मानव शरीर जैसा है। इसके सात छिद्र मनुष्य शरीर में स्थित सात चक्रों के प्रतीक हैं। इन छिद्रों से निकलने वाले सात स्वर उन चक्रों को प्रभावित करते हैं। चक्र जागरण से अध्यात्म चेतना जागती है। प्राण ऊर्जा का संवर्धन होता है। नाड़ी तंत्र, ग्रंथि तंत्र स्वस्थ/संतुलित होते हैं।

सात स्वर और महामंत्र की तरंगों के रंग और प्रभाव

रंग, रोशनी व ध्वनि–इन तीनों का आपस में घनिष्ट संबंध है। ये तीनों प्रकंपन हैं, तरंगें हैं। उनका भिन्न-भिन्न माप भी है। इनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, तदनुसार ही इनके प्रभाव बदलते रहते हैं। आज का भौतिक विज्ञान भी इसे मानता है। संगीत के सातों स्वरों की तरंगों के अलग-अलग रंग होते हैं और ये रंग मनुष्य के शरीर और मन को प्रभावित करते हैं एवं रोग का निवारण भी करते हैं। डॉक्टर रिपुवेन अम्बार ने एक ध्वनि यंत्र मशीन का उल्लेख किया है, जिसका नाम 'ओरोटोन' है। इससे संगीत के सातों स्वर निकलते हैं और भिन्न स्वरों से भिन्न-भिन्न रंग भी निकलते हैं। उस मशीन के नोट 'सी' से लाल रंग, 'इ' से पीला रंग और 'जी' से नीला रंग निकलता है।[5] जिस रोगी को जैसे रंग की आवश्यकता है, उसी रंग के स्वरों का संगीत रोगी को सुनाने से लाभ होता है।

भक्ति रस के लिए मीरां के गीत प्रसिद्ध हैं। भक्ति रस में नीले रंग की प्रधानता रहती है। वीर रस के गीत या कविताओं में लाल रंग की प्रधानता होती है, जो साहस का प्रतीक है। सैनिकों के हृदय में किसी कारण से मायूसी दिखाई देने पर कवि वीर रस की कविता गाते और सैनिकों में पुन: वीरता जागृत हो जाती और वे युद्ध में विजय प्राप्त कर लेते।

सात स्वर, सात चक्र, सात रंग यह एक एकरूपता है। नादानुसंधान-केन्द्र के (जयपुर) प्रमुख प्रभुशरण मेहता के अनुसार संगीत की विभिन्न रागिनियों

के संगान से सूक्ष्म रंग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं। ध्वनि और रंगों के योग से रोगोपचार में सफलता प्राप्त की जा सकती है। प्रज्ञा महर्षि आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के अनुसार ध्वनि, रंग और भावधारा का गहरा संबंध है। यही कारण है कि नमस्कार महामंत्र का जप रंगों के साथ करने से भावधारा परिष्कृत होती है। नि:संदेह भावों की निर्मलता ही स्वास्थ्य का सुदृढ़ आधार है। नाद वैज्ञानिकों का विश्वास है कि संगीत के सात स्वरों के नियमित संगान या अभ्यास से आधि, व्याधि और उपाधि जनित रोगों का उपचार संभव है।[6] जैसे–

षड्ज स्वर 'सा' के संगान से	–	लीवर और मोटापे का कष्ट कम होता है।
षड्ज स्वर 'रे' के संगान से	–	नेत्र-विकार, हृदय-रोग, सर्दी, कफ का प्रकोप तथा मांसपेशीय दुर्बलता मिटती है। पाचन संस्थान स्वस्थ एवं सक्रिय होता है।
गंधार स्वर 'ग' के संगान से	–	चर्म रोग, खसरा, स्मृति-दोष एवं वात रोग का निवारण होता है।
मध्यम स्वर 'म' के संगान से	–	तनाव, उच्च रक्तचाप, पुरानी पेचिश आदि का उपचार किया जाता है।
पंचम स्वर 'प' के संगान से	–	मुँह, गले के रोग एवं वीर्य दोष का शमन होता है।
धैवत स्वर 'ध' के संगान से	–	अस्थि रोग, पांडु रोग का शमन होता है।
निषाद स्वर 'नि' के संगान से	–	मिरगी, गठिया आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।

यह सब स्वर साधना और संगीत के प्रयोगों की विधि प्रशिक्षण से ही संभव है।

संगीत शास्त्र के इन सातों स्वरों का नमस्कार महामंत्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस महामंत्र में सातों स्वरों का समावेश अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। सातों स्वरों की तरंगों के रंग ही महामंत्र के रंग हैं। अत: महामंत्र के प्रत्येक पद्य के साथ रंगों का ध्यान और चक्रों के स्थानों का नियोजन अपने भीतर एक बहुत बड़ी शक्ति, अध्यात्म् शक्ति को अन्तर्निहित किये हुए है। श्रद्धा भक्ति परिपूरित अन्त:करण से निकले ये बोल ज्योतिर्मयी, ज्ञानमयी और शक्तिमयी परम सत्ता के सामीप्य में तादात्म्य की पराकाष्ठा को निर्मित करते हैं।

हम्पी (कर्नाटक) में एक ऐसा मंदिर है, जो म्यूजिक टेंपल के नाम से विख्यात है। उस मंदिर में बहुत सारे खंभे हैं और प्रत्येक खंभे की अपनी खास पहचान है। प्रत्येक खंभे के ऊपर एक पुतली बनी है। उन पुतलियों में से किसी के हाथ में तबला है, किसी के हाथ में वीणा है और किसी के हाथ में बांसुरी है। आश्चर्य की बात यह है कि जिस पुतली के हाथ में जैसा वाद्य यंत्र है उस खंभे को बजाने पर वैसा ही संगीत निष्पादित होता है।

जब मैंने यह विवरण सुना तो मन में आया कि वैज्ञानिक प्रक्रिया से जब पत्थर के खंभे संगीत की तान अलाप सकते हैं तो फिर कोई मंत्र वैसी सृष्टि क्यों नहीं कर सकता? निश्चित रूप से कर सकता है क्योंकि वह चैतन्यमय बन जाता है। महामंत्र की ध्वनि चित्त की तन्मयता में संगीत उत्पन्न कर सकती है। इस महामंत्र का उपासक इस महामंत्र की सम्यक् आराधना से अपने भीतर सोए दिव्यत्व को जागृत कर दिव्य नाद की झंकार को सुन सकता है।

निष्कर्ष

हमारे अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तत्त्व है–शब्द, जिसका सूक्ष्म एवं व्यापक रूप है। ''जहां जीवन है वहां नाद है।'' सम्पूर्ण जगत् नाद के अधीन है–इस स्वीकृति के आधार पर हिन्दू परम्परा में नाद को ब्रह्म कहा गया है। शब्द भी जब विशिष्ट लय या राग में प्रयुक्त उच्चरित होता है तो उसकी गुणात्मकता में अप्रतिम परिवर्तन आ जाता है। ग्रंथों में जप आदि का बहुत महत्त्व बताया गया है, जैसे–करोड़ स्तोत्र के बराबर एक जप, करोड़ जप के बराबर एक ध्यान और करोड़ ध्यान के बराबर एक लय है। लय अर्थात् चित्त की लीनता, एकाग्रता, स्थिरता अथवा स्वरूप में रमणता, जो ध्यान की सर्वोत्तम अवस्था है। शब्दों की लयात्मक प्रस्तुति ही संगीत है। संगीत मन की समाधि का सरलतम उपाय है। वह जीवन को रसात्मकता और विचारों को लयात्मकता प्रदान करता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संगीत प्रकृति के कण-कण को परिस्पन्दित, परिष्कृत और उर्जस्विल करता है। यह मानवीय शोध, संवेदनाओं और स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। सामाजिक प्रगति, राजनैतिक क्रांति तथा आध्यात्मिक जागृति–इन सब क्षेत्रों में संगीत की उत्प्रेरक भूमिका रहती है।

नमस्कार महामंत्र जैसे प्रभावक महामंत्र की महिमा भी विभिन्न स्वर लहरियों में अनुगूंजित है।* जिनका श्रद्धापूर्वक संगान व श्रवण साधक/भक्तों के

* देखें परिशिष्ट–2

चित्त को आनन्द से आप्लावित कर देता है। मन श्रद्धा व अगाध भक्ति से आनन्द मग्न हो झूमने लगता है। अध्यात्म की भाषा में भक्ति रस से आप्लावित चित्त कर्मों की अनंत-अनंत वर्गणाओं को क्षीण करने में सफल होता है। संगीत से न केवल हमारी भावधारा ही प्रभावित होती है अपितु हमारा श्वास भी दीर्घ होता है। भक्ति और वैराग्य रस से परिपूरित गीतिकाएं आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन कराती है। अत: आत्मसाक्षात्कार की भूमिका पर आरोहण निमित्त महामंत्र की संगीतमय स्वाध्याय से सारा वातावरण तरंगित होकर विद्युतमय बन जाता है। इन सारे रहस्यों का साक्षात्कार आध्यात्मिक अनुसंधान की प्रक्रिया से गुजरने पर ही संभव हो सकता है।

सन्दर्भ –

1. छांदोपनिषद्, 1.7.6
2. संगीत रत्नाकर, 26.1
3. ऋषि मंडल स्तोत्र, 12
4. एसो पंचणमुक्कारो, पृ. 141
5. लाइफ पॉजिटिव (कण-कण में संगीत)
6. चैत्य वंदना

22. जाति स्मृति के आलोक में नमस्कार महामंत्र

जाति स्मृति का अर्थ है—पूर्व जन्म की स्मृति। भगवान महावीर ने कहा— "मानव चित्तवान है"। चित्त की अनेकता को जानना भगवान महावीर की मनोवैज्ञानिक खोज है। चित्त कोषागार है। संस्कारों और वृत्तियों की परत-दर-परत हमारे चित्त पर जमी हुई है। विश्व के ग्लोब जैसा ही ग्लोब है हमारा चित्त। विश्व एक है परन्तु इसके मानचित्र में अनेक देश हैं। ईंच-दर-ईंच पर अलग-अलग राष्ट्रों की गवाह देने वाली रेखाएं उसमें खींची हुई रहती हैं। पर हमारे चित्त का मानचित्र विश्व के मानचित्र से भी अधिक विस्तृत है। केवल वर्तमान ही नहीं परन्तु अतीत का समूचा इतिहास भी चित्त के पटल पर दबा उभरा रहता है। चित्त का अपना समाज और अपना विश्व है। इसकी अपनी संतानें और पाठशालाएं हैं। न्यायालय और कारागृह भी इसके अपने निजी होते हैं। यदि जन्मान्तर के अतीत को न भी उठाया जाये और सिर्फ वर्तमान के ही पन्ने पलटे जायें तब भी चित्त के विश्वकोष की मोटाई अथवा विशालता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

चित्त की अनेकता का अर्थ है—वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों की बहुलता। वृत्ति बहुलता ही चित्त का बिखराव है। चित्त हमारे शरीर की सूक्ष्मतम ऊर्जा है। जाति स्मरण का अर्थ है चित्त को बारीकी से बांचना। ऊर्जा बिखराव के लिए ही नहीं होती, उपयोग और संयोजन के लिए होती है। जो चित्त आज भटक रहा है, यदि उसे सम्यक् दिशा में मोड़ दिया जाए तो चित्त की प्रखरता हमारे जीवन के उर्ध्वारोहण में सर्वाधिक सहकारी बन सकती है। साथ ही ऊर्जा के उर्ध्वारोहण से प्राप्त पवित्रता और एकाग्रता से चित्त को पढ़ना शुरू कर दें तो वह जमी हुई परत-दर-परत हमारे साक्षात् होती हुई हमें अपने अतीत अर्थात् पूर्वभव का साक्षात्कार तक कराने में सक्षम है।

तीर्थंकरों का भामंडल चैतन्य ऊर्जा से आन्दोलित होता है अत: उनके दर्शन से हमारी आवृत्त चेतना शक्ति का शुद्ध मतिज्ञान श्रुतज्ञान के रूप में अनावृत्त होकर विशुद्ध जाति स्मृति ज्ञान के रूप में फलितार्थ होना सहज है।

एक ऐसी मान्यता है कि तीर्थंकरों के भामंडल की प्रतिछाया में भव्यात्मा अपने पूर्व जन्म के तीन भव, वर्तमान का एक और आगामी जन्म के तीन भव ऐसे सात भवों को देख सकता है।

भगवान् महावीर के पास साधक आते, वे उन्हें निराश नहीं होने देते। भगवान् साधना के द्वारा उन्हें जाति स्मृति करवा देते, जिसके कारण आत्मा

पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, पुण्य-पाप आदि तत्त्वों का उन्हें साक्षात्कार हो जाता। वर्तमान में भी प्रेक्षाध्यान की विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा साधकों को पूर्वजन्म की स्मृति करवाई जाती है।

पूर्वजन्म : प्रमाण मीमांसा

पूर्व जन्म की स्मृति मति ज्ञान का ही एक विशेष प्रकार है। इससे पिछले नौ समनस्क जीवन की घटनावलियां जानी जा सकती हैं। पूर्वजन्म में घटित घटना के समान घटना घटने पर वह पूर्व परिचित-सी लगती है। ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करने से चित्त की एकाग्रता और शुद्धि होने पर पूर्व जन्म की स्मृति उत्पन्न होती है। सब समनस्क जीवों को पूर्व जन्म की स्मृति नहीं होती, इसकी कारण मीमांसा करते हुए एक प्राचीन आचार्य ने लिखा है–

जायमाणस्स जं दुक्खं, मरणमाणस्स वा पुणो।
तेण दुक्खेण समूढो, जाइं सरइ न अप्पणो॥

व्यक्ति जन्म और मरण की वेदना से सम्मूढ़ हो जाता है, इसलिए साधारणतया उसे जाति स्मृति नहीं होती।

एक ही जीवन में दु:ख व्यग्र दशा (सम्मोह-दशा) में स्मृति-भ्रंश हो जाता है, तब वैसी स्थिति में पूर्व जन्म की स्मृति लुप्त हो जाये, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

पूर्व जन्म की स्मृति के साधन मस्तिष्क आदि नहीं होते, फिर भी आत्मा के दृढ़ संस्कार और ज्ञानबल से उसकी स्मृति हो आती है। इसलिए जैन आगम भगवती में ज्ञान के दो प्रकार बतलाये गये हैं[1]–

1. इस जन्म का ज्ञान,
2. अगले जन्म का ज्ञान।

कुछ पुष्ट प्रमाणों से भारतीय आत्मवादियों ने पूर्वजन्म का समर्थन किया है–

आगमिक प्रमाण

ण इमं चित्तं समादाए, भुज्जो लोयंमि जायति।
अप्पणो उत्तमं ठाणं, सण्णी नाणेण जाणइ॥[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि निर्मल चित्त वाला व्यक्ति ही पूर्व जन्म को जानकर विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त होता है।

महात्मा बुद्ध ने अपने पैर में चुभने वाले कांटों को पूर्वजन्म में किये हुए प्राणीवध का विपाक बताया। भगवान् महावीर ने कहा–''कोहं माणं च मायं च लोभं च पाववड्ढणं''[3] क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारों पाप को बढ़ाने वाले हैं अर्थात् पूर्व जन्म के मूल को पोषण देने वाले हैं। नव शिशु के हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। उसका कारण पूर्वजन्म की स्मृति है।[4] नव शिशु स्तनपान करने लगता है। यह पूर्व जन्म में किये हुए आहार के अभ्यास से ही होता है।[5] जिस प्रकार युवक का शरीर बालक शरीर की उत्तरवर्ती अवस्था है, वैसे ही बालक का शरीर पूर्व जन्म के बाद में होने वाली अवस्था है। यह देह प्राप्ति की अवस्था है। इसका जो अधिकारी है, वह आत्मादेही है। इस तथ्य की पुष्टि में विशेषावश्यक भाष्य की निम्नोक्त गाथा इस प्रकार है–

बाल शरीरं देहं तरपुव्वं, इंदिया इमत्ताओ।
जुवदेहो बालादिव स जस्स देहो स देहित्ति॥

नव शिशु को जो सुख-दुःख का अनुभव होता है, वह भी पूर्व अनुभव युक्त है। जीवन का मोह और मृत्यु का भय पूर्वबद्ध संस्कारों का परिणाम है। यदि पूर्वजन्म में इनका अनुभव न हुआ होता तो नवोत्पन्न प्राणियों में ऐसी वृत्तियां नहीं मिलती। पाश्चात्य दार्शनिक भी इस विषय में मौन नहीं हैं।

प्राचीन दार्शनिक प्लेटो ने कहा–आत्मा सदा अपने लिए नए-नए वस्त्र बुनती है तथा आत्मा में एक ऐसी नैसर्गिक शक्ति है, जो ध्रुव रहेगी और अनेक बार जन्म लेगी।[6]

नवीन दार्शनिक शोपनहार के शब्दों में पुनर्जन्म निःसंदिग्ध तत्त्व है। जैसे–''मैंने यह भी निवेदन किया कि जो कोई पुनर्जन्म के बारे में पहले पहल सुनता है, उसे भी वह स्पष्ट रूपेण प्रतीत हो जाता है।[7]

कम्प्यूटर से जाति स्मृति की तुलना

जिस प्रकार कम्प्युटर में बहुत-सी एन्ट्रियां की हुई हैं, फिर भी कम्प्यूटर में एक नया प्रोग्राम डालते हैं, सारी डाली हुई एन्ट्री को ब्रेकेट में रखने का। अब उस कम्प्यूटर में डाली एक एन्ट्री से कम्प्यूटर हजारों एन्ट्रियों को ब्रेकेट में अपने-आप बंद कर देता है, वैसी ही कार्यप्रणाली हमारे मन रूपी कम्प्यूटर की है।

मन के कम्प्यूटर में डाली गई एक एन्ट्री से हजार एन्ट्रियां वह अपने आप कर लेता है। इसलिए मन में एक एन्ट्री डालने से पूर्व हजार बार सोचना चाहिए। जहां तक बने निर्विचार और साक्षी रहने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम मन

रूपी कम्प्यूटर में एकाग्रता की एन्ट्री डालते हैं तो वह ब्रेकेट में रही पूर्वजन्म की एन्ट्री को पकड़ने में सफल हो जाती है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मन के कम्प्यूटर की इस भाषा को समझना हमारी आँख और बुद्धि की क्षमता के बाहर की बात है। मन की भाषा हमारी तीसरी आँख समझ सकती है। इसी तीसरी आँख को सायकॉलोजी में ''प्वॉइण्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स'' के नाम से जानते हैं।

प्राचीन साहित्य एवं महामंत्र से संपृक्त घटना प्रसंगों का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि इस नमस्कार महामंत्र में पूर्व जन्म की स्मृति कराने की अद्‌भुत क्षमता है। बहुत सारे ऐसे जीवन्त प्रसंग है जो इस तथ्य को पुष्ट करने वाले हैं कि महामंत्र के श्रवण मात्र से व्यक्ति अतीत की स्मृतियों में खो जाता है तथा गहरी एकाग्रता के प्रवाह में उन्हें जाति स्मृति हो जाती है। चुम्बक रूप में कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया जा रहा है, जो उपयोगी, प्रेरक एवं महामंत्र की अपूर्व क्षमता को उजागर करने वाले हैं।

1. णमो अरहंताणं पद से जाति स्मृति

श्रीपुरनगर के राजा चन्द्रपुर की पुत्री राजकुमारी सुदर्शना ने बाल्यावस्था से यौवनावस्था में प्रवेश किया ही था कि एक दिन वह राजसभा में अपने पिता के पास बैठी थी। उसी समय राजसभा में स्थित एक भरूँच नगर के श्रेष्ठी ऋषभदत्त को छींक आई। छींक के साथ श्रेष्ठी के मुँह से 'णमो अरहंताणं' पद की ध्वनि निकली। यह पद सुनते ही उस पर विचार करते-करते राजकुमारी मूर्च्छित हो गई। सब सोचने लगे अचानक राजकुमारी को क्या हो गया? सबकी दृष्टि 'णमो अरहंताणं' बोलने वाले श्रेष्ठी पर पड़ी। कई उपचारों के दौरान मूर्च्छा टूटते ही राजकुमारी सावधान होकर बैठ गई।

माता-पिता कुछ पूछते उससे पूर्व ही राजकुमारी भरूंच नगर से समागत श्रेष्ठी को संबोधित कर पूछने लगी–वहां मुनिराज के सुखसाता है। क्या नर्मदा किनारे बसे तुम्हारे नगर के बाहर एक विशाल चैत्यवृक्ष है, जहां कभी पेड़ के नीचे एक मुनिराज विराजते थे। क्या वह स्थान अब भी सुरक्षित है? राजा और श्रेष्ठी दोनों सुदर्शना के प्रश्नों से आश्चर्यचकित थे। राजा ने कहा–बेटी! तूने न भरूंच नगर देखा, न नर्मदा के किनारे के विशाल पेड़ को देखा, तब मुनिराज की चर्चा कैसे कर रही हो? तुम जिन मुनियों के समाचार पूछती हो, वे तुम्हें कहां मिले हैं?

प्रत्युत्तर में राजकुमारी ने कहा–पितृवर! आपका कथन यथार्थ है पर जाति स्मरण ज्ञान से मुझे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। उस समय मैं एक

समड़ी (चील) के रूप में उस वृक्ष के कोटर में रहती थी। एक दिन किसी धीवर के बाण से मैं घायल हो गई। उस समय एक मुनिराज ने मुझे "णमो अरहंताणं" का पाठ सुनाया। उनके उपकार का ही परिणाम है कि मैंने राजकुमारी के रूप में आपके घर में जन्म लिया है। राजकुमारी सुदर्शना ने इस घटना के पश्चात् वहां जाकर मुनिराज के दर्शन किये। उनके उपदेश से अभिभूत हो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया। अनशन पूर्वक समाधि मृत्यु का वरण कर वह स्वर्ग में उत्पन्न हुई। वहां से मानव भव प्राप्त कर मोक्ष जायेगी।

इस घटना के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कमलों के विकास में सूर्य निमित्त कारण है, वैसे ही अरिहंत आदि महान आत्माओं का नाम भी संसारी आत्माओं के उत्थान में निमित्त कारण बनता है। आत्मा में बल, साहस और शक्ति का संचार होता है।

2. जाति स्मृति के आलोक में मगरमच्छ

गुणसुन्दर के गुणसुन्दरी और श्यामासुन्दरी दो पत्नियां थीं। गुण सम्पन्न होने के कारण गुण सुन्दर का आकर्षण सहज ही गुणसुन्दरी की तरफ था। श्यामसुन्दरी इस कारण गुणसुन्दरी से ईर्ष्या करने लगी। एक दिन अवसर देखकर उसने गुणसुन्दरी को धक्का लगाकर नदी में गिरा दिया। गिरते-गिरते उसके मुख से नमस्कार महामंत्र की ध्वनि निकली। संयोग की बात वह एक मगरमच्छ की पीठ पर जाकर गिरी। उसे जब तक होश रहा, वह मन ही मन महामंत्र का स्मरण करती रही।

उसके गिरने से मगरमच्छ के कानों में नमस्कार महामंत्र की ध्वनि टकराई। उसका चिन्तन करते-करते उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसने जाना—मैं पूर्वभव में मुनि था तब यह महामंत्र बोलता था। चित्त की चंचलता के कारण मैंने श्रमण धर्म के आचार का सम्यक् पालन नहीं किया। गुरु के उपदेश को ही नहीं सुना परिणाम स्वरूप मुझे तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होना पड़ा। खैर! अब भी समय है मुझे अपनी आत्मा का उद्धार करना है परन्तु पहले जिस औरत के द्वारा महामंत्र सुनकर मुझे ज्ञान हुआ है, उसका मुझे उपकार करना चाहिए।

उपकार की भावना से उपकृत हो मगरमचछ ने उस औरत को नदी के किनारे लाकर छोड़ दिया फिर स्वयं एकान्त में जाकर अनशन स्वीकार कर अष्टम् स्वर्ग में देव बना।

इधर गुणसुन्दरी को नदी के किनारे मूर्च्छित अवस्था में एक धीवर ने देखा। वह उसे अपने घर पर ले गया। उसे उल्टी लटकाकर सब नसों में पहुँचे

पानी को बाहर निकाला। औषधोपचार से वह स्वस्थ हो गई। उसने उसे अपनी धर्म बहिन बनाकर वहीं रख लिया। वह महामंत्र की आराधना करती हुई वहां रहने लगी।

उधर गुणसुन्दर पत्नी की खोज करता-करता कुछ समय पश्चात् वहां पहुँचा। दोनों का स्नेह मिलन हुआ। दोनों की खुशी का कोई पार नहीं था। गुण सुन्दर ने धीवर को विपुल मात्रा में धन दिया, कृतज्ञता ज्ञापित की और पत्नी को लेकर अपने घर लौटा।

अब उसे सम्पूर्ण घटनावृत्त की अवगति मिल चुकी थी। उसने श्यामासुन्दरी को अपने घर से निकाल दिया और दोनों महामंत्र की आराधना करते हुए आनन्द से रहने लगे।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि जैसे दही का सार मक्खन है, कविता का सार ध्वनि है, वैसे ही समस्त धर्म अनुष्ठानों का सार परमेष्ठी नवकार है। यह अनुपम है तथा विश्व विख्यात और वंदनीय है। इसी महामंत्र से गुण-सुन्दरी का जीवन बचा, गुण सुन्दर की समस्या का समाधान हुआ और मगरमच्छ को जाति स्मरण ज्ञान तथा शुभ (देव) आयुष्य की प्राप्ति हुई।

3. कैसे मिला महामंत्र से जीवनदान

एक नगर रक्षक को नदी के प्रवाह में एक अलभ्य फल मिला। उस नवीन फल को उसने नृप बलराम को भेंट किया। जिह्वालोलुपता के कारण नृप ने उसे प्रतिदिन ऐसा ही फल भेंट करने की अनुज्ञा दी। जानकारी प्राप्त करने पर नगर रक्षक को मूल रहस्य की अवगति मिली। वह पुनः नृप के पास आया और कहा– राजन! इस अमृत फल को तोड़ने वाला मृत्यु का वरण करता है। रसलोलुपता के कारण राजा स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख सकता। राजाज्ञानुसार प्रतिदिन एक व्यक्ति फल तोड़कर लाता और मृत्यु की गोद में समा जाता।

इस क्रम में एक दिन धावक जिनदास का नाम आया। वह महामंत्र का स्मरण कर निर्भयता पूर्वक वृक्ष के पास गया। कुछ क्षण वहां खड़ा रहा। नमस्कार महामंत्र बोलकर फल तोड़ने के लिए अपने हाथों को आगे बढ़ाया। फल उसके हाथ में आ गया। पर उसके आश्चर्य का कोई पार नहीं रहा जब उस वृक्ष का अधिष्ठाता व्यन्तर देव वहां उपस्थित हुआ।

उस देव ने कहा–"महामानव! तुम मेरे गुरु हों तुमने आज नमस्कार महामंत्र का उच्चारण कर मेरी पिछली स्मृति को जागृत कर दिया है। मैं पिछले जन्म

में उपासक था। व्रतों की सम्यक् आराधना के अभाव में मैं विराधक हो गया। मुझे व्यन्तर योनि में आना पड़ा। आज तुम्हारे संसर्ग से मैंने सत्य को पा लिया है। मैं प्रसन्न हूँ। आज से प्रतिदिन तुम्हें एक फल मिल जायेगा।''

जिनदास फल को लेकर आया और राजा को सारा वृतान्त कह सुनाया। महामंत्र के इस चमत्कार से प्रभावित हो राजा जैनी बन गया। सभी नगरवासियों को जीवनदान मिल गया। उसके मन में भी महामंत्र के प्रति अत्यन्त आदर के भाव हो गये। नगरवासी जहां भी जाते, बैठते नमस्कार महामंत्र की चर्चा करते-रहते। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महामंत्र के प्रभाव से व्यन्तर देव ने भी अपने पूर्व भव को जान लिया। वह अहिंसक और धार्मिक बन गया। देव ही नहीं साथ-साथ राजा भी धर्म के प्रति आस्थावान हो गया तथा सारा नगर धर्ममय बन गया।

4. माता यह तुम्हारे वचनों का प्रभाव है

वन गमन के समय एक महर्द्धिक देव सती दमयन्ती को प्रणाम कर कहने लगा– ''माता! मैं इस तपोवन के कुलपति का शिष्य था। मैं तप-साधना कर रहा था। अन्य साधकों ने मेरी कभी प्रशंसा नहीं की। मैं क्रोधित हो तपोवन को छोड़कर चला गया। रात्रि में पता नहीं लगा और मैं चलते-चलते एक गड्ढे में गिर गया। गिरने से मेरी नाक कट गई और दांत टूट गये। मैंने असह्य वेदना को धैर्य से सहा। आश्रम वालों ने मेरी खोज तक नहीं की अत: मेरा आवेश उनके प्रति बढ़ता ही गया। आवेश में मरकर मैं विषधर बना। जब तुम इधर से निकली तो मैं तुम्हें काटने के लिए दौड़ा। उस समय तुम नमस्कार महामंत्र बोल रही थी। महामंत्र की शब्द ध्वनि मेरे कानों से टकराई। मैं कुछ क्षण रुका, तुम्हें काटने का चिंतन छोड़ दिया। नवकार मंत्र में मेरी चेतना खो गई और वहीं पर मुझे जाति स्मरण ज्ञान हो गया।

भयंकर बारिश के कारण तुम भी वहां रुकी रही और मैं भी वहां रुका रहा। तुमने तापसों को धर्म का उपदेश दिया, वह मैंने भी सुना। उस उपदेश को सुनकर मैंने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। वापिस रुकने के बाद मैं वहां से एकान्त स्थान में गया और अनशन ग्रहण कर लिया। अनशन ग्रहण कर मैं नमस्कार महामंत्र के जप में तल्लीन हो गया। उन प्रशस्त भावों में मेरे आयुष्य का बंधन हुआ। मैं उस सर्प योनि का आयुष्य पूरा कर महामंत्र के प्रभाव से प्रथम स्वर्ग (सौधर्म देवलोक) में महर्द्धिक देव बना हूँ। मैं प्रथम स्वर्ग के कुसुमप्रभ विमान में कुसुमप्रभ नाम का देव हूँ।''

माता यह तुम्हारे वचनों का प्रभाव है। देव बनने के पश्चात् यह सम्पूर्ण वृतान्त अवधिज्ञान से जानकर मैं आप जैसी सती के दर्शन करने आया हूँ। देव ने तपस्वियों से पिछले भव में कृत क्रोध की क्षमायाचना की।

देव ने अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा अपने पिछले भव अर्थात् सर्प का रूप बनाकर वृक्ष पर लटका दिया और कहा–यह साक्षात् क्रोध का परिणाम है। मैं सती की कृपा से देव बना हूँ। इस कथा के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नमस्कार महामंत्र के उच्चारण मात्र से "तीन घर बधावा" वाली उक्ति चरितार्थ हो गई। दमयन्ती मौत से बच गई, सर्प को जाति स्मृति हो गई, जो उसके शुभ आयुबंध में निमित्त बनी और तापसों को भी बोध पाठ मिल गया।

निष्कर्ष

भौतिक विज्ञान की पहुँच से परे इस महामंत्र का प्रभाव है। विज्ञान और मनोविज्ञान जिन घटनाओं को असंभव मानता है, महामंत्र के प्रभाव से वे घटनाएं प्रत्यक्ष घटित होती देखी जाती हैं। जिसने इस महामंत्र के प्रभाव का अनुभव किया है, जिसने इसकी साधना, आराधना से शक्ति, स्फूर्ति, उल्लास और लौकिक लोकोत्तर मानसिक उपलब्धि का अनुभव किया है, वह शब्दों द्वारा पूरा वर्णन नहीं कर सकता।

नमस्कार महामंत्र अलौकिक शक्ति से सम्पन्न मंत्र है। यह मानव की गरिमा को गति प्रदान करने वाला एक विलक्षण मंत्र है। यह व्यक्ति को महिमा मंडित करने वाला मंत्र है। समस्त ऋद्धियां एवं सिद्धियां इस महामंत्र में सन्निहित हैं। निधियों की सन्निधि के साथ-साथ कामधेनू भी उसका अनुगमन करती है। भूपति भी इसके प्रभाव से भृत्य की भांति उनका अनुगमन करते हैं। कहा भी है–

निधयः सन्निधौ कामधेनुरप्यनुगामिका।
भूभृतो भृतकास्तस्य यस्य नैष हृदाहिरूक॥

यह महामंत्र नृप, चक्रवर्ती, देव, देवेन्द्र, अहमिन्द्र आदि पदवियों के साथ-साथ सद्गति का बीजरूप है और सर्वोत्कृष्ट पद मोक्ष पद का सम्पूर्ण आराधक है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि इस पवित्र मंत्र की आराधना करने वाला अपने पूर्व भव का साक्षात् व स्मरण कर जीवन में नई दिशा प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ–

1. भगवती, 1/1

2. दशाश्रुत स्कन्ध, 5/2, पृ. 63

3. दसवैकालिक, 8/36

4. न्यायसूत्र, 3/1/11

5. वही, 3/1/11

6. The soul always weaves her garment a new. The soul has a natural strength which will hold out and be born many times.

7. I have also remearked that it is atonce obvious to every one who hears of it (rebirth) for the first time.

23. नमस्कार महामंत्र और आरोग्य

मनुष्य प्रगतिशील प्राणी है। वह अपने निर्धारित लक्ष्य में सफलता पाना चाहता है। वह इष्ट कार्य में सिद्धि चाहता है। कार्य सिद्धि की तीन अनिवार्यताएं हैं, आरोग्य, ज्ञान और समाप्ति। इन तीनों में भी प्रथम स्थान आरोग्य को प्राप्त हुआ है। जैसे ज्ञान का सार आचार, धर्म का सार शांति, वैसे ही जीवन का सार है–अच्छा स्वास्थ्य। वर्तमान शरीर शास्त्रीय एवं मानस शास्त्रीय खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सब कुछ पाकर भी वह व्यक्ति आनन्द और शांति का जीवन नहीं जी सकता, जिसके पास स्वस्थ तन, सधा हुआ मन और शांत वृत्तियों का वैभव नहीं है। अत: यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि जीवन में कुछ विशिष्टताएं अर्जित करने के लिए शरीर को स्वस्थ, बलवान, तरोताजा, स्फूर्तिमान और तेजस्वी बनाना आवश्यक है, जिससे जीवन में अन्य शक्ति स्रोत खुलने की संभावना हो सकती है। शरीर बल से भी मनोबल और वचनबल बढ़ता है। आरोग्य के साथ जुड़े अनेकों रहस्यों में एक रहस्य है–मंत्र। मंत्र-शास्त्र के अधिकृत आचार्यों ने मंत्र-सिद्धि के तीन लाभ बताये हैं–निरामयता, निर्विकारता और निर्भयता।

मंत्र ध्वनि तरंगों से पैदा होने वाली शक्ति है। एक लय, एक ध्वनि के पुनरुच्चारण से प्रकम्पन्न शक्तिशाली बनते हैं। अक्षर, संयुक्त अक्षर और बीजाक्षर का योग मिल जाने से मंत्र शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। वे ध्वनि प्रकम्पन्न तैजस शक्ति के विकास में सहायक बनते हैं, जिसका हमारे स्वास्थ्य के साथ सीधा संबंध जुड़ा हुआ है। नमस्कार महामंत्र शक्तिशाली और आरोग्यवर्धक मंत्र है क्योंकि इसमें तीनों अक्षरों का योग है।

स्वास्थ्य के कुछ पेरामीटर

01. प्रसन्नता,
02. स्वाभाविक नींद,
03. तनावमुक्ति,
04. विधेयात्मक चिन्तन,
05. इच्छाओं का संयम,
06. सात्विक भोजन,
07. नियमित योगासन,
08. शांत दिमाग,
09. प्राकृतिक मुख,
10. शक्तिशाली नाड़ी संस्थान,
11. आँखों में चमक,
12. पाचन व श्वसन क्रिया का सम्यक् होना।

रोगोत्पत्ति के कारण

रोगोत्पत्ति के अनेक कारण हैं–कर्म, पैतृक संस्कार, दुर्घटना, असाध्य तथा संक्रामक रोगों के प्रति प्रारम्भ में रखी गई अपेक्षावृत्ति, शरीर की क्षमता को क्षीण करने वाली दवाओं का अति प्रयोग, दूषित खान-पान, खाद्य सामग्री में मिलावट, आचार-विचार एवं रहन-सहन, व्यसनों की पराधीनता, पर्यावरण, प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन, मानव की पाश्विक वृत्तियां–आवेग, तनाव आदि।

स्थानांग सूत्र में रोगोत्पत्ति के निम्नलिखित नौ कारण उल्लिखित हैं[1]–

1. अति आसन या अशन,
2. अहितकर भोजन,
3. अति-निद्रा,
4. अति जागरण,
5. मल-निरोध,
6. प्रस्रवण निरोध,
7. लम्बी यात्रा,
8. प्रतिकूल भोजन,
9. इन्द्रियार्थ विकोपन (इन्द्रियों को अत्यधिक थकाना)।

डायबिटीज का प्रमुख कारण है–अच्छा भोजन करना, श्रम न करना और लम्बे समय तक एक आसन में बैठे रहना।

नमक और चीनी का अति प्रयोग तथा परस्पर विरोधी पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य के शत्रु हैं। विरोधी अन्नों का एक साथ सेवन कुष्ठ रोग जैसे घातक रोगों का निमित्त बन जाता है। अपोषण भी अनेक बीमारियां पैदा करता है। अधिक खट्टी-मीठी और तली-भूनी चीजें अम्ल-पित्त पैदा करती हैं। इससे आगे चलकर अल्सर तक भी बन जाता है।

अति-निद्रा या अधिक सोना जीवनी शक्ति को नष्ट करता है। सोते समय मनुष्य के श्वास की गति तीव्र हो जाती है, श्वास की संख्या बढ़ जाती है। श्वास की गति जितनी तीव्र होती है, जीवनी शक्ति उतनी ही घटती जाती है। अति जागरण भी पाचन क्रिया को असंतुलित करता है, इससे आंतों में रूक्षता पैदा होती है।

मनोवेगों को दमित करने से भी ज्यादा हानिकारक है शरीर के वेगों मल-मूत्रादि की बाधा को रोकना। मूत्र-वेग को रोकने से आँखें कमजोर हो जाती हैं। मल-निरोध करने से प्राण-शक्ति का नाश होता है।

अतिगमन को भी रोगोत्पत्ति का निमित्त माना गया है। इसका अर्थ है–धूप में चलना या अपनी शक्ति का अतिक्रमण कर चलना, खाना खाते ही चलना–

इनका निश्चित ही स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। अत्यधिक धूप में चलने से पित्त कुपित होता है। भोजन के तुरन्त बाद चलने से भोजन का परिपाक नहीं होता अत: अनेक लोगों को वमन या आंतों की सूजन की शिकायत हो जाती है।

इन्द्रियार्थ विकोपन का अर्थ है–इन्द्रियों का अत्यधिक थकना। लम्बे समय तक पिक्चर या टी.वी. देखते रहने के कारण सिरदर्द या चक्षु दुर्बलता जैसी बीमारियों का होना आम बात है। इसी प्रकार इन्द्रियां हमारे ज्ञान और बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम है, उपकरण है। उनका अति उपयोग न्याय संगत नहीं है। ऐसा करने से इन्द्रियों की क्षमता बहुत जल्दी क्षीण होने लगती है।

रोग के उपरोक्त कारणों पर नियंत्रण, विवेक और सतर्कता रखने के साथ-साथ कायोत्सर्ग, नियमित योगासन, दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास, नमस्कार महामंत्र का जप आदि यौगिक क्रियाएं प्राण शक्ति को सुरक्षित रखती हैं तथा स्वस्थता प्रदान करती हैं।

वैज्ञानिक जगत् में यह सिद्ध हो चुका है कि शब्द और चेतना के घर्षण से नई विद्युत् तरंगें उत्पन्न होती हैं। ध्वनि जन्य तरंगों का मानव शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ध्वनि के दो प्रकार हैं–

1. **श्रव्य ध्वनि**–जिसे हम सुन सकें।

2. **पराश्रव्य ध्वनि**–जिसे हम न सुन सकें।

पराश्रव्य ध्वनि तरंगों द्वारा एंटिना व लैंस जैसे महत्त्वपूर्ण भागों की शल्य चिकित्सा की जा सकती है। सूक्ष्म रक्तवाहिकाओं का रक्तचाप जाना जा सकता है। पारे और पानी का सूक्ष्म मिश्रण भी आज ध्वनि तरंगों से संभव हो गया है। सोवियत वैज्ञानिकों ने तो ध्वनि तरंगों की मदद से हड्डी या उत्तकों को जोड़ने की नई तकनीक विकसित की है। एक लय और एक गति में निरन्तर किये जाने वाले सूक्ष्म आघात का चमत्कार आज वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में देखा जा चुका है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने ध्वनि से होने वाले शारीरिक प्रभाव के नौ प्रयोगों का उल्लेख किया है, जो निम्न हैं[2]–

बीमारी	मंत्र	समय
* जुकाम/दवा	ह्रां	दस मिनट
* सिरदर्द	ॐ	दस मिनट
* कब्ज	ह्रुं	दस मिनट
* अनिद्रा	ह्रं	दस मिनट

* एसिडिटी	वं	दस मिनट
* गर्दन	ह्रां	दस मिनट
* यकृत	लां	दस मिनट
* हृदय	ह्रीं	दस मिनट
* गुदा	ह्रों	दस मिनट

पदार्थ विज्ञान के विशेषज्ञ जानते हैं कि इलेक्ट्रोमेग्नेटिक वेव्ज पर साउण्ड को सुपर-इम्पोज कर रिकॉर्ड कर लिया जाता है। फलस्वरूप वे पलक झपकते ही सारे संसार की परिक्रमा कर लें, जितनी शक्ति प्राप्त कर सकती हैं। इन्हीं शक्तिशाली तरंगों के सहारे ही अंतरिक्ष में भेजे गये रॉकेटों की उड़ान को धरती पर से नियंत्रित कर उन्हें दिशा देने, उनकी आन्तरिक खराबी को दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है। इस प्रकार रचनात्मक निर्माण की दृष्टि से मंत्रशास्त्र का अध्ययन भी एक विशेष महत्त्व रखता है। इसी परिप्रेक्ष्य में नमस्कार महामंत्र के शक्तिशाली प्रकम्पन चैतन्य जागरण के साथ-साथ अग्नि शामक, विष शामक, व्याधि शामक भी देखे गये हैं। बेड़ियों के बंधनों का टूट गिरना, जल का स्थल बन जाना, आकस्मिक विपदा का टल जाना महामंत्र के ये प्रत्यक्ष चमत्कार हैं।

महामंत्र शक्तिशाली व आरोग्य वर्धक क्यों?

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—महामंत्र के एक-एक अक्षर का विश्लेषण किया जाये, इसका वैज्ञानिक आधार खोजने का प्रयत्न किया जाये तो एक नये ग्रंथ का निर्माण किया जा सकता है। महामंत्र के प्रत्येक अक्षर का मंत्र शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण किया जाये, ध्वनिशास्त्र या प्रकंपनों की दृष्टि से विचार करें तो उस अक्षर की शक्ति का हमें स्पष्ट अनुभव होगा। अन्यथा यही समझा जाता है कि इसमें कौन-सी गम्भीर बात है।

कुछ तथ्यों के साथ निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महामंत्र कितना शक्तिशाली और आरोग्य वर्धक है—

* मंत्रकर्त्ता ने महामंत्र में जिन अक्षरों का विन्यास किया है, उसके ध्वनि प्रकम्पन विशेष प्रकार के हैं। महामंत्र में 62 व्यंजन हैं, जिसमें कण्ठस्थानी व्यंजन 31, मूर्धन्य व्यंजन 9, ओष्ठ स्थाई व्यंजन 13, तालव्य व्यंजन 3, दन्त्य व्यंजन 8 हैं। अतः स्पष्ट है कि महामंत्र के लयबद्ध उच्चारण से चैतन्य जागृति के साथ-साथ कण्ठ, होठ, तालु, सिर आदि अवयव स्वस्थ और सक्रिय होते हैं।

❊ व्याकरण शास्त्र के अनुसार दो प्रकार के व्यंजन होते हैं– 1. अल्पप्राण, 2. महाप्राण।

जिन व्यंजनों में 'ह' की ध्वनि का प्राण मिलता है, वे महाप्राण व्यंजन कहलाते हैं। यथा–क+ह=ख, च+ह=छ। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के द्वितीय, चतुर्थ अक्षर महाप्राण कहलाते हैं। ये चौदह हैं–ख, घ, छ, झ, ढ़, द, थ, ध, फ, भ और श, ष, स, ह। महामंत्र में ह, स, झ, ध, द जैसे महाप्राण व्यंजनों का बार-बार प्रयोग अपने आप में मूल्यवान है।

❊ स, श, ष, ह–इन उष्म वर्णों के उच्चारण से शरीर के विभिन्न स्थानों पर घर्षण होता है, श्वास तेजी से आता है। महामंत्र में 'स' और 'ह' का उच्चारण कई बार होने से विभिन्न अवयवों की मालिश होती है। वे सुदृढ़ और स्वस्थ बनते हैं।

महामंत्र की सूक्ष्म एवं शक्तिशाली ध्वनि तरंगों से एक तापक्रम उत्पन्न होता है, जिससे शरीर के अन्त:स्रावी संस्थानों में एक विशिष्ट प्रकार की हलचल शुरू हो जाती है। यह हलचल अनुकंपी तथा परानुकंपी तंत्रिकाओं में सुदृढ़ता स्थापित करती है, जिससे हमारा चिंतन आचरण प्रभावित होता है, इसके साथ-साथ ये ध्वनि प्रकंपन रोग से प्रभावित सभी अंगों, स्नायुओं, रक्त तथा मस्तिष्क को आहत करके शरीर के चारों ओर फैले विद्युत् (तैजस) शरीर को सक्रिय और स्वस्थ करता है। हमारी पाचन की सक्रियता और तेजस्विता का मूल तैजस शरीर है। वह पूरे स्थूल शरीर में व्याप्त रहता है और तेजस्विता उत्पन्न करता रहता है।

महामंत्र शब्द मीमांसा

णमो–

णमो शोधन बीज है। इसका लयबद्ध तन्मयता पूर्वक उच्चारण तैजस शक्ति के विकास में अत्यधिक सहायक होता है। आज वैज्ञानिक जगत् ने यह बात सिद्ध कर दी है कि प्रकाश के लिए पॉजिटिव चार्ज और नेगेटिव चार्ज का मिलना आवश्यक है। इस नियम के अनुसार णमो में 'ण' के उच्चारण के समय जीभ से तालु का स्पर्श होता है, तब तालु के ऊपर मस्तिष्क की परत में विद्यमान पॉजिटिव विद्युत् और जीभ में विद्यमान नेगेटिव विद्युत्–दोनों के परस्पर मिलने से प्रकाश होता है, जो तैजस शरीर और आज्ञा-चक्र को प्रभावित करता है। साथ ही साथ 'ण' के उच्चारण के साथ जीभ द्वारा गले में खिंचाव होने से थाइराइड, पेराथाइराइड ग्रंथियां संतुलित व शक्तिशाली होती हैं। हकलाना, गूंगापन या

हिचकी चलना—ये थाइराइड के असंतुलन से होते हैं। जीभ के खिंचाव से थाइमस का स्राव संतुलित होता है। हमारे शरीर में वात रोग, जोड़ों के रोग और वायु प्रकोप का संबंध थाइमस ग्रंथि से है। 'ण' पृथ्वी संज्ञक होने के कारण अडोलता, स्थिरता, सहनशीलता आदि का परिचायक भी है।

'म' के उच्चारण में दोनों होठ मिलते हैं, होठ उदान प्राण का केन्द्र हैं। 'म' प्राण शक्ति को जगाने वाला बीजाक्षर है।

अरहंताणं

अरहंताणं में 'अ' अर्हत् का द्योतक है, आत्मा के एकत्व का सूचक है, शक्तिवर्धक है, कुण्डलिनी का स्वरूप है, प्रथम स्वर है, देवनागरी लिपि का प्रारम्भ भी 'अ' से होता है। अरहंताणं में 'र' के अतिरिक्त सभी वर्ण आकाश बीज हैं। हमारे शरीर में आकाश का स्थान कण्ठ है। मंत्रशास्त्र की दृष्टि से अरिहंतांण में व्यक्त होने वाले 'अ हं णं' का उच्चारण बहुत शक्तिशाली है। कण्ठ के तंतु इनसे विशेषत: प्रभावित होते हैं। इसका सीधा प्रभाव चयापचय की क्रिया पर पड़ता है।

स्वास्थ्य के सन्दर्भ में गले का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गले की अस्वस्थता का प्रभाव मन और भावना को भी प्रभावित करता है। गला, सिर और धड़ का सेतु है। गले की विकृति पूरे शरीर की विकृति है। बोलने, गाने और खाने में गले का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अच्छे गायक के लिए हम कहते हैं कि गला अच्छा है। कुछ समय पूर्व समाचार पत्रों में पढ़ा—पन्द्रह वर्ष की आयु पूर्ण होने पर भी किसी लड़की का मानसिक विकास एक शिशु जितना हुआ और केवल कुछ एक वस्तुएं ही उसे आकर्षित कर पाती थीं और अन्य लड़कियों से भिन्न-भिन्न प्रकार की हरकतें करती थी। एक दिन उसने गले में आती संगीत ध्वनि सुनी तो अचानक उसकी सम्पूर्ण चेतना जाग उठी। उसे अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त हो गया। उसकी योग्यताएं जागृत हो उठीं। कुछ दिनों बाद उसने अपनी आयु के अनुकूल मानसिक विकास प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार हमारे भीतर छिपी अपार शक्तियां महामंत्र की झंकार से जब जाग उठती हैं, तो व्यक्ति अद्भुत और अद्वितीय कार्य कर सकते हैं, उन्हें एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है।

विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान अथवा णमो अरहंतांण का जालंधर बंध के साथ मानसिक जप चंचलता को नियंत्रित करता है तथा सकारात्मक दृष्टिकोण, सकारात्मक सोच, सकारात्मक कल्पना को विकसित करता है।

'र' अग्नि बीज है। इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है। यह मस्तिष्क के तंतुओं को शक्तिशाली बनाता है। यह सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम को विशेष रूप से प्रभावित करता है। 'र' वर्ण ओज, शक्ति, सामर्थ्य, तेज, भूति आदि का वाचक है। इसे पंच देवात्मक या पंच वर्णात्मक माना गया है।[3] यह शक्ति का वाचक है। वर्णोधार तंत्र में शिव पार्वती से कहते हैं कि यह 'र' वर्ण सभी शक्तियों से युक्त है, आत्म-तत्त्व रूप है और सर्व तेजोमय वर्ण है। इसे महामोक्ष दायक, अष्टसिद्धि दायक और ब्रह्मरूप भी कहा गया है।[4] विन्यास की प्रक्रिया में 'र' का उच्चारण मन की सुस्ती को मिटाता है। कोई डिप्रेशन की अवस्था में हो, मानसिक असंतुलन या आलसी व्यक्ति हो तो यदि वे रं रं रं का प्रयोग करें तो स्फूर्ति और शक्तिशाली बनेंगे, चपलता कम होगी, मानसिक शांति बढ़ेगी।

मंत्र शास्त्र की दृष्टि से णमो अरहंताणं में अ के साथ 'ह' और 'र' के साथ 'ह' का योग बहुत शक्तिशाली है। 'ण' अपने आप में बहुत शक्तिशाली है और 'ता' ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार एकाक्षर प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से णमो अरहंताणं में सभी वर्ग और सभी वर्गों के वर्ण हैं। 'ण' में 'म्' चन्द्रबीज है। इस पद्य में 'र' के उच्चारण से व्यक्ति गर्म और 'म्' के उच्चारण से टेम्पर होता है। लोहे को मजबूत बनाने में क्या किया जाता है। पहले गर्म फिर ठंडे में डाल दिया जाता है। इस प्रक्रिया को टेम्परिंग कहते हैं। णमो अरहंताणं का तन्मयता से लयबद्ध उच्चारण करने वाला टेम्परिंग हो जाता है। टेम्पर का अर्थ है–मजबूत हो जाना, दृढ़ होना, सुस्थिर होना, एकाग्र होना, अपनी सारी शक्तियों को अपने में घनीभूत कर लेना। इस मंत्र की साधना से सारे कषाय क्षीण होते हैं। 'णमो अरहंताणं' का जप आवरण, मूर्च्छा और अन्तराय को क्षीण करने के लिए किया जाता है।[5]

सिद्धाणं

'स' जल बीज है। यह आत्म-साधना में परमोपयोगी है। मंत्र साहित्य के अनुसार 'इ' कर्मनाश में प्रधान, वशीकरण बीज, आत्मशक्ति का उद्घाटक है। 'धा' श्रीं, क्लीं बीजों का आधार है। 'द्धा' पृथ्वी, जल तत्त्व संयुक्त है। 'णं' आकाश बीज है। सिद्धा, ॐ णमो सिद्धम्, सिद्धा-सिद्धि मम दिसंतु–ये णमो सिद्धाणं से निष्पन्न मंत्र है। णमो सिद्धाणं पूरे पद के उच्चारण से कण्ठ और मस्तिष्क के स्नायु शक्तिशाली होते हैं। विन्यास की प्रक्रिया में 'स' का चन्द्रबिन्दु सहित एक हजार बार उच्चारण करने से लीवर में ऐसा संघर्ष उत्पन्न होता है, जिससे बढ़ा हुआ लीवर कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।

णमो सिद्धाणं पद का जप शाश्वत आनन्द की अनुभूति के लिए किया जाता है।[6]

आयरियाणं

आयरियाणं के सारे वर्ण आकाश बीज हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से कण्ठ अर्थात् सम्पूर्ण शरीर की स्वस्थता इस मंत्र के साथ जुड़ी हुई है। बौद्धिक चेतना की सक्रियता के लिए भी णमो आयरियाणं का जप किया जाता है।[7]

उवज्झायाणं

'उ' पृथ्वी बीज है। यह उर्ध्वगामी है। नाभि से उठता है और ऊर्जा को उर्ध्वगामी बनाता है व जल तत्त्व का प्रतीक है। व्याधि शामक है। विन्यास की प्रक्रिया में 'वं वं' का उच्चारण वात, पित्त, श्लेष्म रोगनाशक है। बहुत गर्मी की अनुभूति के समय 'वं' का हजार बार उच्चारण तापमान को संतुलित करता है। योगक्षेम वर्ष के ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लगभग 500 साधु-साध्वियों को तीस मिनट तक 'वं' का लयबद्ध मानसिक जप चन्द्र स्वर के साथ करवाया। प्रयोग समाप्ति पर सबने शीतलता का अनुभव किया और कहा अक्षरों में बड़ी शक्ति है। आज ध्यान का प्रयोग बहुत अच्छा हुआ। मानसिक शांति और समस्या समाधान में णमो उवज्झायाणं का जप बहुत लाभकारी है।[8]

णमो लोए सव्व साहूणं

'लो' पृथ्वी बीज, ए वायु बीज, 'सव्व', 'सा' जल बीज और णं आकाश बीज है। शरीर में पृथ्वी, जल आदि पांचों तत्त्वों की पूर्ति करने वाला यह मंत्र है। यह मंत्र कामवासना को क्षीण व उपशांत करता है।[9] स्वस्थ चेतना की दृष्टि से भी यह मंत्र बहुत शक्तिशाली है। तुम स्वस्थ रह सकते हो, पृ. 150 पर रीढ़ की हड्डी की स्वस्थता के लिए पूरी विधि, आसन, प्राणायाम, जप आदि की बतलाई है, जिसमें णमो लोए सव्व साहूणं का दस मिनट जप निर्देश है। इसी प्रकार पृ. 57, 58 में मधुमेह की स्वस्थता की प्रक्रिया के अन्तर्गत इसी जप को दस मिनट जपने का निर्देश है।

मंत्र : एक समाधान में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 365 मंत्रों का संग्रह किया है, जिसमें लगभग 140 मंत्रों में महामंत्र की विभिन्न विधियों का उल्लेख है, जिसके कुछ मंत्र आरोग्य वर्धक हैं, कुछ अंश यहां उद्धृत किये जा रहे हैं।

आरोग्य वर्धक मंत्र—

1. ॐ ह्रीं श्रीं अ सि आ उ सा नमः सर्व विघ्न रोगोपद्रव विनाशनाय सर्व शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।

2. क्लीं णमो उवज्झायाणं, क्लीं णमो लोए सव्व साहूणं, क्लीं णमो आयरियाणं, क्लीं णमो सिद्धाणं, क्लीं णमो अरहंताणं—इस मंत्र की प्रतिदिन एक माला फेरने से शारीरिक रोग का निवारण होता है। मंत्र सिद्धि के लिए 12,000 का जप अपेक्षित है।

3. ॐ ह्रीं णमो सव्व साहूणं—इस मंत्र का शक्ति केन्द्र पर दीर्घ श्वास के साथ मानसिक जप करने से रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास होता है। समय 5 से 30 मिनट तक।

4. 'ॐ' उच्च रक्तचाप में शरीर पर नीले रंग का ध्यान करते हुए 'ॐ' की इक्कीस बार ध्वनि तथा निम्न रक्तचाप में दर्शन-केन्द्र पर लाल रंग का ध्यान करते हुए 'ॐ' ध्वनि करने से दोनों रक्तचाप संतुलित होते हैं। वज्रासन में पांच मिनट दीर्घश्वास के पश्चात् 20 मिनट ॐ ध्वनि से मिरगी रोग में लाभ होता है। वज्रासन की मुद्रा में पांच मिनट दीर्घश्वास के पश्चात् 'अर्हम्' का लयबद्ध उच्चारण सर्व रोग शामक होता है।

ॐ के साथ उल्टा महामंत्र बोलने से मलेरिया ज्वर में लाभ, सर्पदंश की पीड़ा व विष का शमन होता है। क्लीं के साथ उल्टा नमस्कार महामंत्र बिच्छु काटने के बाद जब तक पीड़ा का अनुभव हो तब तक प्रयोग करने पर बिच्छु के दंश की पीड़ा का शमन होता है।

निष्कर्ष

महामंत्र की विभिन्न कोणों से समीक्षा करने पर इससे अपहनुत (छिपे हुए) अर्थ गाम्भीर्य का पता चलता है। आत्मा की सशक्तता एवं स्वस्थता के साथ दैहिक संहनन की स्वस्थता भी काम्य है, जो महामंत्र नवकार की आराधना से स्वतः सिद्ध हो जाती है। मंत्र शास्त्र का यह नियम है कि स्वास्थ्य के लिए ध्यान करें तो श्वेत रंग का करना चाहिए। इस मंत्र शास्त्रीय नियमानुसार महामंत्र का श्वेत वर्ण में जप अथवा ध्यान न केवल स्वस्थ चेतना को ही विकसित करता है अपितु साधक को वीतराग स्वरूप की उपलब्धि के सोपान पर आरोहण कराता है।

सन्दर्भ–

1. स्थानांग, 9/
2. तुम स्वस्थ रह सकते हो, पृ. 40
3. कामधेनू तंत्र, पटल–6
4. शब्द कल्पद्रुम, भाग–4, पृ. 69
5. एसो पंचणमोक्कारो, पृ. 117
6. वही, पृ. 117

7-9. वही, पृ. 117

24. नमस्कार महामंत्र : उभरती प्रवृत्तियां एवं निष्पत्तियां

समुद्र मंथन से सारभूत अमृत, दधि के मंथन से सारभूत घृत की प्राप्ति सदृश आगम का सारभूत रहस्य है–नमस्कार महामंत्र। सर्व मंत्रों में प्रधान और लोक कल्याणकारी होने के कारण इसे मंत्राधिराज भी कहा जाता है। इसकी रचना आर्या छन्द और प्राकृत भाषा में की गई है। प्रत्येक जैन धर्मानुयायी चाहे वह दिगम्बर हो या श्वेताम्बर इस मंत्र के प्रति गहरी आस्था रखता है तथा अपने प्रत्येक लौकिक और लोकोत्तर कार्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए इसका स्मरण तथा आराधना करता है। इसकी आराधना से सभी प्रकार के कल्याण की प्राप्ति होती है। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी की प्राप्ति भी इसमें अन्तर्निहित है, क्योंकि इसका फलितार्थ है–मोक्ष अथवा समृद्धिशाली देवयोनि की प्राप्ति। जिस प्रकार रसायन के सम्पर्क से लोह भस्म आरोग्यप्रद हो जाता है उसी प्रकार महामंत्र की मंगल ध्वनियों के स्मरण, सम्पर्क तथा मनन से सभी प्रकार की अद्‌भुत सिद्धियां प्राप्त होती हैं। गंगा, सिंधु आदि नदियां पद्म हृदादि से निकलकर समुद्रों में मिल जाती हैं। उसी प्रकार सभी मंत्र इस महामंत्र से निकलकर महामंत्र के तत्त्वों में निश्रित हैं।

जैसे अग्नि का उष्णत्व, जल का शीतत्व, वायु का स्पर्शत्व एवं आत्मा का चेतना धर्म अनादि है, वैसे ही नमस्कार महामंत्र अनादि है अथवा अनादि जिनवाणी का अंग होने के कारण यह मंत्र अनादि है। विकासोन्मुख आत्मा के लिए यह महामंत्र अंगपरित्राण का कार्य करता है। इसकी आराधना से वीर्योल्लास तथा आत्मविश्वास की वृद्धि होती है। इस महामंत्र के नित्य स्मरण से आत्मशुद्धि इतनी बढ़ जाती है कि मिथ्यात्व को हटना ही पड़ता है। मिथ्यात्व के हटने से सम्यक्त्व रत्न की उपलब्धि हो जाती है तथा जीव चौथे गुणस्थान में पहुँच जाता है, फिर क्रमश: आत्मा का विकास एवं अभ्युदय होता रहता है। इस महामंत्र की श्रेष्ठता, सर्वोत्तमता तथा महिमा व गरिमा के अनेकों पहलु हैं, जो निम्नोक्त उभरती प्रवृत्तियों के रूप में प्रदर्शित हैं।

1. शक्ति–सम्पन्न मंत्र

मंत्र बीजाक्षर मय होते हैं। उनमें शक्ति तत्त्व भरा रहता है। नमस्कार महामंत्र का संबंध मंत्र साधना एवं ध्यान से है अत: इसमें बीज तत्त्वों का संयोजन एक विशिष्ट आधार पूर्वक किया गया प्रतीत होता है। इस महामंत्र के सब अक्षर

यौगिक हैं। यौगिक अक्षर अणु और परमाणु से भी बहुत अधिक सूक्ष्म होते हैं। अणु और परमाणु से भी बढ़कर कार्य, यौगिक अक्षर बनने के प्रमाणों से हमारा वैभव भरा अतीत साक्षी है। ऐसे तो शब्द जड़ द्रव्य है, परन्तु उन जड़ अक्षरों को जब महायोगी अपनी प्राण-चेतना के द्वारा ध्वनि-प्रकंपनों को अपनी विशिष्ट विद्युतीय शक्ति-तरंगों से परिवर्तित करते हैं तब वे यौगिक अक्षर मंत्र या स्तोत्र बन जाते हैं। ऐसे मंत्र-स्तोत्र सृष्टि के रहस्य, चमत्कार या अन्य ऐसे ही कई रूपों में समायोजित हो जाते हैं। नमस्कार महामंत्र में अ, र, ह, सिद्ध, हूं, ण, णं जैसे शक्ति के पेरामीटर भरे हुए हैं। यथा–

त बीज आकर्षक और शक्ति का आविष्कारक है।

प बीज परमात्मदर्शक, जल तत्त्व प्रधान तथा कार्य साधक है।

व बीज सिद्धिदायक एवं बाधा निवारक है

ल बीज लक्ष्मी साधक व कल्याण सूचक है।

न बीज आत्म सिद्धि का प्रतीक है।

ज बीज आधि-व्याधि शामक है।

र बीज शक्ति स्फोटक है।

द बीज, णं बीज और स बीज कर्म विनाशक है।

भ बीज विघ्न विनाशक है।

ह, य बीज मंगल एवं शक्ति कार्यों में सहायक है।

म बीज सिद्धिदायक है।

ध बीज दृष्टि दोष निवारक, अग्नि ताप शामक तथा आत्मसिद्धिदायक है।

ग बीज माया बीजों के साथ कार्य साधक है।

उ बीज उच्चाटन बीजों का मूल है।

ण बीज क्लिष्ट और कठोर कार्य में साधक शांति सूचक है।

ए बीज वशीकरण बीजों का जनक है।

इस प्रकार मंत्र शास्त्र का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस महामंत्र नवकार में शक्तियों के कितने महान् आश्चर्य जनक स्रोत विद्यमान है। इस महामंत्र के द्वारा वीतराग महापुरुषों के प्रति अखण्ड श्रद्धाभिव्यक्ति व्यक्त करने से अपने-आपको हीन समझने रूप संशय का नाश होता है। संशय का नाश होने पर

आत्मिक शक्ति का विकास होता है। आत्मिक शक्ति का विकास होने पर समस्त संकटों का निवारण स्वयं-सिद्ध है। इस शक्तिशाली महामंत्र के द्वारा शक्ति को जागृत करने के लिए मंत्र-जप के साथ जागरूकता तथा श्वास की लयबद्धता अपेक्षित है।

2. कर्म विनाशक मंत्र

रेडियो में जो कार्य कर्ण Crystal या Aerial करते हैं। आध्यात्मिक प्राणशक्ति को जगाने में वही कार्य मंत्र या स्तोत्र करते हैं। आकाश वाणी में सबसे पहले शब्द तरंगों को विद्युत् तरंगों में बदला जाता है। फिर रेडियो का Aerial उन विद्युत् तरंगों को पकड़कर हम तक आसानी से पहुँचा देता है ठीक इसी प्रकार महापुरुष मंत्र एवं स्तोत्रों में स्वयं की शक्ति को रूपान्तरित करते हैं। हम मंत्र एवं स्तोत्र के माध्यम से इसे पकड़कर आराधना द्वारा स्वयं की शक्ति में परिणत कर सकते हैं।

नमस्कार महामंत्र पूर्णत: शुद्ध और सात्विक मंत्र है। आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से इस मंत्र की साधना का अर्थ होगा–चेतना का पूर्ण विकास। इस महामंत्र के बार-बार उच्चारण तथा जप से एक प्रकार का घर्षण और विद्युत् शरीर में पैदा होती है जो कर्म राशि को ध्वस्त कर देती है। इसलिए पांचों पदों के अन्त में 'णं' शब्द लगाया गया है। 'णं' शब्द बोलते ही इसका प्रभाव नाभि पर होता है। नाभि पर इस ध्वनि की एक विशेष प्रकार की चोट होने से नाभिगत शक्ति का उर्ध्वारोहण होता है। शक्ति का उर्ध्वारोहण होने से कर्मों का विस्फोट होता है। इसलिए 'णं' बीजाक्षर को कर्म विस्फोट का प्रतीक माना गया है।

जिस प्रकार अरणि की लकड़ी को आपस में रगड़ने से अग्नि पैदा होती है, वैसे ही महामंत्र के शब्दों के पुनरावर्त्तन से अग्नि पैदा होती है, जिसका परिणाम हमारे मन, शरीर, बुद्धि तथा कर्म मलों पर होता है, इससे कर्म-मल प्रकंपित हो नष्ट हो जाते हैं, कर्मों की महान् निर्जरा होती हैं।

3. उर्ध्वगति प्रदाता मंत्र

इस महामंत्र का जप करने से शुभ कर्म का आश्रव, अशुभ कर्म का संवर तथा पूर्वकृत कर्म की निर्जरा होती है। लोक स्वरूप का ज्ञान, सुलभ बोधिता की प्राप्ति तथा सर्वकथित धर्म की भवोभव प्राप्ति कराने वाले पुण्यानुबंधी पुण्य कर्म उपार्जित होते हैं। यह मंत्र आधि, व्याधि एवं उपाधि का नाश कर समाधि का साम्राज्य स्थापित करता है। संक्षेप में कहें तो अन्य मंत्रों को तो सिद्ध करना पड़ता है पर नमस्कार महामंत्र तो स्वयंसिद्ध मंत्र है। इसका विधिवत् जप करने से जीवन

में शांति, मरण में समाधि, परलोक में सद्गति और परम्परा से शाश्वत सुख स्वरूप मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

4. सार्वभौम एवं सर्वस्पर्शी मंत्र

अपनी विषय-वस्तु एवं भावना की दृष्टि से यह महामंत्र सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। इस महामंत्र में स्थित पंच-परमेष्ठी सर्वकालिक होने के कारण यह महामंत्र सर्वकालिक है। इसकी सार्वभौमिकता का प्रमुख कारण यही है कि यह महामंत्र सभी क्षेत्रों और सभी कालों में रहने वाले सभी प्राणियों को समान रूप से शक्ति प्रदान कराने वाला है। इस महामंत्र में स्थित अरिहंत, जिन्होंने क्रोध, मान, माया एवं लोभ पर विजय प्राप्त की है। सिद्ध, जो कर्ममल से रहित हो सच्चिदानंद स्वरूप में स्थित हो गये हैं। आचार्य, उपाध्याय एवं साधु–जो विषय-वासनाओं से उपरत होकर आत्म-साधना में रत है, उन सबको नमस्कार किया है। ऐसी सिद्ध व साधक आत्माएं केवल जैन-परम्परा में ही नहीं अपितु अन्य सभी परम्पराओं में हुई हैं और होंगी। वे भले किसी भी परम्परा या सम्प्रदाय की क्यों न हो, नमस्कार महामंत्र में उन सबको नमस्कार किया गया है। इस प्रकार यह नमस्कार महामंत्र सर्वस्पर्शी महामंत्र है। व्यक्ति पूजा का नहीं गुण पूजा का मंत्र है।

5. महानता का प्रतीक मंत्र

प्रायः हम देखते हैं कि अन्य दर्शनों में मंत्रों का संबंध राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महादेव या अन्य किसी देवी-देवता के साथ होता है। परन्तु नमस्कार महामंत्र में किसी का नाम लेकर इसमें नमस्कार नहीं किया गया है।

संसार में ईश्वर या भगवान् बनने के लिए जितने उत्तमोत्तम गुणों की आवश्यकता होती है, उन सभी गुणों का समावेश इस महामंत्र में विद्यमान है। ऐसी गुण सम्पन्न शक्तियों को पांच भागों में विभक्त किया गया है।

वीतराग पंच परमेष्ठी के सच्चे उपासक, वीतराग भगवान से वीतरागता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते–जैन दर्शन का यह परम सत्य ही इस महामंत्र में प्रस्फुटित हुआ है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इस महामंत्र की सरलता, सहज ग्राह्यता एवं निष्काम वंदना ही इसकी महानता का मूल कारण है।

6. श्रुत सम्पन्न मंत्र

समस्त जिनवाणी रूप इस महामंत्र की महिमा एवं इसका तत्काल होने वाला अमित प्रभाव योगी मुनीश्वरों को भी अगोचर है। वे इसके वास्तविक स्वरूप व प्रभाव का निरूपण करने में असमर्थ हैं। श्रुत केवली सर्वाक्षर सन्निपाति होने के कारण सभी अक्षरों एवं उनके परस्पर मिश्रण से होने वाले सभी अर्थों को जानते हैं। इस अपेक्षा से उनकी उपदेशक शक्ति अमोघ बनती है। ऐसे श्रुतकेवली के कथन की अपेक्षा से भी इस महामंत्र को सम्पूर्ण द्वादशांग का संक्षिप्त संस्करण कहा जा सकता है। द्वादशांग जिनवाणी का इतना सरल, सुसंस्कृत एवं यथार्थ रूप कहीं नहीं मिल सकता। ज्ञान रूप आत्मा को इसका अनुभव होते ही श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

7. चामत्कारिक मंत्र

नमस्कार महामंत्र में चमत्कार और आत्मशोधन–दोनों प्रकार के शक्ति-बीज निहित हैं। जैसे एक ढ़ेले को रस्सी में बांधकर रस्सी को घुमाया जाए तो एक वृत्त बनता है, जिसमें अधिक शक्ति होती है। यदि उसे किसी निर्दिष्ट दिशा की ओर फैंका जाए तो उस वृत्त वेग के कारण ढ़ेला बहुत दूर चला जायेगा इसी प्रकार मंत्र के शब्दों को एक रस, एक लय और एक स्वर के साथ बारम्बार दोहराया जाए तो उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें वृत्ताकार रूप में ऊपर अन्तरिक्ष की ओर उठती है और मंत्र के चमत्कार की भूमिका बनती है।

अनेक आचार्यों ने इस महामंत्र पर अनेक कल्प ग्रंथ और मंत्र शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं। ग्रह शांति, विघ्न शांति, कायोत्सर्ग पद्धति, वज्रपंजर स्तोत्र आदि विभिन्न दिशाओं में इस महामंत्र का प्रयोग किया गया है। चैतन्य-केन्द्र, लेश्याध्यान इस प्रकार सर्व दिशाव्यापी प्रयोगों की सफलता के आधार पर इस महामंत्र को सव्वपावपणासणो कहा गया है। पापों का नाश होने से सब प्रकार की अनुकूलताएं रहती हैं। इससे बड़ा और क्या चमत्कार हो सकता है?

8. लोकोत्तर मंत्र

इस महामंत्र के सर्वाधिक शक्तिशाली और लोकोत्तर होने का प्रमुख कारण है–इस महामंत्र के अधिनायकों की परम विशुद्धि। क्योंकि सरागी की शक्ति कितनी ही अधिक क्यों न हो? तो भी वीतराग की अचिन्त्य शक्तिमत्ता एवं प्रभावशीलता रूप सागर के सम्मुख वह एक बिन्दु जितनी भी नहीं होती है।

लौकिक मंत्र मात्र देवाधिष्ठित होता है। उसका जप करने से मंत्र का स्वामी देवता जब वशीभूत होता है, तभी वह मंत्र सिद्ध हुआ गिना जाता है। परमेष्ठी नमस्कार महामंत्र इनसे भिन्न है। उसका स्वामी होने की शक्ति किसी देवता में नहीं है। देवता भी इसके सेवक बनकर रहते हैं। जो इस महामंत्र की आराधना करते हैं, उनकी मंत्र के प्रति भक्ति के वशवर्ती होकर देवता भी उन आराधकों के सेवक बनकर रहने लगते हैं। इससे यह सिद्ध है कि नमस्कार महामंत्र किसी देवता की शक्ति के कारण शक्तिशाली या प्रभावशाली नहीं है, पर इस महामंत्र की स्वयं की शक्ति एवं स्वयं का प्रभाव ही ऐसा अचिन्त्य और लोकोत्तर है कि देवों को भी इसके वश में रहना पड़ता है।

लौकिक मंत्र अनुग्रह-विग्रह, लाभ-हानि दोनों के लिए उपयोगी है परन्तु नमस्कार महामंत्र परम लोकोत्तर मंत्र है। यह मंत्र किसी की हानि नहीं केवल लाभ में ही निमित्त बनता है। यह आत्मा से परमात्मा को प्राप्त कराने वाला मंत्र है।

पुरुषार्थ का प्रतीक मंत्र

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक स्वर, प्रत्येक कंपन तथा प्रत्येक नाद एक विशेष आकार को जन्म देता है। जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्रवेत्ता अरनेष्ट क्लाडनी ने वायलिन वादन के माध्यम से बालू रेत पर अनेक प्रकार की आकृतियां उभारने में सफलता प्राप्त की है। उसने अपने अनेक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि ध्वनि तरंगों का वस्तु के आकार से गहरा संबंध है। एक प्रयोग में देखा गया कि ॐ की ध्वनि माइक्रोफोन द्वारा करने पर गोल आकार लिये हुए होती है। यह ध्वनि सभी यांत्रिक ध्वनियों से अधिक शक्तिशाली और प्रभावक होती है। इसका वैज्ञानिक पद्धति से उपयोग करके चेतना को उन्नत बनाया जा सकता है।

महामंत्र नवकार एवं गायत्री मंत्र जैसे कुछ विशेष ध्वनियों को जोड़कर बनाये गये मंत्रों के उच्चारण से शरीर, चेतना एवं ब्रह्माण्ड में एक निश्चित प्रकार की ध्वनि तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं, जो प्रयोगकर्त्ता, वातावरण एवं समीपवर्ती व्यक्तियों को भी प्रभावित करती है। नमस्कार महामंत्र पुरुषार्थ का प्रतीक मंत्र है क्योंकि इस महामंत्र के साधक आत्मोद्धार, आत्मकल्याण, आत्मोत्कर्ष एवं आत्मविकास के लिए किसी देव, ईश्वर या अवतार की कृपा, उदारता, सहायता की अपेक्षा नहीं करते। यह महामंत्र इस सच्चाई को प्रकट करता है कि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा, जिन, अर्हत् विद्यमान हैं। आत्मा स्वयं ही अपने स्वभाव

ज्ञान-दर्शन आदि गुणों के द्वारा कर्मों को क्षय करता है तथा आत्म स्वरूप को प्राप्त होता है।

अनिष्ट निवारण मंत्र

नमस्कार महामंत्र की आराधना से आत्मोत्कर्ष की भावना जागृत होती है। अतः उठते-सोते समय, शुभ कार्य में, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण के समय, विहार-गोचरी के समय सर्वत्र महामंत्र की मंगल ध्वनि गूंजती ही रहती है। महान, पवित्र आत्माओं के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करने से मोहान्धकार का विलय होता है। संशय, विपर्यय रूप अज्ञान का नाश होने से आत्मशक्ति का विकास एवं दुःखों का अन्त होता है। दुःखों का नाश होने से अनिष्ट योग इष्ट योग में परिणत होते हैं।

इष्ट सिद्धि की दृष्टि से यह महामंत्र इस लोक में शारीरिक एवं मानसिक बल, बुद्धि, बोधि, सम्पत्ति, राजकीय सत्ता तथा दूसरे भी अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, प्रभाव एवं उन्नति को प्रदान करता है तथा परलोक में भी बोधि प्राप्ति में परम सहायक है, क्योंकि यह महामंत्र चित्त की मलिनता एवं दोषों को दूर कर निर्मलता एवं उज्ज्वलता को प्रकट करता है। चित्त की निर्मलता सभी उन्नतियों का मूल है। जिस प्रकार वृक्ष के पास छाया की याचना नहीं करनी पड़ती है पर उसका आश्रय लेने वालों को छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अरिहंत सिद्ध भगवान की आराधना से आत्मा का निष्पाप शुद्ध स्वरूप व्यक्त हो जाता है।

11. अपराजित मंत्र

हीरा छोटा होने पर भी बड़ी-बड़ी चट्टानों को कष्ट देता है। अंकुश छोटा होता है किन्तु मदोन्मत्त गजराज को अधीन कर लेता है। छोटा सा बीज विराट वटवृक्ष का रूप धारण कर लेता है, वैसे ही मंत्रों का राजा नमस्कार महामंत्र छोटा है, फिर भी यह किसी से पराजित नहीं होता। यह अपराजित मंत्र है क्योंकि अन्य किसी भी मंत्र के द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत (अवरुद्ध) नहीं होती, इसमें असीम सामर्थ्य निहित है। इसकी साधना सर्वकाल एवं सर्वदृष्टि से मंगलकारी, कल्याणकारी, शुभकारी एवं सर्वसिद्धिदायक है।

त्रिविध साधना मार्ग के विधान की पृष्ठभूमि में महर्षियों एवं आचार्यों की गहरी सूझपूर्वक मनोवैज्ञानिक दृष्टि रही है। वैसे भी तीन की संख्या को कई दृष्टियों

से महत्त्वपूर्ण माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद्-1 में 'ॐ शांति' की व्याख्या में बताया गया है कि तीन बार जप करने से आधिभौतिक, आधिदैहिक एवं आध्यात्मिक–तीनों प्रकार के विघ्नों का उपशमन होता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के चिन्तनानुसार तीन की संख्या से एक त्रिकोण बनता है। त्रिकोणात्मक आकार में ऊर्जा सघन रूप से उत्पन्न होती है जो अभीष्ट कार्य की सिद्धि में निमित्त बनती है।

मनोविज्ञान भी मानवीय चेतना के तीन पक्ष मानता है– 1. ज्ञानात्मक, 2. भावनात्मक, 3. क्रियात्मक।

जीवन का परम साध्य इन तीनों पक्षों का विकास करना है इसीलिए सत्यद्रष्टा ऋषियों ने त्रिविध साधना मार्ग दिखाया है। चेतना के ज्ञानात्मक पक्ष के विकास के लिए सम्यक् ज्ञान, भावनात्मक पक्ष के विकास के लिए सम्यक् दर्शन और क्रियात्मक पक्ष के विकास के लिए सम्यक् चारित्र का विधान जैन तीर्थंकरों ने किया है। अत: इस अपराजित मंत्र को त्रिसंध्या में जपने से अन्त:चेतना के उद्‌बोधन की महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्मित होती है।

12. आरोग्य वर्धक मंत्र

भौतिक जगत् में जिस प्रकार भाप, तेल, कोयला, पानी, हवा आदि ऊर्जा के स्रोत से विभिन्न यंत्र अथवा उपकरण चलाये जाते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में मन, हृदय, वाणी तथा प्राण व बुद्धि को संयोजित करने वाली प्राण विद्युत् से रहस्यमयी शक्ति का संचालन किया जाना संभव हो जाता है। महामंत्र की दीर्घ ध्वनि से निम्न प्रकार के शारीरिक लाभ प्राप्त होते हैं–

1. उच्छ्‌वास के साथ शब्द स्वरों से उत्पन्न प्रकम्पनों से आन्तरिक अवयवों का व्यायाम हो जाता है।

2. भीतर के उत्तकों तथा तंत्रिका कोशिकाओं की गहराई तक प्रकंपन पहुँचते हैं।

3. इससे उत्तकों तथा अवयवों में रक्त संचार निर्बाध बनता है और उनमें प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति होने से प्राण शक्ति प्रदीप्त होती है।

4. तंत्रिका तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

5. रक्षा कवच का निर्माण होता है।

6. ज्ञान-तंतुओं की सक्रियता बढ़ती है।

7. दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

मंगल मंत्र

आचार्य पातञ्जल ने शास्त्रों में प्रयुक्त आदि मंगल का महत्त्व बताते हुए लिखा है–''मंगलादिनी हि शास्त्राणी प्रयन्ते वीर पुरुषाणी च भवन्ति, आयुष्मत पुरुषाणि चाध्येतारस्य सिद्धार्था यथा स्फुरिति।'' अर्थात् आदि मंगल वाले शास्त्र प्रचारित होते हैं, इनको जानने वाले वीर और दीर्घायु होते हैं तथा पढ़ने वाले कृतार्थ हो जाते हैं। नमस्कार महामंत्र आदि मंगल के रूप में अनेक आगमों और ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

जैन टीकाकारों ने मंगल से निम्नोक्त फल चतुष्ट्यी की प्राप्ति को स्वीकार किया है–

नास्तिक्य परिहारस्तु, शिष्टाचार प्रपालनम्।
पुण्याप्राप्तिश्च, निर्विघ्न शास्त्रादौ॥

1. नास्तिक्य परिहार, 2. शिष्टाचार,

3. पुण्य प्राप्ति, 4. निर्विघ्नता।

नमस्कार महामंत्र से उपर्युक्त चारों प्रयोजन सिद्ध होते हैं। इस मंगल महामंत्र का शब्द संयोजन भावात्मक लयबद्धता से अनुप्राणित होकर साधक के चारों ओर एक तेजस्वी आभावलय का निर्माण करता है, जिसके प्रभाव से आगन्तुक प्रत्येक दुष्प्रभाव प्रभावहीन हो जाता है। साधक अभय बनकर आत्मस्थ रहता है।

इस महामंत्र के अक्षर-अक्षर में मंत्रत्व ध्वनित होता है। इसमें विद्यमान प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में मंत्र के आन्दोलन उत्पन्न करने की अद्‌भुत क्षमता है। इसके आन्दोलन से विशिष्ट वातावरण एवं विशुद्ध वायुमण्डल का निर्माण होता है। ये आन्दोलन जब सुषुम्ना पथ में प्रवाहित होने लगते हैं तब रजोगुण, तमोगुण, अशुभ लेश्याएं, अशुभ ध्यान और अशुभ वृत्तियां स्वत: ही उपशांत या क्षीणता की स्थिति में आ जाती हैं। जग में मांगल्य भावों की वृद्धि करने वाला यह महामंत्र भाव विशुद्धि और सफलता का मंगल मंत्र है, इसमें कोई संदेह नहीं।

नमस्कार महामंत्र की उपरोक्त उभरती प्रवृत्तियों के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यह महामंत्र समता, संतोष, शांति, संबल, सबलता, सफलता और स्वास्थ्य देता है।

निष्पत्तियां

आत्म-दर्शन, आत्म-संप्रेषण, आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण, आत्म-रमण, आत्म-जागरण, आत्म-शरण, आत्म-गुण प्रकटीकरण, आत्मानंद और आत्मज्ञान की अभिव्यक्ति के लिए नमस्कार महामंत्र का जप आवश्यक है। महामंत्र आराधना की अनेक निष्पत्तियां, चाहे वे आन्तरिक हों या बाह्य, शारीरिक हों या मानसिक, साधक के अभ्युदय में निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में सफलता के सार्थक हस्ताक्षर हैं–

1. आभामंडल का शोधन व प्रदीपन।
2. तैजस शक्ति का उद्दीपन या संवर्धन।
3. स्वस्थ तन, स्वस्थ मन तथा स्वस्थ चिंतन का संरक्षण।
4. सघन कर्मों का निर्जरण।
5. अपराधी मनोवृत्तियों का शमन।
6. दुष्ट शक्तियों का अपनयन।
7. मैत्री के भावों का वर्धन तथा वर्धापन।
8. शक्ति का उर्ध्वीकरण।
9. अन्तर्दृष्टि तथा प्रज्ञा का जागरण।
10. जागरूकता का उन्नयन।
11. आत्म स्वरूप का प्रकटीकरण।
12. आध्यात्मिक शक्तियों का उद्‌घाटन।
13. क्रोध विलयन एवं कलह निवारण।
14. दमित ग्रंथियों का शोधन।
15. वासनाओं एवं कामनाओं का विसर्जन।
16. इच्छाओं का अल्पीकरण।
17. भाव परिष्कार से हृदय परिवर्तन।
18. असीम शक्ति का प्रस्फुटन।
19. बुद्धि और भाव में संतुलन।
20. संवेग नियंत्रण।
21. ममत्व ग्रंथि का भेदन।

22. चित्त का निर्मलीकरण।
23. तनाव मुक्त जीवन।
24. क्षमताओं का मूल्यांकन।
25. सकारात्मक चिंतन का सृजन।
26. स्वादवृत्ति पर नियंत्रण।
27. कर्म विपाक का अनुचिंतन।
28. न्यायनीति के प्रति समर्पण।
29. मन का स्थिरीकरण।
30. सम्यक्त्व का स्पर्शन।
31. भव भ्रमण का निवारण।
32. मिलता एकाग्रता का संजीवन।
33. खिलता शांति का नंदनवन।
34. होता आनन्द का संचालन।
35. विघ्न-हरण मंगलकरण महामंत्र बनता जब सचेतन।

निष्कर्ष

नमस्कार महामंत्र जैन धर्म का प्राण है। यह मानव मात्र के अभ्युदय का मंत्र है। अलौकिक सिद्धियों का अक्षय भंडार है। समस्त अस्तित्व से इसका अनुबंध होने के कारण यह निर्बंध मंत्र है। यह स्वयं पूर्ण है और अन्य अपूर्ण के पूर्ण की अभिव्यक्ति का उद्घाटक है। आवश्यकता है महामंत्र की आराधना में जप, भक्ति और ध्यान का सामंजस्य हो। भले ही महामंत्र का प्रादुर्भाव शब्दों से हुआ है पर इसके जप का उद्देश्य शब्द से अशब्द की यात्रा का निर्धारण है। मंत्र शब्दमय तभी तक रहता है जब तक वह चेतना में साकार न हो जाये। मंत्र के चैतन्यमय हो जाने पर वह मंत्र चैतन्यमय हो जाता है।

मंत्र के चैतन्यमय हो जाने पर मंत्र शब्दातीत–शब्द से परे अशब्द हो जाता है, रहस्य रह जाता है, जड़ता हट जाती है। अशब्द की स्थिति प्रकट होने से पूर्व साधक को शब्द की कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। जो स्थूल उच्चारण से प्रारम्भ होकर शब्दवर्ती सूक्ष्म प्रक्रिया तक पहुँचती है। यही सूक्ष्म प्रक्रिया अशब्द की भूमिका का निर्माण करती है।

मंत्र के द्वारा पहले तैजस शरीर में स्पन्दन होता है। उससे कार्मण शरीर के स्पन्दन पकड़े जाते हैं। धीरे-धीरे हम कर्म का संहार करते हुए अप्रकंप यानि निर्विकल्प स्थिति में प्रवेश कर सकते हैं। नमस्कार महामंत्र जप की प्रयोग भूमिका में इस स्थिति तक पहुँचने से उपरोक्त प्रवृत्तियां एवं निष्पत्तियां हमें साकार होती हुई अनुभव होने लगती हैं। प्रभु बनकर ही हम प्रभु की पूजा कर सकते हैं। आचार्यश्री तुलसी का यह अनुभूति स्वर उपाय की दिशा में एक इंगित है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट-1

1. स्वर अक्षरों की अद्‌भुत शक्ति
2. आत्म-रक्षा कवच

परिशिष्ट-2

उद्धृत गीत

परिशिष्ट-3

उद्धृत, उल्लिखित, अवलोकित ग्रंथों की तालिका

परिशिष्ट–1

स्वर अक्षरों की अद्भुत शक्ति

''हेलो बीजानि चोक्तानि स्वरा: शक्तय: ईरिता:'' । ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यंजन बीज-संज्ञक है और अकारादि स्वर शक्तिरूप है। मंत्र-बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है।

व्यंजन और स्वरों से मिलकर, मंत्र बीज बनते हैं।
बीज शक्ति के ही प्रभाव से, मंत्र भाव छनते हैं॥

पृथ्वी–पावक–पवन पय: नभ, प्रणव बीज की माया।
सारस्वत–भुवनेश्वरी के, बीजों को समझाया॥

अ– अव्यय सूचक, शक्ति प्रदायक, प्रणव बीजों का कर्त्ता।
शुद्ध बुद्ध सद्ज्ञान रूप, एकत्व आत्म में भर्ता॥

आ– सारस्वत का जनक यही है, शक्ति बुद्धि परिचायक।
माया बीज सहित होता है, यह धन कीर्ति प्रदायक॥

इ– गति का सूचक, अग्नि–बीज का, जनक लक्ष्मी का साधक।
कोमल कार्य सिद्ध करता है, कठिन कार्य में बाधक॥

उ– उच्चाटन का मंत्र-बीज यह, बहुत शक्तिशाली है।
उच्चाटन का श्वास नली से, शक्ति मारने वाली है।

ऊ– उच्चारण के, सम्मोहन के, बीजों का यह मूल मंत्र है।
बहुत शक्ति को देने वाला, यह विध्वंसक कार्य तंत्र है।

ऋ– ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला, शुभ कार्यों में उपयोगी।
बीजभूत इस अक्षर द्वारा, कार्य सिद्धि निश्चित होगी॥

लृ– वाणी का संहारक है यह, किन्तु सत्य का संचारक।
आत्म सिद्धि में कारक बनता, लक्ष्मी बीज यही कारक॥

ए– पूर्ण अटलता लाने वाला, पोषण संवर्धन करता।
'ए' बीजाक्षर शक्ति युक्त हो, सभी अरिष्ट हरण करता॥

ऐ– वशीकरण का जनक बीज यह, ऋण विद्युत् का उत्पादक।
वारि बीज को पैदा करता, यह उदात सुख सम्पादक॥

इसके द्वारा ही होता है, शासन देवों का आह्वान।
कितना ही हो कठिन काम पर, इससे हो जाता आसान॥

ओ— लक्ष्मी पोषक माया बीजक, सुष्ठु वस्तुएं करें प्रदान।
अनु स्वरान्त का सहयोगी है, कर्म निर्जरा हेतु प्रधान॥

औ— मारण में या उच्चाटन में, शीघ्र कार्य साधक बलवान।
निरपेक्षी है स्वयं बीज यह, कई बीजों का मूल प्रधान॥

अं— 'अं' अभाव का सूचक है, शून्याकाश बीज परतंत्र।
मृदुल शक्तियों का उद्घाटक, कर्माभावी है यह मंत्र॥

अः— शांति बीज में प्रमुख बीज यह, रहता नहीं स्वयं निरपेक्ष।
सहयोगी के साथ साधता, कार्य हमारे सभी यथेच्छ॥

व्यंजन अक्षरों की अद्‌भुत शक्ति—

क— क् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'क' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
भोग और उपभोग जुटावै, साधे यही काम-पुरुषार्थ।
यही प्रभावक शक्ति बीज है, संततिदायक वर्ण यथार्थ॥

ख— ख् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ख' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
उच्चाटन बीजों का दाता, यह आकाश-बीज है एक।
किन्तु अभाव कार्यों के हित, कल्पवृक्ष सम है यह नेक॥

ग— ग् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ग' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
पृथक्-पृथक् यदि करना चाहो, तो इसका उपयोग करो।
प्रणव और माया-बीजों का, पर इससे संयोग करो॥

घ— घ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'घ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
यह स्तम्भक बीज विघ्न का, मारण करने वाला है।
सम्मोहक बीजों का दाता, रोग मिटाने वाला है॥

ङ— ङ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ङ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
स्वर से मिलकर फल देता है, करता है रिपुओं का नाश।
यह विध्वंसक बीज जनक है, सभी मातृकाओं में खास॥

च— च् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'च' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
उच्चाटन बीजों का दाता खण्ड शक्ति बतलाता है।
अंगहीन है स्वयं स्वरों पर, अपना फल दिखलाता है॥

छ– छ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'छ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

छाया सूचक बंधन कारक, माया का सहयोगी है।
जल बीजों का जनक यही है, मृदुल कार्य फल भोगी है॥

ज– ज् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ज' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

आधि-व्याधि का उपशम करके, साधे सारे कार्य नवीन।
यह आकर्षक बीज जनक है, शक्ति बढ़ाने में तल्लीन॥

झ– झ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'झ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

इस पर रेफ लगा दोगे तो, आधि व्याधि हो जाए समाप्त।
श्री बीजों का जनक यही है, शक्ति इसी से होती प्राप्त॥

ञ– ञ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ञ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

यही जनक है मोह बीज का, स्तम्भन का माया का।
यही साधना का अवरोधक, बीजभूत है काया का॥

ट– ट् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ट' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

अग्नि-बीज है अतः अग्नि से, संबंधित है जितने कार्य।
इसके उच्चारण से पावकं, जल्दी बुझती है अनिवार्य॥

ठ– ठ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ठ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

अशुभ कार्य का सूचक है यह, मंजुल कार्य न सफलीभूत।
शांति भंग कर रूदन मचाता, कठिन कार्य को करै प्रसूत॥

ड– ड् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ड' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

शासन देवी की शक्ति को, यही फोड़ने वाला है।
निम्न कोटि की कार्य सिद्धि को, यही जोड़ने वाला है॥

ढ– ढ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ढ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

यह निश्चित है माया बीजक, एवं मारण बीज प्रधान।
शान्ति विरोधी मूल मंत्र है, शक्ति बढ़ाने में बलवान॥

ण– ण् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ण' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

नभ बीजों में यही मुख्य है, शक्ति प्रदायक स्वयं प्रशान्त।
ध्वसंक बीजों का उत्पादक, महाशून्य एवं एकान्त॥

त– त् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'त' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
आकर्षक करवाने वाला, साहित्यिक कार्यों में सिद्ध।
आविष्कारक यही शक्ति का, सरस्वती का रूप प्रसिद्ध॥

थ– थ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'थ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
मंगल कारक लक्ष्मी बीजों, का बन जाता सहयोगी।
अगर स्वरों से मिल जाये तो, मोहकता जागृत होगी॥

द– द् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'द' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
आत्म शक्ति को देने वाला, वशीकरण यह बीज प्रधान।
कर्मनाश में उपयोगी है, करै धर्म आदान-प्रदान॥

ध– ध् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ध' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
धर्म साधने में अचूक है, श्रीं क्लीं करता धारण।
मित्र समान सहायक है यह, माया बीजों का कारण॥

न– न् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'न' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
आत्म सिद्धि का सूचक है यह, वारि तत्त्व रचाने वाला।
आत्म नियन्ता वृष्टि सृष्टि में, एक मात्र नचाने वाला॥

प– प् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'प' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
परमात्मा को दिखलाता है, विद्यमान इसमें जल तत्त्व।
सभी कार्यों में रहता है, इसका अपना अलग महत्त्व॥

फ– फ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'फ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
वायु और जल तत्त्व युक्त है, बड़े कार्य कर देता सिद्ध।
स्वर को जोड़ो रेफ लगा दो, हो प्रध्वंसक यही प्रसिद्ध॥

इसके साथ अगर फट बोलो, तो उच्चाटन हो जायेगा।
कठिन कार्य भी सरल करेगा, विघ्न शमन हो जायेगा॥

ब– ब् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ब' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
अनुस्वार इसके मस्तक पर, आकार विघ्नविनाश करै।
स्वयं सफलता का सूचक बन, सबको अपना दास करै॥

भ– भ् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'भ' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
मारक एवं उच्चाटक है, सात्मिक कार्य निरोधक है।
कल्याणों से दूर साधना, लक्ष्मी बीज निरोधक है॥

म– म् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'म' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
लौकिक एवं पारलौकिकी, सफलताएं इससे मिलती।
यह बीजाक्षर सिद्ध प्रदाता, संतति की कलियां खिलतीं॥

य– य् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'य' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
मित्र मिलन में, इष्ट प्राप्ति में, यह बीजाक्षर उपयोगी।
ध्यान साधना में सहकारी, सात्विकता इससे होगी॥

र– र् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'र' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
अग्नि बीज यह कार्य-प्रसाधक, शक्ति सदा देने वाला।
जितने भी हैं प्रमुख बीज यह, उन सबको जनने वाला॥

ल– ल् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ल' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
लक्ष्मी लावे, मंगल गावे, श्री बीज का सहकारी।
लाभ करावे, सुख पहुँचावे, परम सगोत्री उपकारी॥

व– व् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'व' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
भूत पिशाचिन शाकिन डाकिन, सबको दूर भगाता है।
ह, र एवं अनुस्वार से मिल, जादू सा दिखलाता है॥

श– श् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'श' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
शांति मिला करती है इससे, किन्तु निरर्थक है यह बीज।
स्वयं उपेक्षा धर्मयुक्त है, अति साधारण यह नाचीज॥

ष– ष् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ष' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
आह्वान बीजों का दाता है, जल पावक स्तम्भक।
आत्मोन्नति से शून्य भयंकर, रूद्र-बीज का उत्पादक॥
रौद्र और बीभत्स रसों में, भी प्रयुक्त यह होता है।
ध्वनि सापेक्ष ग्रहण करता है, संयोगी सुख बोता है॥

स– स् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'स' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
सर्व समीहित साधक है यह, सब बीजों में अति उपर्युक्त।
शांति प्रदाता कामोत्पादक, पौष्टिक कार्यों हेतु प्रयुक्त॥
ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म हटाता है।
क्लीं बीज का सहयोगी यह, आत्मा प्रकट दिखाता है।

ह– ह् (व्यंजन) + अ (स्वर) = 'ह' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

मंगल कार्यों का उत्पादक, पौष्टिक सुख संतान करें।
है स्वतंत्र पर सहयोगार्थी, लक्ष्मी प्रचुर प्रदान करें॥

अनुस्वार यदि इस पर होवे, तो फिर इसी बीज का जाप।
नव तत्त्वों से मिलकर धोता, पाप और कर्मों के शाप॥

—श्री वर्द्धमान भक्तामर–स्तोत्र, पृ. 74–80 से उद्धृत

आत्म-रक्षा कवच

1. श्री वज्रपंजर स्तोत्र

नमस्कार महामंत्र हमारे शरीर एवं आत्मा के लिए एक सक्षम और अजेय आत्मरक्षा कवच है। नित्य प्रातःकाल मंत्र-पाठ पर आत्मरक्षा की भावना करने से रोग, दुर्घटना, प्रहार, आकस्मिक आघात से तो रक्षा होती ही है। साथ ही साथ किसी प्रकार का भय और उपद्रव भी नहीं होता। प्राचीन आचार्यों द्वारा विरचित वज्रपंजर स्तोत्र एवं उसकी विधि निम्न प्रकार है-

परमेष्ठि नमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पंजराभं स्मराम्यहम्॥ 1 ॥

ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्व सिद्धाणं, मुखे मुखापटं वरम्॥ 2 ॥

ॐ नमो आयरियाणं, अंग रक्षातिशायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम्॥ 3 ॥

ॐ नमो लोए सव्व साहूणं, मोचके पादयोः शुभे।
एसो पंच णमोक्कारो, शिला वज्रमयीतले॥ 4 ॥

सव्वपावपणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगारखातिका॥ 5 ॥

स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देह रक्षणे॥ 6 ॥

महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिताः पूर्वसूरिभिः॥ 7 ॥

यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि-पदैः सदा।
तस्यं न स्याद् भयं, व्याधिराधिश्चापि कदाचन्॥ 8 ॥

अर्थ-

नवपद स्वरूप और जगत् का सारभूत यह परमेष्ठी नमस्कार आत्मरक्षा के लिए वज्रपिंजर के समान है। उसका मैं स्मरण करता हूँ॥ 1 ॥

ॐ नमो अरिहंताणं। यह मंत्र मुकुट के रूप में मस्तक पर रहा हुआ है। ॐ नमो सव्व सिद्धाणं। यह मंत्र मुँह पर श्रेष्ठ वस्त्र के रूप में रहा हुआ है॥ 2 ॥

ॐ नमो आयरियाणं। यह मंत्र अतिशायी अंग रक्षक है। ॐ नमो उवज्झायाणं। यह मंत्र दोनों हाथ में रहे हुए मजबूत शस्त्र की तरह है॥3॥

नमो लोए सव्व साहूणं। यह मंत्र पैर के मंगलकारी पावपेश है। एसो पंच णमुक्कारो। यह मंत्र पैर के नीचे की वज्रशीला है॥4॥

सव्व पावपणासणो। यह मंत्र चारों दिशाओं में वज्रमय कीले की तरह है। मंगलाणं च सव्वेसिं। यह मंत्र खेर की लकड़ी के अंगारे की खाई है॥ (अर्थात् बोलते समय यह सोचना कि किले के बाहर चारों तरफ खेर की लकड़ी के अंगारे से खाई भरी हुई है)॥5॥

पढमं हवइ मंगलं। यह मंत्र किले के ऊपर वज्रमय ढक्कन है। इस पद के अन्त में स्वाहा मंत्र भी समझ लेना चाहिए॥6॥

परमेष्ठी पदों में प्रगट हुई महाप्रभावशाली यह रक्षा सब उपद्रवों का नाश करने वाली है, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है॥7॥

परमेष्ठी पदों के द्वारा इस प्रकार जो निरन्तर आत्मरक्षा करते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीड़ा कभी नहीं सताती। यह मंत्र सर्व उपद्रवों का नाश करने वाला है॥8॥

विधि–

सैनिक जिस प्रकार कवच धारण कर अपने शरीर की सुरक्षा करता है, वैसे ही साधक अनिष्ट शक्तियों से बचने के लिए "वज्रपंजर-स्तोत्र" का प्रयोग करता है। सर्वप्रथम दायें हाथ के अंगूठे सहित चारों अंगुलियों पर क्रमश: "ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र:"–इन पांच बीजमंत्रों को तीन बार बोलकर स्थापित करता है। दायें अंगूठे पर ह्रां, तर्जनी पर ह्रीं, मध्यमा पर ह्रूं, अनामिका पर ह्रौं, कनिष्ठा पर ह्र: मंत्र-बीजों को स्थापित करता है। फिर हाथ का उपयोग अंगन्यास के लिए करता है। तत्पश्चात् ॐ नमो अरहंतांण–प्रथम पद की पहली पंक्ति को बोलता हुआ दायें हाथ को सिर पर स्थित करता है। ॐ नमो सिद्धाणं–दूसरी पंक्ति को बोलता हुआ हाथ से पूरे मुँह का स्पर्श करता है। ॐ नमो आयरियाणं–तीसरी पंक्ति बोलता हुआ हाथ को सम्पूर्ण वक्षस्थल तथा उदर भाग पर घुमाता है। ॐ नमो उवज्झायाणं–चौथी पंक्ति बोलता हुआ दो हाथों को भुजाओं के समकक्ष उठाता हुआ शास्त्रास्त्र से सुसज्जित होने की मानसिक मजबूत कल्पना करता है। ॐ नमो लोए सव्व साहूणं–पांचवीं पंक्ति बोलता हुआ आसन स्थित दोनों पैरों की सुरक्षा की कल्पना करता है।

एसो पंच.........बोलता हुआ आसन के नीचे भूमितल पर सुदृढ़ शीला की कल्पना करता है।

सव्व पाव.....बोलता हुआ यह सोचे कि मेरे चारों तरफ वज्र का किला है दोनों हाथ से चारों तरफ कल्पना करते हुए अंगुली घुमाना।

मंगलाणं च.......बोलता हुआ किले के चारों ओर खाई की कल्पना करना।

पढमं हवइ.....बोलता हुआ किले के ऊपरी भाग पर ढक्कन की परिकल्पना कर दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा उस कल्पित कोट के अन्दर अपनी जबरदस्त सुरक्षा कर लेता है। (इसको बोलते हुए हाथ को मस्तक पर रखकर विचार करना कि वज्रमय किले के ऊपर आत्म-रक्षा के लिए वज्रमय ढक्कन है।)

इस तरह के एक निश्चित अभ्यास से व्यक्ति नितान्त अभय व शक्ति सम्पन्न बन जाता है।

—सुमरो नित नवकार, पृ. 78-80 से उद्धृत

2. आत्म-रक्षा कवच

आत्म रक्षा कवच द्वारा स्वयं को आरक्षित करने पर बाहरी आघात, यात्रा में आकस्मिक दुर्घटना, शत्रु का प्रहार आदि से स्वयं को सुरक्षित रखा जा सकता है। प्राचीन जैन मंत्र शास्त्र के अनुसार आत्मरक्षा कवच बनाने की विधि इस प्रकार है-

प्रात: शय्या से उठते ही सर्वप्रथम अपनी दोनों हथेलियों के बीच में 'ॐ ह्रीं' की आकृति बनायें, फिर पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके दोनों हाथ जोड़कर दाहिने हाथ के अंगूठे सहित हथेली से बायां हाथ दबाते हुए निम्न मंत्र बोलकर अपने अंगों पर न्यास करते जाएं।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं ह्रां शिरसं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(सिर पर हाथ फेरते हुए सात बार बोलें।)

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं णमो आयरियाणं ह्रूं हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(हृदय पर हाथ फेरते हुए सात बार बोलें।)

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं णमो उवज्झायाणं ह्रैं नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(पेट व नाभि पर हाथ फेरते हुए सात बार बोलें।)

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं णमो उवज्झायाणं ह्रैं नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(पेट व नाभि पर हाथ फेरते हुए सात बार बोलें।)

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं णमो लोए सव्व साहूणं ह्रः पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा।
(पावों पर हाथ फेरते हुए सात बार बोलें।)

नोट–फिर सात बार निम्न गाथा बोलकर सिर से पांव तक हाथ फेरकर आत्म-रक्षा पूर्ण करें–

ॐ पण पन्नाय दसेव य
पन्नट्ठी तह य चेव चालीसा
रक्खंतु मे शरीरं
देवाऽसुर पणमिया सिद्धा।

–नमस्कार महामंत्र साधना के आलोक में, पृ. 112 से उद्धृत

3. आधि–व्याधि–उपाधि सुरक्षा कवच

इस कवच में पांच परमेष्ठी तथा जिन, वीतराग आदि नामों का अपने अंगों तथा दसों दिशाओं में न्यास किया जाता है। आधि–मानसिक पीड़ा, व्याधि–शारीरिक पीड़ा, उपाधि–देव संबंधी पीड़ा। इस प्रकार की बाधाओं का प्रभाव निरस्त करने के लिए कवच के रूप में इस स्तोत्र का 3 बार पाठ करें। उसके बाद सुबह-शाम पाठ करें।

अर्हन्तं स्थापयेन्मूर्धिन, सिद्धं चक्षुर्ललाटके।
आचार्य श्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायं तु नासिके॥

साधुवृंदं मुखस्याग्रे, मनः शुद्धिं विधाय च।
सूर्यचन्द्र निरोधेन, सुधीः सर्वार्थ सिद्धये॥

दक्षिणे मदनदेषी, वामपार्श्वेस्थितो जिनः।
अंगसंधिषु सर्वज्ञः परमेष्ठी शिवंकरः॥

पूर्वाशां च जिनो रक्षेद्, आग्नेयीं विजितेन्द्रियः।
दक्षिणाशां पर ब्रह्म नैर्ऋतीं च त्रिकालवित्॥

पश्चिमाशां जगन्नाथो वायव्यां परमेश्वरः।
उत्तरां तीर्थकृत् सर्वामीशानेऽपि निरंजनः॥

पातालं भगवान्नर्हन्नकाशं पुरुषोत्तमः।
रोहिणी प्रमुखा देव्यो, रक्षन्तु सकलं कुलम्॥

–उपासना कक्ष, पृ. 46 से उद्धृत

4. गृहरक्षा मंत्र

ॐ ह्रां णमो अरहंताणं पूर्वद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं अग्निद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं दक्षिण द्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं नैर्ऋतद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रं णमो लोए सव्व साहूणं पश्चिम द्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रां णमो अरहंताणं वायव्यद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं उत्तरद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं ईषानद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उर्ध्वद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।
ॐ ह्रं णमो लोए सव्व साहूणं अधोद्वारं रक्ष रक्ष स्वाहा।

इस मंत्र की प्रत्येक पंक्ति के उच्चारण के साथ यह अनुभव करें कि यह मंत्र मेरी सब दिशाओं से आने वाले अनिष्ट परमाणुओं से रक्षा कर रहा है। मैं अपने घर के भीतर पूर्ण सुरक्षा का अनुभव कर रहा हूँ। संकल्प पूर्वक इस प्रयोग को प्रातः और सायं किया जाये।

5. उपद्रव शामक कवच

इस कवच में 24 तीर्थंकरों का ध्यान कर उनका अपने प्रत्येक अंग पर न्यास किया जाता है। अपनी दृढ़ आस्था और मानसिक संकल्प के साथ किये गये इस न्यास का गहरा प्रभाव पड़ता है। कोई भी बाहरी शक्ति उसे लांघ नहीं सकती। भय निवारण, मानसिक शांति तथा मंगल के लिए रात्रि में सोने से पूर्व इसका तीन बार पाठ करें–

ऋषभो मस्तकं रक्षेद् अजितोऽपि विलोचने।
संभवः कर्णयुगलेऽभिनन्दनस्तु नासिके॥

औष्ठौ श्री सुमति रक्षेद् दन्तान् पद्मप्रभुर्विभुः।
जिह्वां सुपार्श्वदेवोऽयं तालुं चन्द्रप्रभाभिधः॥

कण्ठं श्री सुविधी रक्षेद् हृदयं जिनशीतलः।
श्रेयांसो बाहुयुगलं वासुपूज्यः करद्वयम्॥

अंगुली र्विमलो रक्षेद् अनन्तोऽसौ नरवानपि।
श्री धर्मोऽप्युदरास्थीनि श्री शांतिर्नाभिमण्डलम्॥

श्री कुंथुर्गुहयकं रक्षेद् अरो लोमकटी तटम्।
मल्लिरूरू पृष्ठमंशं पिण्डिकां मुनिसुव्रतः॥

पदोङ्गुलीर्नमी रक्षेद् श्री नेमिश्चरणद्वयम्।
श्री पार्श्वनथः सर्वांगं वर्धमानश्चिदात्मकम्॥

पृथ्वी-जल-तेजस्क-वाय्वाकाशमयं जगत्।
रक्षेद्शेषपापेभ्यो वीतरागो निरंजनः॥

—उपासना कक्ष, पृ. 47 से उधृत

6. श्री मंत्राधिराज स्तोत्र

इस मंत्र में चौबीस तीर्थंकरों के नाम का स्मरण कर स्तोत्र में निर्दिष्ट संकेतानुसार अंगन्यास किया जाता है। ऐसा करने वाला चिरायु, सुखी, व्याधि रहित और विजयी होता है।

सर्वातिशय सम्पूर्णान् ध्यात्वा सर्व जिनाधिपान।
पंच वर्णान् पंच रूपान् विषयद्रुमकुञ्जरान्॥ 1॥

चतुर्गात्रांश्चतुर्वक्त्रान् चतुर्विंतिसञ्ज्ञितान्।
जैनीं सर्वाङ्गेषु रक्षां कुर्वे दुःखौघ नाशिनीम्॥ 2॥

शिरो मे वृषभः पातु भालं श्री अजितः प्रभुः।
पातां मे श्री जिनौ नेत्रे संभवश्चाभिनन्दनः॥ 3॥

सुमतिः सुसीम जन्मा च श्रवणौ मम् रक्षताम्।
सुपार्श्वो रक्षतु घ्राणं मुखं चन्द्रप्रभः प्रभुः॥ 4॥

रसनां सुविधि पातु कण्ठं श्री शीतलो जिनः।
स्कन्धं श्रेयांसः श्री वासुपूज्यश्च विमलो भुजौ॥ 5॥

अनंत श्री धर्मनाथौ पातां में कर पल्लवौ।
शांतिर्मे हृदयं रक्षेन्मध्यं नाभिं च कुंथ्वरौ॥ 6॥

मल्लिः कटीं सक्थिनी च रक्षान्मुनि सुव्रतः।
नमिर्जानुद्वयं पायान्नेमिर्जङ्घाद्वयं पुनः॥ 7॥

श्री पार्श्वो वर्धमानश्च रक्षान्मे पदद्वयम्।
चतुर्विंशतिरूपोऽव्यादर्हन्मे सकलं वपु: ॥8॥
एतां जिन बलोपेतां रक्षां य: सुकृति पठेत्।
स चिरायु: सुखी पुत्री निर्व्याधि विजयी भवेत् ॥9॥

—मंत्र एक समाधान, पृ. 391 से उद्धृत

7. रक्षा कवच

1. **समस्या**—तांत्रिक प्रयोग से उत्पन्न बाधा।
2. **मंत्र**— ॐ णमो अरहंताणं जम्ल्व्र्यूं हृदय रक्ष रक्ष ह्रां स्वाहा
ॐ णमो सिद्धाणं झम्ल्व्र्यूं शिरो रक्ष रक्ष ह्रूं स्वाहा
ॐ णमो आयरियाणं शिखां रक्ष रक्ष ह्रैं स्वाहा
ॐ णमो उवज्झायाणं हम्ल्व्र्यूं वज्राणं कवचं रक्ष रक्ष ह्रौं स्वाहा
ॐ णमो लोए सव्व साहूणं सर्वदुष्टान् निवारय
निवारय ह्: सवाहा।
3. **मंत्र संख्या**—प्रतिदिन 21 बार
4. **परिणाम**—अंग रक्षा

—मंत्र : एक समाधान, पृ. 175 से उद्धृत

परिशिष्ट–2

उद्धृत गीत

1. नवकार तणी महिमा सुणो

तर्ज–जय जय जीवड़ा

1. नवकार तणी महिमा सुणो, जग मांहे ए तंत सारो जी।
   कर्म कटे संकट मिटे, पामै भव तण पारो जी॥
2. चोर धाड़ संकट टलै, सब जन मिती थायो जी।
   डाकण साकण भूतनां, विघन सारा टल जायोजी॥
3. इण नवकार में गुण अति घणा, कहितां न आवै पारोजी।
   एहनां गुण ओलख जपवो करै, ते बेगो जावे मुक्त मझारो जी॥
4. चवदै पूर्व रो ग्यान छै, त्यामे सारां शिरे नवकारो जी।
   त्यांमे गुण कह्या पांच पदां तणा, देव गुरु धर्म तणो अधिकारो जी॥
5. इण नवकार मंत्र नां जाप थी, तिरिया जीव अनेको जी।
   हिवै नाम कहूं छै तेहना, सुणजो आण विवेको जी॥
6. बाछड़ा बालक चरावतो, नदी आइ विकरालो जी।
   तिण समर्‍यो नवकार नै, नदी फाट हुइ दोय डालो जी॥
7. श्रीमती बेटी सेठ नी, सुन्दर रूप सुकुमालो जी।
   तिण मुख जप्यो नवकार मै, सर्प थयो फूल री मालो जी॥
8. राजा सूली दियो चोर नै, सेठ सीखायो नवकारो जी।
   तिण जाप जप्यो नवकार नो, ते पाम्यो सुर अवतारो जी॥
9. सेठ डूबंतो समुद्र में, तिण समर्‍यो नवकारो जी।
   तिण री जिहाज उठायने देवता, मेल दीधी पेले पारो जी॥
10. दलिद्री सेठ बेच्यो निज पुत्र नै, सोनइया बरोबर ताह्यो जी।
    नवकार गुण बेठो होम में, तो तुरत हुइ तिण री साह्यो जी॥

2. इम जाण जपो श्री नवकारं

रचियता – श्री मज्जयाचार्य

तर्ज – प्रभु वासुपूज्य भजलै प्राणी

इम जाण जपो श्री नवकारं

1. नाना विध पाप तणो कामी, जिको मरण तणो अवसर पामी।
सूरपणुं ते लहै सारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
2. जेहनै सरवायपणेज करी, पामै परभव में सम्पति सखरी।
लहै मन वांछित फल सुखकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
3. सुलभ रमणी राज्य लहै, बली सुलभ देवपणो जग है।
समकित सहित एह दुर्लभ सारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
4. समकित चरण सहित नवकार धरै, तिको भवदधि गोपद जेम तरै।
वारू शिव सुख नै ए सचकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
5. पंच परमेष्ठि प्रते समरी, तिको भील तणो भव दूर करी।
ओ तो पंचम कल्पे अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
6. ते भील नी रत्नवती-नारी, पंच-परमेष्ठि तिमज हिये धारी।
आ पिण पंचम कल्पे अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
7. पन्नग पुष्प नी माल थई, नवकार प्रभावे कीर्ति लही।
सुख श्रीमति उभय भवे सारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
8. अग्नि ठंडी कीधी देवा, कियो कनक-सिंहासन ततखेवा।
ऊपर अमरकुंवर प्रति वैसारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
9. नवकार मंत्र सेठ संभलायो, सुण जाप जप्यो तिण सुखदायो।
लह्यो महावत सुर नौ अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
10. बाल बछड़ा चरावतो जिहवारं, नदी पूर आयां गुण्यो नवकारं।
थई तत्खिण सरिता दोय डारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥
11. सेठ समुद्र में डूबंतो, नवकार गुण्यो धर चित्त शंतो।
सुर जहाज उठाय म्हेली पारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

12. चारित्र सहित जिको नाणी, पंच परमेष्ठि ओलख जपै जाणी।
तो स्यूं कहियै तसु फल सारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

13. सुध एकाग्र चित्त तन मन सेती, पार पुगावै निपजाइ खेती।
ध्यान-सुधारस दिल धारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

14. ओ तो चरण अमोलक कर आयो, पद आराधक जे मुनि पायो।
करै सर्व दुखां रो छुटकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

15. मरणान्त आराधन इह रीतं, करै दश विध तन मन धर प्रीतं।
ते संसार-समुद्र तिरै पारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

16. संवत उगणीसै वर्ष पणतीसं, रची जोड़ श्रावण बिद छठ दीसं।
पायो शहर बीदासर सुखसारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

17. भिक्षु भारीमाल गणि ऋषिरायो, सुध तास प्रसादे सुख पायो।
वारू जय जश संपति जयकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं॥

3. नमस्कार महामंत्र गीत

रचियता – आचार्य श्री तुलसी

तर्ज – धर्म की जय हो

श्रद्धा विनय समेत, नमो अरहंतांणं।
प्रांजल प्रणत सचेत, नमो अरहंताणं॥

1. आध्यात्मिक पथ के अधिनेता,
वीतराग प्रभु विश्व विजेता।
शरद्चंद्र सम श्वेत नमो अरहंताणं॥

2. अक्षय, अरूज अनंत अचल जो,
अटल अरूप स्वरूप अमल जो।
अजरामर अद्वैत नमो श्री सिद्धाणं॥

3. धर्मसंघ के जो संवाहक,
निर्मल धर्मनीति निर्वाहक।
शासन में समवेत, नमो आयरियाणं॥

4. आगम अध्यापन में अधिकृत,
विमल कमल-सम जीवन अविकृत।
सम संयम समुपेत नमो उवज्झायाणं॥

5. आत्म साधना-लीन अनवरत,
विषय वासनाओं से उपरत।
'तुलसी' है अनिकेत नमो (लोए) सव्व साहूणं॥

4. परमेष्ठि वंदना

रचियता – आचार्य श्री तुलसी

तर्ज – ले नये निर्माण का व्रत

वन्दना आनंद पुलकित, विनय नत हो मैं करूं।
एक लय हो, एक रस हो भाव तन्मयता वरूं॥

1. सहज निज आलोक से भासित स्वयं संबुद्ध हैं,
धर्म तीर्थंकर शुभंकर, वीतराग विशुद्ध हैं।
गति-प्रतिष्ठा-त्राण दाता, आवरण से मुक्त हैं,
देव अर्हन् दिव्य योगज अतिशयों से युक्त हैं॥

2. बंधनों की श्रृंखला से, मुक्त शक्ति-स्रोत हैं,
सहज निर्मल आत्मलय में, सतत ओतप्रोत हैं।
दग्धकर भव बीज अंकुर, अरुज अज अविकार हैं,
सिद्ध परमात्मा परम, ईश्वर अपनुरवतार हैं॥

3. अमलतम आचार धारा, में स्वयं निष्णात हैं,
दीप सम शत दीप दीपन के लिए प्रख्यात हैं।
धर्म-शासन के धुरन्धर, धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर-प्रतिनिधि प्रगति में अनिवार्य हैं॥

4. द्वादशांगी के प्रवक्ता, ज्ञान गरिमा पुंज हैं,
साधना के शांत उपवन में सुरम्य निकुंज है।
सूत्र के स्वाध्याय में संलग्न रहते हैं सदा,
उपाध्याय महान श्रुतधर, धर्म शासन संपदा॥

5. सदा लाभ-अलाभ में, सुख-दुःख में मध्यस्थ हैं,
शांतिमय, वैराग्यमय, आनंदमय आत्मस्थ हैं।
वासना से विरत आकृति, सहज परम प्रसन्न हैं,
साधता धन साधु अन्तर्भाव में आसन्न हैं॥

5. पांचू परमेष्ठि प्यारा

रचियता – आचार्य श्री तुलसी

तर्ज – मैं ढूंढ फिरी जग सारा

पांचू परमेष्ठी प्यारा
जीवन धन सब कुछ म्हांरा, पांचू परमेष्ठी प्यारा।
है असहायां रा स्हारा, पांचू परमेष्ठी प्यारा॥

1. सर्वोच्च अर्हता धारी, अरहंत अमल अविकारी।
तीर्थंकर त्रिभुवन तारी, प्रवही प्रवचन री धारा॥

2. है सिद्ध सिद्धपद-वासी, अज अजरामर अविनाशी।
परमात्मा परम प्रकाशी, काटी करमां री कारा॥

3. धरमाचाराज धृतिधारी, निष्कारण पर-उपकारी।
लाखां री नैय्या तारी, भगवान कहूं भगतां रा॥

4. है उपाध्याय अविकारी, गणिपिटका रा भंडारी।
श्रुतदाता संकट-हारी, जिन शासन-गगन-सितारा॥

5. मुनिवर जग-ममता त्यागी, समता री प्रतिमा सागी।
है पाप-भीरू वैरागी, तुलसी मनमोहनगारा॥

6. चैत्य पुरुष जग जाए

रचियता – आचार्य श्री महाप्रज्ञ

तर्ज – संयममय जीवन हो

चैत्यपुरुष जग जाए।
देव! तुम्हारा पुण्य नाम, मेरे मन में रम जाए॥

1. ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ उद्गाता,
अर्हं अर्हं अर्हं अर्हं अर्हं अर्हं त्राता।
ॐ ह्रीं श्रीं जय, ॐ ह्रीं श्रीं जय, विजय ध्वजा लहराए॥

2. ॐ जय भिक्षु, भिक्षु जय ॐ ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं
विघ्न शमन ॐ व्याधि शमन ॐ क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं।
नाम मंत्र तव व्रण-संरोहण सतत अमृत बरसाए॥

3. मिटे विषमता तन की, मन की, अनुभव की, चिंतन की,
पल-पल पग-पग मिले सफलता तन्मयता चेतन की।
नाम मंत्र तव भयहर, विषहर साम्य सिंधु गहराए॥

4. आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न है, तुमने मंत्र पढ़ाया,
आत्मा अचल अरुज शिव शाश्वत, नश्वर है यह काया।
आत्मा आत्मा के द्वारा ही, आत्मा में लय पाए॥

5. तुम निरुपद्रव, हम निरुपद्रव, तुम हम सब हैं आत्मा,
तव जागृत आत्मा से हम सब बन जाएं परमात्मा।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रं ह्रः, अन्तर्मल धुल जाए॥

7. भवियण णमो अरिहंताणं

रचियता – मुनि हेमराजजी

तर्ज –

भवियण नमो अरिहंताणं, णमो सिद्ध निरवाणं,
मन शुद्ध करने भजिये भवियण, ते पामै कल्याणं।
भवियण नमो अरिहंताणं॥

1. बीस विहरमान सदा शाश्वता, जघन्य पदे परिमाणं।
सौ साठ नै नित नित नमिये, उत्कृष्टे पद आणं।

2. अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र, तप बल कर अनंत आणन्दा।
एक सहस्र आठ लक्षण विराजै, सेवत चौषठ इन्दा॥
3. चौतीस अतिशय अति शोभता, बहु विस्तार बखाणं।
पंच तीस प्रकार करी नें, तारै जीव अयाणं॥
4. दस अठ दोषण टाला बारै गुणवाला, सुरेन्द्र सूं अति रूपाला।
वाण विशाला समझै वृद्ध बाला, कट जावै कर्म पुराला॥
5. नाम स्थापना द्रव्य निक्षेपो, चौथो भाव पिछाणं।
भाव भगवन्त ने नित नित नमिये, ते पामे कल्याणं॥
6. नमो कहता नमस्कार छै, अरिह कहंता कर्म कटाणं।
हंता कहता हणिया अरिहंत, ते पाम्या निरवाणं॥
7. कर करणी कर्मां ने काट्या, पाया सिद्ध निरवाणं।
जन्म जरा दुःख मेट दिया सर्व, नहीं कोई आवण जावण॥
8. सिद्ध जी आठ गुणा कर शोभै, अतिशय गुण इकतीसा।
कर्म विदार्या कार्ज सार्या, जीता राग न रीसा॥
9. अवर्ण अगंध अरस अफर्श, नहीं जोग लेश आहारं।
अनंत सुख आत्मिक सोहै, सिद्ध सदा सिरदारं॥
10. नमो कहता नमस्कार छै, सिद्धाणं कारज सार्या।
सुख शाश्वता सदा काल छै, आवागमन निवार्या॥
11. छत्तीस गुणे करी शोभ रह्या छै, आचारज़ अणगारा।
निश दिन चरचा न्याय बतावै, गुण कर ज्ञान भंडारा॥
12. धर्माचार्य धुरा धुरिन्धरं, मोटा मुनिवर म्हारां।
भरत क्षेत्र में भिक्षु शोभ्या, शिष्य भारीमाल सिरदारां॥
13. गुण रा आगर बुद्धि रा सागर, मोटा मुनि मुनिन्दा।
साधा मांहि शोभ रह्या छै, जिम तारा बिच चंदा॥
14. अंग ग्यारह उपांग बारह, भणै भणावै सारां।
पचीस गुणां कर शोभ रह्या छै, उपाध्याय अणगारा॥
15. जघन्य दोय सहसं कोड़ जाझेरा, उत्कृष्टा नव सहंस कोड़ा।
अढ़ाई द्वीप पनरै क्षेत्रां में, मुनिश्वरा रां जोड़ा॥

16. बारह आठ छत्तीस पचीस, साधु सत्तावीर गुण वाला।
एक सौ ने आठ गुणा री, ए गावो गुणमाला॥

17. दोष ब्यांलीस बहरत टालै, बावन टालै अणाचारा।
पांच दोष मंडला रा टालै, गुण कर ज्ञान भंडारा॥

18. पांच पद परमेश्वर पूरा, गुण ओलख नै गावों।
समकित् सहित व्रत पाल नै, आवागमन मिटाओ॥

19. समत अठारह वर्ष गुण साठें, आषाढ़ जाणिज्यो मासं।
गुण गाया छै पांच पदां रा, शहर पिंसागण चौमासं॥

8. णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं

रचयित्री – साध्वी पुण्ययशा

तर्ज – मिलो न तुम तो

शांति विधायक, शिव सुख दायक, महामंत्र नवकार,
णमो अरहंताणं णमो श्री सिद्धाणं।

पाप निवारक, रक्षक तारक, मंत्राक्षर नवकार,
णमो अरहंताणं णमो श्री सिद्धाणं॥

1. सर्वोत्तम मंगल जग में, पूर्वों का इसमें सार है,
श्रद्धा से सुमिरन करै, जो होता बेड़ा पार है।
संकटहर्ता मंगलकर्त्ता, जप लो श्री नवकार॥

2. ज्योतिदीप, उदधिद्वीप, अरिहंत ही शरण त्राण है।
निरंजन निराकार, श्री सिद्ध भगवान है।
जाप जपते कर्म कटते, होता मन अविकार॥

3. गणि सम्पदा धारी, बहुश्रुत धर्माचार्य है,
पच्चीस गुण शोभित, उपाध्याय में अनिवार्य है।
सप्त बीस गुण साधु निपुण, महिमा अपरम्पार है॥

4. शूली सिंहासन बनी, अग्नि शीतल मंत्र प्रभाव से,
नाग मुक्ताहार शोभे, सरिता में पद्म शुभ भाव से।
कामधेनु यह चिंतामणी, कल्पवृक्ष साकार॥
णमो अरहंताणं, णमो श्री सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं
णमो सव्व साहूणं॥

9. महामंत्र नवकार

रचयित्री – साध्वी पुण्ययशा

तर्ज – भारत के नौजवानों

महामंत्र नवकार–3
महाशक्ति महासुन्दर, महाश्रुत इसके अन्दर
महाऊर्जा का समन्दर ॥ आ. ॥

1. वीतराग मंत्र परमेष्ठी, पंच मंगल यह कहलाता,
अनुत्तर लोकोत्तर सुखदाता, जीवन धन जीवन दाता।
पंचांग प्रणति सविनय वंदन, करता भव से पार॥

2. 'न' नमन करता 'म' मद रहता, 'स' से स्तुति मंगलकारी,
'का' कार नव कर पर लगाता, नवकार यह चमकारी।
'र' रजमल से निर्मल आत्मा, अध हरण नमस्कार॥

3. प्रतीक पैंतीस अक्षर अक्षय, वचनातिशय के सारे,
शक्ति शांति आनन्द संचारी, पग-पग पर ये रखवारे।
त्रिकरण त्रियोग से जो जपता, होता मन अविकार॥

4. ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा, बीजाक्षर मातृकाएं,
महामंत्र से निर्मित सब, मंत्राक्षर महिमा पाएं।
शक्ति रिचार्ज अजपाजप से, खुलता प्रज्ञा द्वार॥

परिशिष्ट–3

उद्धृत, उल्लिखित, अवलोकित ग्रंथों की तालिका

01. भगवती भाष्य	–	वाचना प्रमुख गणाधिपति तलुसी संपादक : भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ
02. ठाणं	–	वाचना प्रमुख आचार्यश्री तुलसी संपादक : विवेचक मुनि नथमल
03. समवायांग	–	वाचना प्रमुख आचार्यश्री तुलसी सम्पादक : विवेचक मुनि नथमल
04. आचारांग	–	वाचना प्रमुख आचार्यश्री तुलसी संपादक : विवेचक मुनि नथमल
05. श्री भिक्षु आगम विषय कोश (भाग-1)	–	वाचना प्रमुख–गणाधिपति तुलसी प्रधान संपादक–आचार्य महाप्रज्ञ निर्देशन–मुनि दुलहराज, डॉ. सत्यरंजन बनर्जी संग्रह/अनुवाद/संपादक–साध्वी विमलप्रज्ञा, साध्वी सिद्ध प्रज्ञा
06. मनोनुशासनम्	–	आचार्यश्री तुलसी
07. मेरा जीवन मेरा दर्शन (आत्मकथा-11)	–	आचार्यश्री तुलसी सम्पादक : साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा
08. आराधना	–	प्रवाचक युगप्रधान आचार्य तुलसी
09. मन हंसा मोती चुगे	–	आचार्य तुलसी
10. एसो पंच णमोक्कारो	–	आचार्य महाप्रज्ञ
11. अर्हं	–	आचार्य महाप्रज्ञ
12. भीतर की ओर	–	आचार्य महाप्रज्ञ
13. मंत्र : एक समाधान	–	आचार्य महाप्रज्ञ
14. साधना और सिद्धि	–	आचार्य महाप्रज्ञ
15. किसने कहा मन चंचल है	–	आचार्य महाप्रज्ञ

16. एकला चलो रे – आचार्य महाप्रज्ञ
17. शक्ति की साधना – आचार्य महाप्रज्ञ
18. प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा – आचार्य तुलसी
19. जैन धर्म अर्हत्-अर्हताएं – आचार्य महाप्रज्ञ
20. तुम स्वस्थ रह सकते हो – आचार्य महाप्रज्ञ
21. मैं कुछ होना चाहता हूँ – आचार्य महाप्रज्ञ
22. मन के जीते जीत – युवाचार्य महाप्रज्ञ
23. जैन योग – आचार्य महाप्रज्ञ
24. जैन धर्म के साधना सूत्र – आचार्य महाप्रज्ञ
25. प्रेक्षाध्यान चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा – युवाचार्य महाप्रज्ञ
26. संभव है समाधान – लेखक–आचार्य महाप्रज्ञ
संपादक–मुनि दुलहराज
संकलन–समणी स्थितप्रज्ञा
27. उपासना कक्ष – युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ
युवाचार्यश्री महाश्रमण
28. विशेषावश्यक भाष्य – जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण
29. आवश्यक निर्युक्ति – आचार्य भद्राबाहु (हरिभद्रीय वृत्ति सहित)
30. व्यवहार भाष्य – सम्पादक मुनि माणेक
31. आवश्यक निर्युक्ति – आचार्य भद्रबाहु (मलयगिरी वृत्ति सहित)
32. श्री भगवती सूत्र (भाग-1) – प्रवचनकार आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराजसा
33. ज्ञानार्णव – शुभचन्द्राचार्य
34. योग शास्त्र – आचार्य हेमचन्द्र
35. नियमसार –
36. जैन दर्शन और विज्ञान – समाकलन–मुनि महेन्द्र कुमार, प्रेक्षा प्राध्यापक, जेठालाल एस. झवेरी, प्रेक्षा प्रवर्तक

37. नमस्कार महामंत्र की प्रभावक कथाएं – मुनि किशनलाल
38. साधना प्रयोग और परिणाम – मुनि किशनलाल
39. जीवन विज्ञान 9, 10 – मुनि किशनलाल, शुभकरण
40. सुमरो नित नवकार – मुनि शुभकरण
41. तेरापंथ का इतिहास – मुनि बुद्धमल
42. जैन साधना पद्धति में तपोयोग – मुनि श्रीचन्द्र
43. नमस्कार महामंत्र साधना के आलोक में – साध्वी राजीमती
44. ज्योति किरण – साध्वी राजीमती
45. नमस्कार चिंतामणि – पूज्य मुनिश्री कुन्दनमलजी महाराज
46. परमेष्ठी नमस्कार – श्री भदंकर विजयजी गणिवर्य
47. मंत्र रहस्य – डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली
48. मंत्र भलो नवकार – श्री भदंकर विजयजी गणिवर्य
49. णमोक्कार महामंत्र – रत्नचन्द भारिल्ल
50. अरिहंत – डॉ. साध्वी दिव्या
51. नवकार महामंत्र – कन्हैयालाल दक
52. लोगस्स सूत्र– एक दिव्य साधना – साध्वी डॉ. दिव्य प्रभा
53. मंत्राधिराज भाग तृतीय – पन्यास प्रवर श्री भदंकर विजयजी गणिवर्य
54. ऋषि मंडल स्तोत्र – संग्राहक सेठ चन्दनमलजी नागोरी
55. यंत्र-मंत्र-तंत्र विज्ञान (प्रथम भाग) – लेखक—हीरालाल दुगड़
56. रक्षणहार एक नवकार – लेखक—पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजयपूर्णचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज

57. महाप्रभाविक नवस्मरण – (पूर्वाचार्य विरचित)
– संपादक संशोधक साराभाई मणिलाल नबाब
58. बहुआयामी महामंत्र णमोकार – डॉ. नेमीचन्द जैन
59. मंगलमंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन – प्रो. नेमिचन्द्र शास्त्री
60. महामंत्र नवकार – उपाध्याय श्री मधुकर मुनि
61. नमस्कार मंत्रोदधि – अनुवाद व संग्रहकर्त्ता शाह जे., बाबूलाल जैन
62. मूलाचार – कुंदकुंदाचार्य, हि.अनु. जिनदास पार्श्वनाथ फडकले शास्त्री, न्यायतीर्थ
63. जैन भारती वीतराग वंदना विशेषांक – प्रधान सम्पादक श्रीचन्द रामपुरिया
– सम्पादक मुमुक्षु डॉ. शान्ता जैन
64. आगम-प्रश्न रत्न मंजूषा – मुनि हस्तीमलजी
65. स्वयं से साक्षात्कार – श्री चन्द्रप्रभ
66. सहज मिले अविनाशी – श्री चन्द्रप्रभ
67. लाइफ पॉजेटिव (कण-कण में संगीत)
68. निरामया – साध्वी जयश्री, साध्वी रमाकुमारी
69. चिंता हटाओ सुख पाओ – स्वेटमाईन
70. चैत्य वंदना – साध्वी कनकश्रीजी
71. जैन धर्म जीवन और जगत् – साध्वी कनकश्रीजी
72. जैन भारतीय (वर्ष-53, अंक-1, अक्टूबर, 2005) – मानदक संपादक—शुभू पटवा
– मानदक सह-संपादक—बच्छराज दूगड़
73. संबोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन – डॉ. समणी स्थित प्रज्ञा
74. साधना के श्लाका पुरुष गुरुदेव श्री तुलसी – डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा
75. कर्म पुराण – आनंद स्वरूप गुप्त

76. भिखू स्याम भिखू स्याम	–	श्रमण सागर
77. तपस्विनी बहिन	–	कलावती जीवन वृत्त
78. हस्तमुद्रा प्रयोग और परिणाम	–	मुनि किशनलाल
79. णमोक्कार अनुप्पेहा	–	उमेश मुनि
80. पर्युषण साधना	–	साध्वी राजीमती
81. सोया मन जग जाए	–	आचार्य महाप्रज्ञ
82. आमंत्रण आरोग्य को	–	आचार्य महाप्रज्ञ
83. भक्तामर अन्तस्तल में	–	आचार्य महाप्रज्ञ
84. मन का कायाकल्प	–	आचार्य महाप्रज्ञ
85. जीवन की पोथी	–	आचार्य महाप्रज्ञ

"ॐ अर्हम्"

साध्वी पुण्ययशा

लेखिका परिचय

नाम	:	साध्वी पुण्ययशा
जन्म	:	22 सितम्बर 1963 बीदासर (राजस्थान)
दीक्षा	:	15 फरवरी, 1984 बीदासर (राजस्थान) आचार्य श्री तुलसी के कर-कमलों द्वारा
पिता	:	श्री जीवनमल जी डागा
माता	:	श्रीमती रत्नीदेवी डागा
अध्ययन	:	हिन्दी, संस्कृत, राजस्थानी, अंग्रेजी आदि भाषा का ज्ञान
यात्रा	:	गुजरात, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि
प्रकाशित-कृति	:	तप की अमिट लौ : साध्वी भत्तूजी (सन् 2004 में) संथारे का आशीर्वाद : साध्वी श्री सुखदेवांजी (चूरू) (सन् 2005 में) नमस्कार महामंत्र-एक अनुशीलन, भाग-1 (सन् 2009 में सह-प्रकाशित)

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज०)